ब्र० सीतल स्मारक ग्रन्थमाला नं० १३

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

आचार्यवर्य श्री अमितगति आचार्य विरचित

धर्मपरीक्षा

(संस्कृत मूल ग्रँथराजका हिन्दी भाषानुवाद)

हिन्दी भाषानुवादकर्ता—

स्व० पं० पन्नालालजी बाकलीवाल, सुजानगढ नि०

"जैनमित्र" (सूरत) के ६२ वें
वर्षके ग्राहकोंको श्री ब्र०
सीतल स्मारक ग्रँथमालाकी
ओरसे उपहारस्वरूप
भेंट

चतुर्थावृत्ति] वीर सं० २४८७ सं० २०१८ [प्रति २२००

मूल्य—तीन रुपये

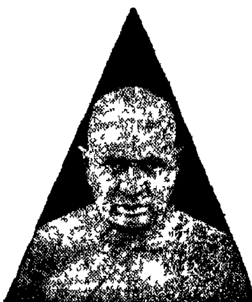
प्रकाशक:—
मूलचंद किसनदास कापड़िया,
दिगम्बर जैन पुस्तकालय
गांधीचौक-सूरत



मुद्रक:-मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
मुद्रणालय:-'जैन विजय' प्रिन्टिंग प्रेस
गांधीचौक-सूरत (गुजरात)

स्व० ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी स्मारक ग्रन्थमाला नं० १३

प्रस्तावना



करीब ४० दि० जैन ग्रंथोंके लेखक, अनुवादक, टीकाकार वा संपादक तथा दि० जैन समाजमें अनेकविध संस्थाओंको जन्म देनेवाले व जैन धर्मके प्रचारके लिये रातदिन अथक् परिश्रम करनेवाले और 'जैनमित्र' साप्ताहिक पत्र-सूरतकी यशस्वी संपादकी करीब ३५ वर्षों तक अविरलरूपसे करनेवाले व कुछ वर्ष वीर व सनातन जैनके संपादक-श्रीमान् जैन धर्मभूषण धर्मदिवाकर श्री० ब्र० सीतलप्रसादजी (लखनऊ नि०) का दुःखद स्वर्गवास वीर सं० २४६८ वि० सं० १९९८ में लखनऊमें हुआ था तब हमने आपकी धर्मसेवा, जातिसेवा व "जैनमित्र" की सेवाके स्मारकके लिये आपके नामकी एक सुलभ ग्रंथमाला "जैनमित्र" के ग्राहकोंके लाभार्थ निकालनेके लिये "जैनमित्र" में कमसेकम १००००) की अपील की थी, लेकिन उसमें करीब ६०००) ही आये थे तो भी हमने जैसे तैसे प्रबन्ध करके इस ग्रंथमालाका प्रारंभ वीर सं० २४७० में किया था, जो आज तक चालू है व जिसके द्वारा आज तक १२ ग्रंथ प्रकट होकर जैनमित्रके ग्राहकोंको भेंटमें दिये जा चुके हैं जिनके नाम व परिचय इस प्रकार हैं—

१. स्वतंत्रताका सोपान—(ब्र० सीतल कृत) अप्राप्य मू० ३)

२. श्री आदिपुराण—(स्व० कवि पं० तुलसीरामजी जैन देहली) कृत छन्दोबद्ध मू० ४)

३. श्री चंद्रप्रभ पुराण—(स्व० कविरत्न पं० हीरालालजी जैन बडौत) रचित छन्दोबद्ध मू० ५)

४. श्री यशोधर चरित्र—महाकवि पुष्पदन्त रचित ग्रन्थका पं० हजारीलालजी जैन कृत हिन्दी अनुवाद मू० ४)

५. श्री सुभौम चक्रवर्ति चरित्र—भट्टारक श्री रत्नचन्द्रजी विरचित मूल और पं० लालारामजी शास्त्रीकृत हिन्दी टीका मू० ३)

६. श्री नेमिनाथपुराण—ब्र० नेमिदत्त रचित संस्कृत ग्रन्थका पं० उदयलालजी कासलीवाल कृत हिन्दी अनुवाद मू० ४)

७. परमार्थ वचनिका तथा उपादान निमित्तकी चिट्ठी—(कविवर पं० बनारसीदासजी रचित) ब्र० सीतलप्रसादजी कृत भावार्थ तथा ५३ सुखसागर भजन सहित मू० १)

८. श्री धन्यकुमार चरित्र—(भ० सकलकीर्ति विरचित) संस्कृतसे हिन्दी भाषामें पं० उदयलालजी कासलीवाल कृत अनुवाद। मू० १।)

९. श्री प्रश्नोत्तर श्रावकाचार—(भट्टारक श्री सकलकीर्तिजी विरचित संस्कृत ग्रन्थकी पं० लालारामजी शास्त्री कृत हिन्दी टीका। मू० ४)

१०. श्री अमितगति श्रावकाचार—आचार्य श्री अमितगति रचित मूल श्लोक तथा पं० भागचन्दजी कृत वचनिका। मू० ४)

११. श्रीपालचरित्र छन्दबद्ध—कविवर परिमल्लजी रचित दूसरीवार मू० ३)

१२. "जैनमित्र" का हीरक जयंति अङ्क—(संपादक जैन-मित्र द्वारा संकलित व प्रकाशित) मू० ३)

और अब यह १३ वां ग्रन्थ **धर्मपरीक्षा** ग्रन्थराज—

—जो आचार्यवर्य अमितगति आचार्य विरचित मूल ग्रंथका सुजानगढ़ नि० स्व० पं० पन्नालालजी बाकलीवाल कृत हिन्दी भाषानुवाद प्रकट किया जाता है।

यह ग्रन्थ प्रथमवार सं० १९५७में जैन ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बईसे पं० पन्नालालजी बाकलीवालने आकलूजकी प्रतिष्ठा समय प्रकट किया था। बादमे उन्होने ही इसकी दूसरी आवृत्ति सं० १९६४ में कुण्डलपुरके मेलेके समय प्रकट की थी, वह भी बिक जानेपर इसकी तीसरी आवृत्ति भारतीय दिगम्बर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्थासे पं० श्रीलालजी काव्यतीर्थने प्रकट की थी वह भी बिक जानेसे कई वर्षोंसे यह "धर्मपरीक्षा" ग्रन्थ नहीं मिलता था अतः हमने इसको यह चतुर्थ आवृत्ति प्रकट करके उसे "जैनमित्र"के ६२ वें वर्षके ग्राहकोंको उपहारमें देनेका प्रबंध किया है जो कि ब्र० सीतल स्मारक ग्रन्थमालाका १३ वां ग्रंथ है।

इस प्रकार इस ग्रन्थमालासे ४२।)के मूल्यके १३ ग्रंथ प्रकट हो चुके हैं। हां, इस ग्रंथमालाकी रकम बहुत कम होनेसे इतने बड़े बड़े ग्रन्थ ग्राहकोंको नहीं दे सकते अतः प्रति वर्ष प्रत्येक ग्राहकसे १) इस ग्रन्थमालाके लिया जाता है तभी ही यह ग्रन्थ-माला इतना अधिक साहित्य भेंटमें दे सकती है।

इस धर्मपरीक्षा ग्रन्थका मूल्य ३) रखा गया है। और बिक्रीके लिये अमुक प्रतियां अलग निकाली गई हैं अतः यह ग्रन्थ मूल्यसे भी दि० जैन पुस्तकालय-सूरतसे मिल सकेगा।

ग्रंथकर्ता श्रीअमितगत्याचार्यका परिचय

इस 'धर्मपरीक्षा' ग्रंथराजके रचयिता-आचार्यवर्य श्री अमितगति आचार्यका परिचय इस ग्रंथमें देना आवश्यक है। क्योंकि यह ग्रंथ एक साधारण ग्रंथ नहीं है लेकिन जैन धर्मका प्रचार करने करानेवाला प्राचीन महान् ग्रंथराज है।

श्री अमितगति आचार्य श्री विक्रमकी दशवीं शताब्दिके उत्तरार्धमें हो गये हैं। आपकी गुरु-परंपरा इस प्रकार है—

श्री काष्ठासंघके माथुर संप्रदायके पट्टके मुनियोंमें श्रेष्ठ श्री वीरसेन आचार्य हुए, उनके शिष्य देवसेन आचार्य हुए, जिनके शिष्य अमितगति (प्रथम) आचार्य हुए, उनके शिष्य नेमिषेण नामके आचार्य हुए, जिनके शिष्य माधवसेन नामक आचार्य हुए और माधवसेन आचार्यके विद्वान् शिष्य अमितगति आचार्य (द्वितीय) हुए, जिन्होंने ही विक्रम सं० १०७० में यह धर्मपरीक्षा ग्रंथकी रचना संस्कृत भाषामें दो मासमे ही पूर्ण की थी।

इस ग्रंथमें कुल २० परिच्छेद हैं जिनकी कुल श्लोक संख्या २०४१ हैं अर्थात् यह ग्रंथ आजकलका नहीं है लेकिन करीब १००० वर्ष पहलेका रचा हुआ है।

श्री अमितगति आचार्यने एक नहीं लेकिन करीब २० ग्रन्थोंकी रचना की थी जिनके नाम हैं:—

सुभाषित रत्नसन्दोह, अमितगति श्रावकाचार, धर्मपरीक्षा, पंचसंग्रह, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सार्द्धद्वयद्वीप(ढाईद्वीप) प्रज्ञप्ति, भावना त्रिंशतिका, चन्द्रप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि। इनमेंसे सुभाषित-

रत्नसंदोह, अमितगति श्रावकाचार, धर्मपरीक्षा और पंचसंग्रह सार्थ प्रकट हो चुके हैं व शेष अप्रकाशित हैं व कहीं प्राप्त नहीं हो सकते हैं जिनकी खोजकी आवश्यकता है।

जिस समय दशवीं शताब्दिमें श्री अमितगति आचार्य हुए उस समय भट्टारकोंकी स्थापना ही नहीं हुई थी, क्योंकि भट्टारकोंकी स्थापनाका समय बारहवीं शताब्दि है।

श्री अमितगति आचार्यने इस धर्मपरीक्षा ग्रन्थमें दो विद्याधर श्री मनोवेग व पवनवेगको लक्ष्य करके संवादरूपमें रचना की है। इन दोनोंमें श्री मनोवेग विद्याधर सम्यग्दृष्टि था तो पवनवेग विद्याधर मिथ्यादृष्टि था। इसमें मनोवेग व पवनवेगका धार्मिक संवाद प्रकट किया गया है, जिसमें अनेकानेक वैदिक व जैन ग्रन्थोंके आधारपर मनोवेगने पवनवेगको अन्य दृष्टियोंकी कल्पित पोल समझाकर उसको जैनधर्मकी श्रेष्ठता बतला दी। बादमें आप दोनों एक वनमें श्री १०८ मुनिश्री जिनमतिजीको मिले, जहां मुनिश्रीके दर्शन व उपदेशसे पवनवेग इतना प्रभावित हुआ कि उसने मिथ्या मार्ग छोड़ दिया व १२ व्रत ग्रहणकर सम्यग्दृष्टि होगया। यह सब बहुत अलंकारिक भाषामें आचार्यने संस्कृतमें वर्णित किया है जिसका अक्षरशः अनुवाद ही इस ग्रन्थमें मिलेगा अर्थात् भाषानुवाद कर्ताने इसमें अपनी ओरसे कुछ भी नहीं बढ़ाया है।

जिस समय श्री अमितगति आचार्य विद्यमान थे उस समय धारानगरीमे राजा मुंज राज्य करते थे और इस मुंजराजकी सभामें ९ रत्न (पंडित) थे, उनमें एक श्री अमितगतिजी भी थे ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार इस धर्मपरीक्षा ग्रंथके रचयिता श्री अमितगति आचार्यवरका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है जो पाठकोंको आपका परिचय पानेके लिये बहुत उपयोगी होगा और

वे जानेंगे कि जैन संप्रदायमें कैसेर विद्वान् आचार्य हो गये हैं और उनके बनाये कैसेर ग्रंथ मौजूद हैं।

यह सब हाल हमने श्री० पं० पन्नालालजी बाकलीवालकी प्रथम प्रस्तावना तथा इस ग्रंथके अंतमें आचार्यश्री द्वारा दी गई प्रशस्तिसे संकलित किया है।

इस प्रकार श्री ब्र० सीतलप्रसाद स्मारक ग्रंथमाला नं० १३ के धर्मपरीक्षाका यह संक्षिप्त परिचय है।

सूरत-वीर सं. २४८७
सं. २०१८
आषाढ़ कृष्णा ९
ता० ६-७-१९६१

निवेदक:—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
-प्रकाशक



श्रीवीतरागाय नमः ।

श्री अमितगति आचार्य विरचित—

धर्मपरीक्षा

[संस्कृतसे हिन्दी अनुवाद]

प्रथम परिच्छेद

मङ्गलाचरणम् ।

श्रीमान[illegible]के जगद्गृहं बोधमयः प्रदीपः ।

समन्ततो द्योतयते यदीयो भवन्तु ते तीर्थकराः श्रिये नः ॥ १ ॥

कर्मक्षयानन्तरमर्चनीयं विविक्तमात्मानमवाप्य पूतं ।

त्रैलोक्यचूडामणयो भवन्ति भवन्तु मुक्ता मम मुक्तये ते ॥ २ ॥

वचोंऽशुभिर्भव्यमनः सरोजं निद्रां न वै बोधितमेति भूयः ।

कुर्वन्तु दोषोदयनोदिनस्ते [illegible] मम सूरिसूर्याः ॥ ३ ॥

शरीरजानामिव भाक्तिकानामनुग्रहार्थं पितरो धनानि ।

यच्छन्ति शास्त्राण्य[illegible] ये तेऽध्यापका मे वितरन्तु [illegible] ॥ ४ ॥

कदर्थिताशेषजगत्त्रयं ये विदारयन्ते [illegible] ।

[illegible] कुर्वन्तु ते [illegible] ॥ ५ ॥

यस्याः प्रसादेन [illegible] [illegible]मेति ।

[illegible] मे [illegible] ॥ ६ ॥

[illegible]

[illegible] ॥ ७ ॥

दोहा

पंचपरमपद वन्द करि, धर्मपरीक्षा ग्रन्थ ।
लिखूं वचनिकामय सरल, जो शिवपुरको पन्थ ॥ १ ॥

जिनका ज्ञानरूपी दीपक तीन वातवलयरूपी उत्तुङ्ग मनोहर कोटवाले इस जगत्‌रूपी गृहको चारों तरफ उद्योत करता है, वे तीर्थङ्कर भगवान् हमारे कल्याणरूपी लक्ष्मीके अर्थ कारणरूप होवो ॥१॥ जो समस्त कर्मोंके नाश होनेपर पूज्य, अतिपवित्र और परकीय उपाधिसे रहित निजस्वरूपको प्राप्त होकर तीन लोकमें शिरोमणिभूत होते हैं, वे सिद्ध भगवान् मेरी मुक्तिके लिये कारणभूत होवो ।२॥ जिनके वचनरूपी किरणोंसे भव्यपुरुषोंके मनरूपी कमल प्रफुल्लित होकर पुनर्वार निद्राको (सङ्कोचभावको) प्राप्त नहीं होते, और दोषरूपी रात्रिके उदयको दूर करनेवाले हैं, वे आचार्योंमें सूर्यसमान आचार्य परमेष्ठी मेरी चर्य्याको निर्दोष करो ॥३॥ जैसे भक्तिमान् पुत्रको मातापिता धनादिक सम्पत्तियें प्रदान करते हैं, उसी प्रकार अपने शिष्य वर्गोंको धार्मिक शिक्षारूपी धनके देनेवाले उपाध्याय मेरे समस्त दुःख हरो ॥४॥ जो तीन जगत्को पीड़ित करनेवाले कषायरूपी शत्रुको समता शीलादि शस्त्रोंसे विदारण करते हैं, वे समभावके धारक साधुरूप योद्धा मुझे मोक्षरूपी लक्ष्मीका पति करो ॥५॥

जिसके प्रसादसे विनयी पुरुष दुर्लंघ्य शास्त्ररूपी समुद्रके पार हो जाते हैं, वह सरस्वती (जिनवाणी) मुझे कामधेनुकी तरह मनोरथकी सिद्धि करो ॥६॥ जिस प्रकार प्रबल पवनसे रेणुपुञ्ज शीघ्र ही उड़ जाते हैं, उसी तरह इस त्रैलोक्याकार जगत्को उपद्रव करनेवाले कम्पायमान होते हुए मेरे समस्त विघ्न क्षणभरमें नाशको प्राप्त

होवो ॥७॥ अपने गुणोंसे तीन लोकको आनन्द करनेवाले सुजन पर दुष्ट (खल) कोप करता है। जैसे अपनी किरणोंसे रात्रिको शोभायमान करनेवाले चन्द्रमाको देखकर क्या राहु नहीं ग्रसता? ग्रसता ही है ॥८॥ क्योंकि सत्पुरुषको देखकर दुर्जन, त्यागी ब्रह्मचारीको देखकर कामी, स्वभावसे रात्रिमें जगनेवालेको देखकर चोर, धर्मात्माको देखकर पापी, शूर-वीरको देखकर भीरु (कायर) और कविको देखकर अकवि (मूर्ख) कोपको प्राप्त होता है ॥९॥ मैं शंका करता हूँ कि *विधाताने सर्प, खल और काल (यमराज) ये परके अपकारार्थ ही बनाये हैं यदि ऐसा नहीं होता, तो ये सब सुखरूप तिष्ठती प्रजाको देख किसलिये उद्वेगरूप करते? ॥१०॥

कवियोंकर आराध्यमान किया हुवा भी खल अपनी वक्रताको नहीं छोड़ता। जैसे, परको ताप करनेमें प्रवीण अग्नि, पूजा की हुई भी जला देती है, अपने स्वभावको नहीं छोड़ता ॥११॥ आचार्य शँका करते हैं कि, विधाताने मेघ, चन्दन, चन्द्रमा और सत्पुरुष ये ४ पदार्थ एक ही जातिके बनाये हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो ये सब विना कारण ही जनोंका निरन्तर महान् उपकार क्यों करते? ॥१२॥ क्या राहुकर पीड़ित किया हुवा (ग्रसा हुवा) भी चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणोंसे तृप्त नहीं करता? अवश्य करता है। इसी प्रकार दुर्जनोंकर तिरस्काररूप किया हुवा भी सज्जन पुरुष अपने गुणोंसे सदा उपकार ही करता है ॥१३॥ जैसे

---

* यह श्लोक अन्यमतकी अपेक्षा है। क्योंकि अन्यमतावलम्बी ब्रह्माको (विधाताको) जगत्का कर्ता मानते हैं जैनी जगत्को अनादिनिधन मानते हैं। परन्तु कहीं२ इसीतरहसे अन्यमतकी अपेक्षा करनेकी अनेक आचार्योंकी रूढ़ि है। सो पाठक महाशय उसको सत्य व जिनमतप्रतिपाद्य न समझ लें।

स्वभावसे ही चन्द्रमाको शीतल और सूर्यको उष्ण देख कोई भी रागद्वेष नहीं करते। उसी प्रकार सज्जनमें गुण और दुर्जनमें दोष देखकर सत्पुरुष कुछ भी तोष रोष (हर्षविषाद) नहीं करते॥ १४ ॥ जो धर्म गणधरोंकर परीक्षा किया गया है वह मुझकर किस प्रकार परीक्षा किया जा सकता है? क्योंकि जिस वृक्षको गजराज तोड़ डालता है उसको शशक (खरगोश) कदापि नहीं तोड़ सकता ॥१५॥

परन्तु प्रवीण आचार्योंने जिस धर्ममें प्रवेश कर सरल कर दिया, उसमें मुझ सरीखे मूर्खका भी प्रवेश हो सकता है। क्योंकि वज्रकी (हीरेकी) सूईसे छिद्र किये हुए मुक्तामणिमें नरम सूत्र भी प्रवेश करता देखिये है ॥१६॥ अथानन्तर अकृत्रिम जम्बूवृक्षकर चिह्नित, अनेक रत्नमयी रचनाकर युक्त, तथा अनेक राजाओंकर सेव्यमान, चक्रवर्ती राजाकी सदृश चारों तरफसे अनेक द्वीप समुद्रोंकर वेष्टित, लक्ष योजन है व्यास जिसका ऐसा गोलाकार यह जम्बूद्वीप हैं॥१७॥ इसमें हिमाचल पर्वतकी दक्षिण तरफ तीन तरफसे समुद्रकर वेष्टित, धनुषाकार अति मनोहर यह भारतक्षेत्र है। सो ऐसा शोभता है कि मानो अपनी धनुषाकाररूप शोभासे कामदेवके धनुषको भी तिरस्कार करता है ॥१८॥ और षट् आवश्यकोंकर मुनियोंके निर्दोष चारित्रकी तरह अपने अति मनोहर छहखण्डोंके द्वारा मनुष्योंकर याचना करने योग्य चक्रवर्तीकीसी लक्ष्मीको (शोभाको) प्रगट करता है ॥१९। क्योंकि यह क्षेत्र हिमाचलसे निकली हुई गंगा सिन्धु दो बड़ी नदियोंकर तथा विजयार्द्ध पर्वतकर विभाग किया हुआ ६ खण्ड हो गया है। शुभ अशुभ रूप कर्मोंका समूह जैसे अनेक विशेषता लिये मन वचन कायके तीनों योगोंकर ६ प्रकार हो जाता है ।२०॥

इस भरतक्षेत्रके मध्य अनेक रमणीय स्थानोंकर संयुक्त पूर्वके समुद्र तटसे लेकर पश्चिम समुद्रकी तट पर्यन्त लम्बा (यहांतक चक्रवर्तीकी आधी विजय होनेके कारण) यथार्थ नामका धारक विजयार्द्ध नामा पर्वत है, सो कैसा शोभता है कि मानो अपना देह पसारकर शेषनाग ही पड़ा है ॥२१॥ वह विजयार्द्ध बढ़ी हुई अपनी किरणोंके समूहसे नाश किया है महा अन्धकार जिसने ऐसा प्रकाशमान होता हुवा पृथ्वीको भेदकर निकले हुये दूसरे सूर्यकी सदश शोभाको प्राप्त हो रहा है ॥२२॥ इस विजयार्द्ध पर्वतके उत्तर और दक्षिण तरफ विद्याधरोंकर सेवनीय दो श्रेणी हैं। सो कैसी हैं कि श्रवण करने योग्य मनोहर हैं गीत जिनके ऐसे, भ्रमरोंकर सहित हस्तीके दोनों गंडस्थलोंपर मानो मदरेखा ही है ॥२३॥ उनमेंसे दक्षिण श्रेणीपर ५० और उत्तर श्रेणीपर ६० इसप्रकार ११० निर्दोष कांतिवाले विद्याधरोंके नगर द्वादशांगके ज्ञाता गणधर भगवानने कहे हैं ॥२४॥ सो यह उत्तग विजयार्द्ध पर्वत विचित्र प्रकारके पात्र (पूज्य पुरुष), कटक (सेना) और रत्नोंके खजानोंकर प्रकाशमान, देव और विद्याधरोंकर सेवनीय है चरण जिसके ऐसे चक्रवर्ति राजाकी समान शोभता है ॥२५॥

उसपर सिद्धवरकूटके अकृत्रिम चैत्यालयोंमें विराजमान जिनेन्द्र भगवानके अकृत्रिम प्रतिबिम्ब सेवन किये हुये भव्य पुरुषोंके दुःखोंको शीतको अग्निशिखाकी समान नष्ट करते हैं ॥२६॥ जहांपर कर्मरूपी रजको नष्ट करनेमें तत्पर ऐसे चारणऋद्धिके धारक मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छा करनेवाले) मुनिगण अपने वचनोंकर गर्दको दूर करनेमें उद्यत ऐसे गम्भीर शब्दवाले बादलोंकी वर्षा समान जनसमूहको आस्वासन करते हुए उपदेश करते हैं ॥२७॥ उस विजयार्द्धकी

दक्षिण श्रेणीपर वैजयन्ती नामकी प्रसिद्ध नगरी है। जो कैसी है कि मानो अनेक प्रकारके प्रकाशमान अपने विमानोंकर शोभित देवोंकी नगरीको जीतती है।।२८।। उस नगरीमें समस्त जन भोगभूमियोंकी समान निराकुलतापूर्वक मनोवांछित भोगोंको भोगते हुये परस्पर गाढानुराग सहित सुखसे काल बिताते हैं।।२९।। आचार्य शंका करते हैं कि,—मानो प्रजाकी समस्त सुन्दरता एक ही जगह दिखानेके लिये ही विधाताने उस नगरीमें समस्त गृह उत्तमोत्तम मनोहर चुन चुनके बनाये हैं।।३०।।

आचार्य कहते हैं कि,—जिस नगरीमें अपनी प्रभा करके स्त्रियोंने तो स्वर्गकी देवांगनाओंको, विद्याधरोंने देवोंको, विद्याधरोंके राजाओंने इन्द्रोंको, मकानोंने विमानोंको जीत लिया, उस वैजयन्ती नगरीका वर्णन हमसे किस प्रकार हो सकता है? कदापि नहिं हो सकता।।३१।। उस नगरीमें स्वर्गके इन्द्रकी समान अपने प्रतापकर तिरस्कार किया है शत्रुओंका तेज जिसने ऐसा, तथा वज्रसे (वज्रशस्त्र वा हीरामणिसे) शोभायमान है हाथ जिसका ऐसा जिनशत्रु नामा विद्याधरोंका मडलीक राजा राज्य करता था।।३२।। यद्यपि वह राजा अन्यके दोष प्रगट करनेमें तो मौनी था, परन्तु न्यायशास्त्रके विचार करनेमें मौनी नहीं था। तथा परधन हरनेके लिये तो हस्तरहित था, परन्तु गर्विष्ठ वैरियोंका गर्व दूर करनेके लिये हाथ रहित नहीं था।।३३।। तथा परस्त्रियोंको अवलोकनमें तो वह अन्धा था परन्तु जिनेन्द्र भगवान्की मनोहर प्रतिमाओंके दर्शन करनेके लिये अन्धा नहीं था। यद्यपि पाप कार्य करनेके लिये तो वह शक्ति रहित निर्बल था, परन्तु शिवसुखकारी धर्मकार्योंको सम्पादन करनेके लिये शक्ति-हीन नहीं था।।३४।। चन्द्रमा तो कलङ्की है, सूर्य आतापकारी है,

समुद्र जड़रूप है, सुमेरुपर्वत कठोर है और इंद्र गोत्रभेदी है। इस कारण चन्द्र सूर्य समुद्र सुमेरु और इंद्र उस राजाकी समान नहीं हो सके। क्योंकि उस राजामें उपर्युक्त अवगुणोंमेंसे एक भी अवगुण नहीं था ॥ ३५ ॥

यद्यपि वह राजा पार्थिव था, परतु पार्थिव कहिये पृथ्वीका विकार पाषाणादि जड़रूप अज्ञानी नहीं था, किंतु उत्तम ज्ञानका धारक था। तथा वह राजा पावन (पवित्र) था, परंतु पावन कहिये पवनका विकार अस्थिर नहीं था, अर्थात् स्थिर चित्तवाला था। तथा वह राजा कलानिधान (कलाओंका निधान चतुराइयोंका सागर) था, परंतु कलानिधान कहिये चन्द्रमाकी सदृश कलङ्की नहीं था, अर्थात् सर्वदोषरहित था। इसके सिवाय वह राजा वृषवर्द्धन (धर्मका बढ़ानेवाला) होनेपर भी वृषवर्द्धन कहिये महादेवकी तरह स्त्रीका अनुरागी नहीं था, किंतु सत्यानुरागी था ॥ ३६ ॥ उस राजाके जिन धर्म सम्बन्धी पारमार्थिक तथा सांसारिक विद्याओंकी जानकार, और वृद्धिरूप है कामरूपी पवनका वेग जिसके ऐसी, वायुवेगा नाम विद्याधरी अतिशय प्यारी रानी होती भई ॥ ३७ ॥ किसी किसी स्त्रीमें नेत्रोंको हरण करनेवाला रूप होता है और किसी किसी स्त्रीमें विद्वानोंकर प्रशंसनीय शील भी होता है। परंतु उस वायुवेगा रानीमें अनन्यलभ्य कहिये अन्य किसी स्त्रीमें नहीं पाया जाय ऐसा महाकांति सहित रूप और शील दोनों होते भये ॥ ३८ ॥ महादेवके पारवतीकी सदृश, विष्णुके लक्ष्मीकी सदृश, दीपकके शिखाकी तरह, साधुके दयाकी समान, चन्द्रमाके चांदनीकी समान, सूर्यके प्रभाकी समान उस जितशत्रु राजाके वह मृगाक्षी अभिन्नरूप (दो देह होनेपर भी एक रूप) प्रिया होती भई ॥ ३९ ॥ आचार्य उत्प्रेक्षा करते हैं कि,—विधाताने उस महाकांतिवाली वायुवेगाको बनाकर उसकी रक्षा

करनेके लिये कामको मानो रक्षक ही बनाया है। यदि ऐसा न होता तो उसे देखनेवाले समस्त जनोंको कामदेव अपने बाणोंसे काहेको बेधता? अर्थात् वह रानी बड़ी रूपवती थी। उसको जो कोई देखता वही कामबाणके मारे पागलसा हो जाता था ॥४०॥

वह वायुवेगा हाथोंकर तो पत्रमयी और, नेत्रोंकर पुष्पमयी और स्तनोंकर फली हुई, और तरुण पुरुषोंके नेत्ररूपी मृगोंकर अवगाहित (अवगाही हुई) तरुणतारूपी मनोहर बेलकी समान शोभती थी ॥४१॥ चिंतवन करते ही प्राप्त है मनोहर भोग जिसको ऐसा, वह परम सुन्दर जितशत्रु राजा उस वायुवेगाके साथ रमता हुआ सचीके साथ इंद्र तथा रतिके साथ कामकी तरह समय बिताता था ॥४२॥ सो वह तन्वी उस विद्याधरोंके राजा द्वारा सेवन की हुई, प्रशंसनीय है वेग जिसका, महा उदयरूप, शोकका दूर करनेवाले, नीतिकी तरह प्रार्थना करनेयोग्य मनोवेग नामा पुत्रको जनती हुई ॥४३॥ सो अपने कलाके समूहसे चन्द्रमाकी तरह नष्ट किया है अन्धकार जिसने ऐसा, निर्मल चारित्रवाला वह कुमार दिनों-दिन अपने निर्मल गुणसमूहके साथ २ बढ़ता हुआ ॥४४॥ जैसे लक्ष्मीका (रत्नोंका) घर, स्थिर, गंभीर, समुद्र अपनी लहरोंसे नदियोंका ग्रहण करता है, तैसे यह कुमार भी अपनी निर्मलबुद्धिसे राजाओंकी चार प्रकारकी विद्यायें ग्रहण करता हुआ ॥४५॥

तथा यह महानुभाव बाल्यावस्थामें ही मुनींद्र महाराजोंके चरण-कमलोंका भँवरा, जिनेंद्र भगवानके वाक्यामृतके पानसे पुष्ट, समीचीन जैनधर्मका अनुरागी, पूजनीयबुद्धिका धारक होता भया ॥४६॥ अनंत है सुख जिसमें ऐसी परमपूज्य, सिद्धवधूको शीघ्र ही वश करनेमें समर्थ, भवरूपी दावानलको जलकेसमान ऐसे क्षायिक सम्यक्त्वरूपी

रत्नको यह कुमार धारण करता हुवा ॥४७॥ उस सुचतुर मनोवेगका अनवांछित कार्यकी सिद्धि करनेवाला प्रियापुरी नगरीके विद्याधर राजाका वेगशाली पवनवेग नामा पुत्र प्रिय मित्र होता भया सो जिसप्रकार अग्निको वेगरूप करनेके लिए पवन होता है, उसीप्रकार यह पवनवेग भी मनोवेगके मनको वेगरूप (चंचल) करनेवाला मित्र होता हुवा ॥४८॥ ये दोनों मित्र परस्पर एक दूसरेके बिना एक क्षण भी रहनेमें असमर्थ, महा प्रतापशाली, सूर्य और दिनकी तरह एकही जगह रहनेवाले, सज्जन पुरुषोंको सन्मार्ग प्रकाश करनेमें प्रवीण होते भये ॥४९॥ इन दोनोंमेंसे प्रियापुरीके राजाका पुत्र पवनवेग महा मिथ्यात्वरूपी विषसे मूर्छित, जिनेन्द्र भगवान्‌के कहे हुये तत्त्वोंसे बाह्य, कुतर्क और खोटे दृष्टांत देने आदिमें बड़ा विवाद करनेवाला था ॥५०॥

परन्तु जिनेन्द्रके धर्मरूपी अमृतमें मग्न है चित्तकी वृत्ति जिसकी ऐसा मनोवेग भव्य, उसको जिनधर्मसे विमुख मिथ्याती देख मनही मन अच्छा शोकके साथ सन्तापित होता भया ॥ ५१ ॥ बड़े कष्टसे है अन्त जिसका ऐसे दुःखमें पड़ते हुए मिथ्यात्वसे छुड़ाकर किस-प्रकार अपने मित्रको निवारण करूंगा। क्योंकि सुचालक हंसको हितैषी मित्र कहते हैं कि जो कुमार्गसे छुड़ाकर समीचीन पवित्र धर्ममें लगावे ॥५२॥ मिथ्यात्वसे छुड़ाकर जिसप्रकार अपने मित्रको जिनधर्ममें लगाना चाहिए, इत्यादि विषयको ही अहोरात्र चिंतवन करता हुवा मनोवेग निद्रारहित होता भया अर्थात् इसी चिंताके कारण मनोवेगको रात्रिमें निद्रा भी नहीं आती थी ॥५३॥ वह मनोवेग नित्य ही अढाई द्वीपके कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोंका (मन्दिरोंका) दर्शन करता हुवा फिरता था। क्योंकि सत्पुरुष हैं; वे

धर्म कार्योंमें कदापि आलस्य नहीं करते ॥५४॥ एकदिन मनोवेग कृत्रिम अकृत्रिम दोभेदरूप समस्त चैत्यालयोंके दर्शन करके अपने घरको लौटकर आता था, सो मार्गमें एक जगह उसका विमान अटक गया ॥५५॥

अपने विमानके अटक जानेसे घबरा गया है चित्त जिसका ऐसा मनोवेग विचार करने लगा कि यह विमान किसी वैरीने अटका दिया अथवा किसी ऋद्धिधारी मुनिके प्रभावसे अटका है ? ॥ ५६ ॥ विमानके अटकनेका कारण जाननेके लिए मन वेग नीचे पृथिवीको देखता हुवा, सो उसने अनेक पुर ग्रामोंकर अत्यन्त रमणीय मालव देशको देखा ॥ ५७ ॥ उस मालव देशके मध्यभागमें जगत्प्रसिद्ध अतिविस्तीर्ण पृथ्वीकी उतम ऋद्धि और शोभाको देखनेके लिये मानो स्वर्गपुरी ही आई हो, ऐसी उज्जयिनी नामा नगरी देखी ॥५८॥ उस नगरीका कोट चन्द्रमाकी किरणसमान उज्ज्वल और बहुत ऊँचा शोभायमान है सो मानों उज्ज्वल रत्नसे विभूषित मस्तकसे पृथ्वीको भेदकर स्वर्गको देखनेके लिये शेषनाग ही प्रवर्त्ता है ॥५९॥ उस नगरीके चारों तरफ वेश्याकी मनोवृत्तिके सदृश उत्पन्न हुये हैं बड़े बड़े जलजन्तु जिसमें उनकर वक्र और कष्टरूप है प्रवेश जिसका तथा अतलस्पर्शी है मध्यभाग जिसका ऐसी खाई शोभायमान है। भावार्थ—यह खाई वेश्याके मनोभावको जतानेवाली है ॥६०॥

उस नगरीमें मकान ऐसे हैं कि जिनके शिखर आकाशको स्पर्श करते हैं, और जिनमें मृदंगादि अनेक प्रकारके बाजोंके शब्द हो रहे हैं मानो वे राजभवन अपनेपर फहराते हुये धुजारूपी हाथोंके द्वारा कलिके प्रवेशको निवारण ही कर रहे हैं ॥६१॥ उस नगरीमें

जिसे बड़ी चतुर रमणीय रूपवती शोभायमान भ्रूरूपी धनुषके द्वारा नेत्रोंके कटाक्षरूपी बाणोंको चलाकर सज्जनोंके समूहको व्यथित करती हुई स्वर्गकी देवांगनाओंको भी जीतती थीं ॥६२॥ ग्रंथकर्ता कहते हैं कि, जिस नगरीको देखकर महाभिमानके अधिपतिपनेका गर्व रखनेवाले कुबेर भी अपने हृदयमें दुर्निवार लज्जाको प्राप्त होते हैं, उस नगरीका वर्णन किस प्रकार हो सकता है ? ॥६३॥ उस नगरीकी उत्तर दिशामें परस्पर विरोध रखनेवाले जीवोंकर विराजमान, समस्त दिशाओंको उद्योत करनेवाला एक मनोहर वन सत्पुरुषोंके समान शीघ्र फल देनेवाले तथा तृप्त किये हैं समस्त प्राणियोंके समूह जिन्होंने ऐसे, और समस्त ऋतु सम्बन्धी दिखाई है विचित्र शोभा जिन्होंने, समस्त इंद्रियोंको आनन्द देनेवाले और मनको अतिशय प्रिय ऐसे जीवोंके समान अनेक महाफलोंसे शोभायमान है ॥६४–६५॥

उस वनमें नर सुर और विद्याधरोंकर उपासित, केवलज्ञानी, नष्ट किया है घातिया कर्म जिन्होंने, संसारसमुद्रसे तरनेको नौका समान, बहुत ऊँचे स्फटिकमयी सिंहासनपर विराजमान, प्रफुल्लित किरणोंके समूहकर चन्द्रमाकी तरह मुनियोंकर सेवित, अपने यशरूपी पुंजको प्रकाश करते हुये एक महामुनि देखे ॥६६–६७॥ सो तीन भवनके इन्द्रोंकर वन्दनीय ऐसे मुनीश्वरको देखकर जैसे मयूरको रजके हरण करनेवाले मेघको देखकर अथवा चिरकालके बिछुरे हुये प्रिय सहोदरको देखनेसे आनंद होता है उसी प्रकार मनोवेग महा आनंदको प्राप्त होता भया ॥६८॥ तत्पश्चात् वह मनोवेग मुनिमहाराजके चरणोंके दर्शनार्थ अति उत्सुक हो आकाशसे उतरकर इंद्रकी समान वनमें प्रवेश करता हुआ । कैसा है मनोवेग

कृती कहिये पंडित है, और फैली हुई है रत्नोंकी ज्योति जिसमेंसे ऐसे मुकटकर अत्यंत शोभायमान है ॥६९॥ अप्रमाण है श्रुत अवधि आदि ज्ञानके भेद जिनके, मस्तकपर स्थापे हैं हाथ जिन्होने ऐसे, मनुष्य विद्याधर देवनेके समूहकर वंदनीक, यति मुनियोंकर सहित जिनेन्द्र केवली भगवानको वारंवार नमस्कार करके वह मनोवेग सन्तुष्टचित्त हो मुनियोंकी सभामें बैठता हुवा ॥७०॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें प्रथम परिच्छेद पूर्ण भया ॥१॥



द्वितीय परिच्छेद

अथानंतर उस सभामें किसी एक भव्य पुरुषने अवधि ज्ञानी मुनि महाराजको नमस्कार करके विनय सहित पूछा ॥१॥ हे भगवन्! इस अपार संसारमें फिरते हुये जीवोंको सुख तो कितना है और दुःख कितना है सो कृपा करके मुझे कहिये ॥२॥ यह प्रश्न सुनकर मुनि महाराजने कहा कि हे भद्र! संसारके सुख दुःखका विभाग कर कहना बड़ा कठिन है, तथापि एक दृष्टांतके द्वारा किंचिन्मात्र कहा जाता है। क्योंकि दृष्टांतके विना अल्पज्ञ जीवोंकी समझमें नहीं आता सो ध्यान देकर सुन ॥३-४॥ अनेक जीवोंकर भरी हुई इस संसाररूपी अटवीके समान एक महावनमें दैवयोगसे कोई पथिक (रास्तागीर) प्रवेश करता हुवा ॥५॥

सो उस वनमें यमराजकी समान सूंडको ऊंची किये हुवे क्रोधायमान बहुत बड़े भयङ्कर हाथीको अपने सन्मुख आता हुवा देखा ॥६॥ उस हाथीने उस भयभीत पथिकको भीलोंके मार्गसे अपने आगे कर लिया सो उसके आगे२ भागता हुवा वह पथिक पहिले नहीं देखा ऐसे अन्धकूपमें गिर पड़ा ॥७॥ जिस प्रकार दुर्गम नरकमें नारकी धर्मका अवलम्बन करके रहता है, उसी प्रकार वह भयभीत पथिक उस कूपमें गिरतार सरस्तंब कहिये सरकी जड़को अथवा बड़की जड़को पकड़कर लटकता हुवा तिष्ठा ॥८॥ सो हाथीके भयसे भयभीत हो नीचेको देखता है तो उस कूपमें यमराजके दण्डकी समान पड़ा हुवा बहुत बड़ा एक अजगर देखा ॥९॥ फिर क्या देखा कि उस सरस्तंबकी जड़को एक श्वेत और एक काला दो

ऐसे मूसे निरन्तर काट रहे हैं। जैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष मनुष्यकी आयुको काटते हैं ॥१०॥

इसके सिवाय उस कूएमें चारों कषायोंकी समान बहुत लम्बे २ अतिभयानक चलते फिरते चारों दिशाओंमें चार सर्प देखे ॥११॥ उसी समय उस हाथीने क्रोधित होकर संयमको असंयमकी तरह कूपके समीप खड़े हुये किसी वृक्षको पकड़कर जोरसे हिलाया ॥ १२ ॥ सो उसके हिलनेसे उस पर जो मधुमक्खियोंका छत्ता था उसमेंसे समस्त मक्खियें निकलकर उस पथिकके शरीरपर चिपट, महादुःख देने लगीं ॥ १३ ॥ तब वह पथिक चारों तरफसे मर्मभेदी पीड़ा देनेवाली उन मधुमक्खियोंसे घिरा हुआ अतिशय दुःखित हो ऊपरिको देखने लगा ॥१४॥ सो वृक्षकी तरफ मुखको उठाकर देखते ही उसके होठों पर बहुत छोटा एक मधुका बिंदु आ पड़ा ॥१५॥

तब वह मूर्ख उस नरककी बाधासे भी अधिक बाधाको कुछ भी दुःख न समझ उस मधुबिंदुके स्वादको लेता हुआ अपनेको महासुखी मानने लगा ॥ १६ ॥ इस कारण वह अधम पथिक उन समस्त दुःखोंको भूलकर उस मधुकणके स्वादमें ही आसक्त हो फिर भी मधुबिंदुके पड़नेका अभिलाषा करता हुआ निश्चलमुख हो लटकता रहा ॥ १७ ॥ सो हे भाई! उस समय पथिकके जितना सुख दुःख है उतना ही सुख दुःख महा कष्टोंकी खानिरूप इस संसाररूपी घरमें इस जीवके है ॥ १८ ॥ सो जिनेन्द्र भगवान्ने कहा है कि—वह वन तो पाप है, वह पथिक है सो जीव है। हस्ती है सो मृत्यु (यमराज) की समान है। वह वटस्तम्भ है सो जीवकी आयु (उमर) है और कूआ है सो संसार है ॥१९॥ अजगर है सो नरक है। श्वेत श्याम दो मूषक हैं सो शुक्ल

और कृष्ण दो पक्ष हैं, जो उमरको घटा रहे हैं, और चार सर्प हैं सोई क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय हैं। तथा मधुमक्षिकायें हैं सो शरीरके रोग हैं ॥२०॥

मधुके बिन्दुका जो स्वाद है सो इन्द्रियजनित सुख (सुखाभास मात्र) है। इस प्रकार संसारमें सुख दुःखका विभाग है ॥२१॥ वास्तवमें इस संसारमें भ्रमण करते हुए जीवोंके सुख दुःखका विभाग किया जाय तो मेरुपर्वतकी बराबर तो दुःख है और सरसोंकी बराबर सुख है। इस कारण संसारके त्याग करनेमें ही निरन्तर उद्यम करना चाहिये ॥२२-२३॥ जो मूढ अणुमात्र सुखके लिये विषय-भोग सेवन करते हैं, वे मानों शीतकी बाधा दूर करनेके लिये वज्राग्निसे (बिजलीकी अग्निसे) तापनेकी इच्छा करते हैं ॥२४॥ यदि ढूंढा जाय तो कहीं पर अग्निमें भी बर्फ मिल सकता है। परन्तु संसारमें सुखकी प्राप्ति किसी कालमें कहीं भी नहीं है ॥२५।

मूढ लोक विषयभोग सम्बन्धी दुःखोंको सुखके नामसे कहते हैं परन्तु वास्तवमें वे सुख नहीं है। जैसे बुझे हुये दीपकको 'बढ गया' कहते हैं उसी प्रकार यह भी है ॥२६॥ जिस प्रकार धतूरेके पीनेसे नशा होने पर मनुष्यको सब सोना (पीला ही पीला) दीखता है, उसीप्रकार विषयोंकी आकुलतासे संसारी जीव दुःखदायक भोगोंको भी सुखदायक मानते हैं ॥२७॥ सुख धर्मके प्रभावसे ही होता है सो धर्मकी रक्षापूर्वक विषयसुख भोगना चाहिये। जैसे वृक्षके फल मिलते हैं, परन्तु वृक्षकी रक्षा करके फलको भोगना चाहिये। न कि वृक्षको विनाश कर। २८॥ सज्जन पुरुष हैं वे दुःखोंको पापसे उत्पन्न होते हुये देख पापको छोडते हैं क्योंकि ऐसा कौन मूर्ख है जो 'अग्निसे आताप होता है' ऐसा जानता हुआ भी अग्निमें प्रवेश

करै ! ॥२९॥ ये जीव धर्मके प्रभावसे ही सुन्दर, सुभग, सौम्य, उच्चकुली, शीलवान पंडित चन्द्रमाकी समान उज्वल स्थिर कीर्तिके धारक होते हैं ॥३०॥

और पापके प्रभावसे कुरूप दलिद्री, सबको बुरे लगनेवाले, नीचकुली, कुशीली, मूढ, बदनाम और दुष्ट होते हैं ॥३१॥ धर्मके प्रभावसे तो ये जीव हाथीपर सवार हो सबसे आदर सत्कार पाते हुये चलते हैं और पापके प्रभावसे निन्दित हो उन्हींके आगे आगे दौड़ते हैं ॥३२॥ धर्मके प्रभावसे तो सुन्दरताको उत्पन्न करनेवाली पृथ्वीकी समान प्रिय स्त्रियोंको पाते हैं। पापके प्रभावसे बिचारे दीन होकर उन्हीं स्त्रियोंको पालकीमें बिठाकर कहार बनके उठाये फिरते हैं ॥३३॥ धर्मके प्रभावसे कोई तो कल्पवृक्षके समान दान करते हैं और कोई पापके प्रभावसे नित्य हाथ पसार कर याचना करते हैं ॥३४॥ धर्मात्मा पुरुष हैं वे तो मनोहर स्त्रियोंसे आलिंगन करते हुये रत्नमयी महलोंमें सोते हैं और पापी हैं वे हाथमें शस्त्र धारण कर उन्हींकी रक्षा करते हैं अर्थात् पहरा देते हैं ॥ ३५ ॥

धर्मात्मा पुरुष तो सुवर्णके पात्रोंमें मिष्ट आहार भोजन करते हैं। और पापी हैं वे कुत्तेकी समान उनकी उच्छिष्ट खाते हैं ॥३६॥ धर्मात्मा पुरुष तो बहु मूल्य कोमल सचिक्कण वस्त्रोंको धारण करते हैं। पापियोंको सैंकड़ों छिद्रवाली एक लंगोटी नहीं मिलती ॥३७॥ पुण्यके प्रतापसे तो महापुरुषोंके लोकमें प्रसिद्ध यशोगान किये जाते हैं। और पापी हैं उन्हीं लोगोंके आगे सैंकड़ों खुशामदे करते हैं ॥३८॥ धर्मके ही प्रभावसे दशों दिशाओंमें फैली है कीर्ति जिनकी ऐसे तीर्थंकर, चक्रवर्ति, नारायण प्रतिनारायण आदि महापुरुष होते हैं और ॥३९॥ पापके प्रभावसे लोकमें निंदनीक, बामने, पांगले,

लंगड़े, अधिक रोमवाले, परके दास, दुष्ट और नीच होते हैं ॥४०॥

धर्म है सो मनोवांछित भोग, धन और मोक्षको देनेवाला है और पाप है सो इन सबको नाश करनेवाला समस्त अनर्थोंकी खानि है ॥४१॥ ज्ञानी अज्ञानी सभी जन कहते हैं कि 'इस संसारमें जो कुछ भला (इष्ट) है वह तो धर्मसे होता है और बुरा (अनिष्ट) है सो पापसे होता है, यह नियम जगत्में विख्यात है ॥४२॥ इस प्रकार प्रत्यक्षतया धर्म अधर्मका फल जानकर बुद्धिमान् पुरुष अधर्मको सर्वथा त्यागकर सदैव धर्माचरण ही करते रहते हैं और—॥४३॥ नीच हैं वे एक इसी जन्मके लिये ऐसा कुछ कर्म करते हैं जिससे वे लक्षों भवोंमें अनेक प्रकारके दुःख पाते हैं ॥४४॥ असह्य दुःखोंको बढ़ानेवाले विषयरूप मदिरासे मोहित हुए कुटिलजन आजकलके (दो दिन मात्रके) जीवनमें भी पापकार्योंको करते हैं ॥४५॥

इस क्षणभंगुर संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो सुख-दायक, साथ जानेवाली, पवित्र, स्वाधीन और अविनश्वर हो क्योंकि ॥४६॥ तरुण अवस्था है सो तो जराकर ग्रसित है, आयु सो मृत्यु-कर और सम्पदा है सो विपदाकर ग्रस्त है। निरुपद्रव है तो एक मात्र पुरुषोंकी तृष्णा ही है ॥४७॥ यह प्राणी चाहे पर्वतपर चढ़े, चाहे पातालमें पैठि जावे, चाहे पृथिवीमात्रमें भ्रमण करते रहै, परन्तु काल (मृत्यु) तो कहीं भी नहीं छोड़ता ॥४८॥ आते हुए कालरूपी मदोन्मत्त हस्तीको रोकनेके लिए स्वजन, माता, पिता, भार्या, बहन, भाई, पुत्र वगैरह कोई भी समर्थ नहीं हैं ॥४९॥ काल-रूपी राक्षसकर भक्षण करते हुए जीवकी रक्षा करनेको हस्ती, घोड़ा, रथ, पयादा, इनका अतिपुष्ट चार प्रकारकी सेना भी समर्थ नहीं है ॥५०॥

कुपित हुआ यमरूपी सर्प, दान, पूजा, मिताहार (ऊनोदर तप) मंत्र तंत्र और रसायनों करके भी निवारण करना अशक्य है ॥५१॥ जलती हुई मृत्युरूपी अग्नि बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्री, धनाढ्य, निर्धन, मूर्ख, पंडित, शूर, कायर, समर्थ, असमर्थ, दानी, कृपण, पापी, धर्मात्मा, सज्जन, दुर्जन, आदि किसी जीवको भी नहीं छोड़ती अर्थात् काल किसीको भी नहीं छोड़ता ॥५३–५४॥ जो मृत्यु बलिष्ट इन्द्रोंकर सहित देवोंको भी हनती है, उस मृत्युको मनुष्योंके मारनेमें तो कुछ भी देर नहीं है। क्योंकि— ॥५४॥ जो अग्नि दृढ़ पाषाणोंसे बन्धे हुए पर्वतोंको जला देता है तो वह तृण समूहको कैसे छोड़ेगी? ॥५५॥

जीवोंका चर्वण करनेमें प्रवृत्त हुवा काल जिससे निवारण किया जाय ऐसा कोई भी उपाय न तो है और न हुवा और न हो सकता है ॥५६॥ आत्मा रत्नत्रयरूप है लक्षण जिसका ऐसे सर्वज्ञ भाषित धर्मके सिवाय जरा और मरणको मर्दन करनेमें अन्य कोई भी समर्थ नहीं है ॥५७॥ जीवन, मरण, सुख दुःख, सम्पत्ति विपत्तिमें यह जीव सदाकाल अकेला ही रहता है, इसका कोई भी सहायक नहीं है ॥५८॥ इस जीवके बान्धवादि कुटुम्बी जन हैं वे इस जन्ममें ही भिन्न २ स्वभावके धारक होते हुए भिन्न २ है तो वे अपने कर्मोंके वशीभूत रहनेवाले अगले भवमें किस प्रकार भिन्न नहि होंगे? अवश्य होंगे ॥५९॥ इस कारण वास्तवमें विचार किया जाय तो इस आत्माका अपनेको छोड़कर दूसरा कोई भी आत्मीय (अपना) नहीं है। और "यह मेरा है यह पर है" इत्यादि जो कल्पना है सो मोहकर्म–जनित कल्पना मात्र ही है ॥६०॥

जिस आत्माकी देहके साथ ही एकता नहीं है। तो उसके

प्रत्यक्षमें बाह्यभूत मित्र पुत्र स्त्री धनादिकसे किस प्रकार एकता हो सकती है ? ॥६१॥ जगत्के समस्त जन अपना स्वार्थ देखकर ही मनुष्यकी सेवा करते हैं। जब स्वार्थ नहिं सधता है, तब अपना एक वचनमात्र भी व्यय नहिं करते ॥६२॥ यह भलेप्रकार निश्चित है कि विना स्वार्थके कोई भी स्नेह नहिं करता। और तो क्या, छोटासा बच्चा भी माताके स्तनोंको दूधरहित होनेपर झट छोड़ देता है ॥६३॥ संसारी जन हैं वे दुःखदाताको सुखदाता, विनश्वरको स्थिर और अनात्मीयको अपना स्वरूप मानकर पापका संग्रह करते हैं, सो बड़ा खेद है ॥६४। संसारी जन कैसे मूर्ख हैं कि पाप तो पुत्र मित्र और शरीरके निमित्त करते हैं, परन्तु नरकादिकके घोर दुःख अकेले आप ही सहन करते हैं। ६५॥

संसाररूपी समुद्रमें ढूढा जाय तो कहीं भी सुख नहीं दीखता। क्योंकि केलेके थंभको छीला जाय तो क्या उसमेंसे किसीने सार निकलते देखा है ? कदापि नहीं। उसी प्रकार यह संसार साररहित है ।६६।। 'कोई भी अपने साथ नहिं जा सकता' इसप्रकार जानते हुए भी उनके लिये पापारम्भ रचते हैं सो इससे अधिक मूर्खता क्या होगी ? । ६७॥ इंद्रियजनित विषयोंके भोगनेसे दुःख ही होता है और तपादिकमें क्लेश करनेसे सुख होता है। इस कारण उस सुखकी रक्षाके लिये इन्द्रियजनित सुखको छोड़कर विद्वज्जन हैं वे तपश्चरण ही करते हैं। ६८।। जो विषय, पोषण किये हुये निरन्तर महा दुःखदायक है तो उन विषयोंके सिवाय अन्य दूसरा वैरी कौन है ? जो दुस्त्यज (विना दुःख दिये न छोड़नेवाला) हो ॥६९॥ जो प्रार्थना करनेसे तो आते नहीं और विना भेजे ही अपने आप चले जांय, ऐसे धन कुटुम्ब गृहादिक अपने किस प्रकार हो सकते हैं ॥७०॥

जिस संसारमें विश्वास है, वहां तो भय है और जिस मोक्षमें विश्वास नहीं है, वहांपर सदा श्रेष्ठ सुख है ॥७१॥ जो जीव अपना आत्म कल्याण छोड़कर अपनेसे भिन्न इस देहके कार्यमें लगे हैं, वे परके दास हैं; उनसे अधिक कोई दूसरा निंद्य नहीं है ॥७२॥ जो अनेक भवोंके पवित्र सुख हर लेते हैं, वे पुत्रादिक कुटुम्बी जन चोरोंसे अधिक क्यों नहीं हैं? अवश्य हैं ॥७३॥ विद्वानोंको चाहिये कि सांसारिक समस्त सुखोंको अनात्मीय जानकर सदा जिनेन्द्र भगवानकर भाषित आत्मीय धर्मको धारण करें ॥७४॥ जो क्षमासे क्रोधको मार्दवसे (कोमलतासे) मानको, आर्जवसे (सरलतासे) मायाको और संतोषके द्वारा लोभको नष्ट कर देता है' उसीके धर्म होता है ॥७५॥

तथा शुद्ध ब्रह्मचर्य धारण करनेवालोंके, भगवानकी पूजा करनेवालोंके, उत्तम पात्रोंको दान देनेवालोंके, पर्वके दिन उपवास धारण करनेवालोंके ॥७६॥ जीवोंकी रक्षा करनेवालोंके, सत्य वचन बोलनेवालोंके, अदत्त ग्रहण न करनेवालोंके, राक्षसीकी तरह स्त्रीका त्याग करनेवालोंके—॥७७॥ संतोषामृतपानसे परिग्रह तजनेवाले धर वीरोंके वात्सल्य (धर्मसे प्रीति) के धारण करनेवालोंके और विनयी पुरुषोंके ही पवित्र धर्म होता है। ७८॥ जो कोई जिनेन्द्र भगवान्‌कर भाषित धर्मको चित्तसे भावना करता है सो महा दुःखदायक संसाररूपी दावानलको शीघ्र ही शमन कर देता है ॥७९॥ योगीराजके इस प्रकार धर्मोपदेशामृतसे समस्त सभा ऐसी तृप्त हो गई कि, जैसे मेहके जलसे तप्तायमान पृथिवी शीतल हो जाती है ॥८०॥

अवधिज्ञान है नेत्र जिनके, वात्सल्य कार्यमें कुशल, धर्मोपदेश

देनेमें सदा तत्पर ऐसे वे योगीराज जितशत्रुके पुत्र मनोवेगको जिनमती जानकर निम्नलिखित प्रकारसे कुशल समाचार पूछते हुये। क्योंकि धर्मात्मा पुरुषोंका भी भव्य पुरुषोंके लिये पक्षपात होता है ॥८१॥ "हे भद्र! धर्म-कार्योंमें तत्पर भव्य तुम्हारा पिता स्वजन परवार सहित कुशलरूप है न?" इस प्रश्नको सुनकर विद्याधरका पुत्र मनोवेग प्रसन्नचित्त होकर इस प्रकार कहता हुआ ॥८२॥ हे भगवन्! जिनकी रक्षा सदाकाल आपके चरणारविन्द करते हैं उस विद्याधर पति जितशत्रुके किस प्रकार विघ्न हो सकते हैं? क्योंकि जिसकी रक्षा साक्षात् गरुडराज करते हैं, उनको किसी कालमें भी सर्पकी पीड़ा नहीं हो सकती ॥८३॥ इस प्रकार कहके मस्तक पर हाथ रख विनयपूर्वक खड़े होकर केवलज्ञानरूपी किरणोंसे प्रकाशित किये हैं समस्त पदार्थ जिन्होंने ऐसे केवलरूपी भगवान सूर्यको विनयके साथ नमस्कार करके निम्न लिखित प्रश्न करता हुआ क्योंकि ऐसे सूर्यके अतिरिक्त समस्त प्रकारके संशयरूपी अन्धकारका नाशक अन्य कोई नहीं है ॥८४॥ हे देव! प्राणोंसे भी प्रिय मेरा मित्र पवनवेग विद्याधर मिथ्यात्व रूपी दुर्जर विषसे आकुलित व विपरीत श्रद्धान होकर प्रवर्त्तता है सो कभी इस पवित्र जिनेन्द्र धर्ममें भी प्रवर्त्तेगा या नहीं? सो कृपाकर मुझे सूचित कीजिये ॥८५॥

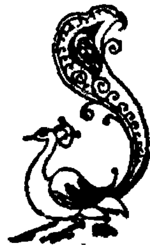
हे देव! उस पवनवेगको कुमार्गमें प्रवर्त्तता हुवा देखता हूं तो मेरे हृदयमें वज्राग्निकी शिखाके समान अनिवार्य तापकी उपजानेवाली चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि समानशील गुणवालोंके साथ की हुई मित्रता ही सुखदायक होती है ॥ ८६ ॥ जो अनेक प्रकारके दुःखोंकी खानिरूप मिथ्यात्व मार्गमें लवलीन–

चित्त हो प्रवर्ते हुये अपने मित्रका निवारण नहीं करते; वे निश्चय करके उसको धकेलकर भयंकर महागम्भीर कुएमें डालते हैं ॥८७॥ जीवोंके मिथ्यात्वके समान तो दूसरा महाअन्धकार नहीं है और सम्यक्त्वके समान और कोई विवेककारी नहीं है। जिस प्रकार संसारकी बराबर अन्य कोई निषेध करनेयोग्य वस्तु नहीं है इसी-प्रकार मोक्षकी बराबर अन्य कोई प्रार्थना करनेयोग्य नहीं है ॥८८॥ हे भगवन् ! उसके पवित्र भव्यपणा है कि नहीं ? क्योंकि भव्यताके बिना तत्त्वसमूहकी रचना व्यर्थ होती है। जैसे कोरडू मूगको सिजानेके लिये समस्त प्रकारके किये हुये उपाय व्यर्थ होते है तैसे अभव्यको वस्तुका स्वरूप समझाना भी व्यर्थ है ॥८९॥ इस प्रकार प्रश्न करके मनोवेगके चुप रहनेके पश्चात् केवली भगवान्की उज्ज्वल मनोहर वाणी प्रगट हुई—हे भद्र ! पुष्पनगरमें (पटनेमें) ले जाकर तत्त्वोपदेश कर समझावेगा तो तेरा मित्र शीघ्र ही मिथ्यात्वरूपी पापको छोड़ देगा ॥९०॥

हे सुबुद्धे ! जिस प्रकार निरन्तर असह्य दुःखके देनेवाले शरी-रमें गडे हुये कांटे वगैरहको सुई चिमटी आदिसे निकालते हैं, उसी प्रकार पवनवेगके चित्तमें ठसे हुये मिथ्यात्वरूपी कांटेको अनेक दृष्टांतोंके समूहसे अवगाहन कर निकालना ॥९१॥ वहां पटनेमें पूर्वापरादि अनेक दूषणोंसे दूषित अन्य मतोंको प्रत्यक्ष देखता हुवा अनेक दोषवाले मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको छोड़कर शीघ्र ही ज्ञान-रूपी प्रकाशमें आ जायगा ॥ ९२ ॥ जब तक लोकमें जिनेन्द्र भगवानके वचनोंका प्रकाश नहीं है, तभी तक मिथ्यादृष्टियोंके वचन प्रकाशरूप हैं। यथा जगत् मात्रको प्रकाश करनेमें कुशल ऐसे सूर्यके प्रकाश होते हुये ग्रहगणोंका (तारोंके समूहका) प्रकाश हो

सकता है ? कदापि नहीं ॥ ९३ ॥ विपरीत दृष्टिवाले अभव्यके सिवाय ऐसा कौनसा जीव है जो जिनेन्द्र भगवानके कहे हुये निर्दोष वाक्योंसे प्रतिबोध नहीं होता ? क्योंकि उल्लूके (घुघूके) सिवाय प्राय: सभी जने महा अन्धकारको नाश करनेवाले सूरजकी किरणोंके प्रभावसे पदार्थोंको देखते हैं ॥९४॥ इस प्रकार महा आनन्दकारक वचनोंको श्रवण कर पापोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के चरणकमलोंको भलेप्रकार नमस्कार करके अपनी विद्याके प्रभावसे रचे हुये सुन्दर विमानमें बैठकर वह मनोवेग विद्याधर शीघ्रगतिसे अपने घरको जाता हुआ ॥ ९५ ॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें दूसरा परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ २ ॥



तृतीय परिच्छेद

अथानंतर जब तक देवतुल्य स्फुरायमान है प्रभा जिसकी ऐसा वह मनोवेग दिव्य विमानपर आरूढ़ हो अपने नगरप्रति जाता है—॥१॥ इसी बीचमें जिस प्रकार विमानपर बैठे देव अन्य देवसे मिलै, उसप्रकार सामनेसे आते हुए पवनवेगने मनोवेगको देखा ॥२॥ देखते ही पवनवेगने मनोवेगसे कहा कि जैसे कामातुर न्यायरहित हो रहता है, तैसे मुझे छोड़कर इतने समय तक तू कहां रहा ? ॥३॥ हे मित्र, सूर्यके बिना दिनकी तरह मैं तेरे बिना एक क्षण भी रहनेको असमर्थ हूं सो इतने समय तक तेरे बिना कैसे रह सकता हूं ! ॥४॥ हे मित्र ! मैंने तुझे सर्वत्र ढूंढा जैसे शुद्ध श्रद्धानी मोक्षके दाता धर्मको ढूंढता है ॥५॥

जब मैंने बाग, नगर, बाजार, राजगृहांगण और समस्त जिन मंदिरमें तुझे नहीं देखा ॥६॥ तब घबराकर तेरे पिता पितामहको आकर पूछा, सो ठीक ही है। इष्ट संयोगकी वांछा करनेवाला क्या नहीं करता। अर्थात् सब कुछ करता है ॥७॥ जब इस प्रकार सर्वत्र पूछने पर भी तेरा पता न लगा, तब दैवयोगसे इधर आते हुए तुझे देखा ॥८॥ हे मित्र ! जैसे संयमी सन्तोषको छोड़कर स्वेच्छाचारी हो इधर उधर भटकता है, तैसे तुझे आनन्द उपजानेमें समर्थ, तथा तेरे वियोग सहनेको असमर्थ ऐसे मुझ मित्रको छोड़कर तू किस-प्रकार फिरता है ॥९॥ यदि हम दोनोंका कदाचित् वियोग भी हो तो तिर्यक् और ऊर्ध्व गमन करनेवाले वायु और अग्निके समान ही होना चाहिये कि जिनकी लोकमें मित्रता ही प्रसिद्ध है। परन्तु—॥१०॥

जिनके देह और आत्माके समान जन्मसे मरणपर्यंत वियोग

नहीं होय, उन्हींकी मित्रता सर्वोत्तम है ॥११॥ एक तो उष्ण और एक शीतल ऐसे सूर्य और चन्द्रमाकी प्रीति कैसी? जो महीनेमें एकबार मिलाप हो ॥१२॥ बुद्धिमानोंको ऐसा मित्र व मनोहर कलत्र (स्त्री) करना चाहिये जो चित्रामकी तरह किसी कालमें भी पराधीन न होय ॥१३॥ जगतमें उन्हींकी मित्रता प्रशंसनीय है कि जो दिन और सूर्यकी समान निरन्तर अव्यभिचारपनेसे (भेदभावरहित एकत्र) रहते हैं ॥१४॥ हे मित्र! जो मित्रके क्षीण होनेपर क्षीण होता है और वृद्धि होनेपर वृद्धिरूप होता है उसीको सच्चा मित्र कहते हैं और वे ही प्रशंसनीय हैं। जैसे समुद्रके साथ चन्द्रमाकी मित्रता है. अर्थात् चन्द्रमाकी कला बढ़नेसे समुद्र बढ़ता है और चन्द्रमाकी कला जैसे जैसे क्षीण होती है तैसे तैसे समुद्रका पानी भी घटता जाता है ॥१२॥

इस प्रकार सुनकर मनोवेगने कहा—हे महामते! इस प्रकार कोपको प्राप्त मत हो, क्योंकि आज मैं इस मध्यलोकके समस्त जिन-प्रतिमाओंके दर्शनार्थ गया था ॥१६॥ सो सुरनरकर वंदनीय अढ़ाई द्वीपके मध्य जो कृत्रिम अकृत्रिम अनेक चैत्यालय हैं,—॥१७॥ उन सबकी मैंने भक्तिपूर्वक पूजा, वन्दना, स्तुति करके समस्त दुःखोंको नष्ट करनेवाला निर्मल पुण्योपार्जन किया ॥१८॥ हे मित्र! तेरे विना मैं क्षणमात्र भी नहीं रह सकता। जिस प्रकार कि साधुके हृदयको सन्तुष्ट करनेवाले प्रशमभावके विना संयम नहीं रहता। परन्तु—॥१९॥ भरतक्षेत्रमें भ्रमण करते हुये मैंने स्त्रियोंके समस्त शृङ्गारोंमें तिलककी समान अत्यन्त शोभायमान बहुत वर्णोंकी वस्ती-वाला पाटलीपुत्र (पटना) नामका एक नगर देखा—॥२०॥

जिसमें निरन्तर जगहर भ्रमरोंके समूहके समान अथवा स्त्रीके

केशोंके श्यामवर्ण यज्ञका धुआं आकाशमार्गमें फैल रहा है ॥२१॥ जहांपर बधिर किया है आकाश जिसने ऐसी चार वेदकी ध्वनि सुनकरके मयूरगण मेघकी गर्जना समान आशंका करके नृत्य कर रहे हैं ॥२२॥ तथा वशिष्ठ, व्यास, वाल्मीकि, मनु, गर्गादिकर रची हुई वेदके अर्थको प्रतिपादन करनेवाली स्मृतियें सुनी जाती हैं ॥२३॥ जहांपर चारों तरफ सरस्वतीके पुत्रकी समान बगलमें पुस्तक लिये अति चतुर विद्यार्थी विचरते हुये दृष्टि पड़ते हैं ॥२४॥ उस नगरमें परस्पर मर्मभेदी वचनोंके द्वारा वाद करते हुये वादी ऐसे शोभते हैं कि मानों मर्मभेदी बाणोंके द्वारा क्षोभरहित योद्धा ही युद्ध कर रहे हैं ॥२५॥

जैसे भ्रमरोंके समूहसे सरोवर (तलाव) शोभता है तैसे उस नगरके पंडित जन मिष्टभाषी शिष्योंके समूहसे वेष्टित और मनोहर भासते है ॥२६॥ और गंगाके किनारेपर चारों तरफ ध्यानाध्ययनमें निमग्न मस्तक मुंडे हुये भद्र संन्यासी ही संन्यासी नजर पड़ते हैं ॥२७॥ जहांपर शास्त्रार्थको निश्चय करती हुई वादरूपी नदीका शब्द सुनकर वादकी खाजसे आकुलित आये हुये वादीगण शीघ्र ही भाग जाते हैं ॥२८॥ अग्निहोत्रादि कर्म करते हुये अनेक विद्वान् ब्राह्मण रहते हैं सो मानो मूर्तिमन्त वेद ही हैं ॥२९॥ तथा सर्वत्र समस्त शास्त्रोंके विचार करनेवाले मीमांसक द्विज निरन्तर मीमांसा (वेदांत) शास्त्रका विचार कर रहे हैं सो मानो सरस्वतीके विभ्रम कहिये विलास ही हैं ॥३०॥

तथा दुःखरूपी काष्ठको अग्निकी समान जो धर्म उसको प्रकाश करनेके लिये हजारों ब्राह्मण अष्टादशपुराणोंके व्याख्यान कर रहे हैं ॥३१॥ वह नगर पैंड पैंडपर तर्क (न्याय), व्याकरण, काव्य,

नीतिशास्त्रको व्याख्यान करनेवाले विद्वानोंके द्वारा सरस्वतीके मंदिरकी समान भासता है ॥३२॥ सो हे भद्र ! ये सब चारों ओर देखते देखते मुझे बहुत समय लग गया । क्योंकि विक्षिप्तचित्त होनेके कारण समय जाता हुवा मालूम नहीं पड़ता ॥३३॥ हे मित्र ! उस आश्चर्यकारक स्थानमें जो जो आश्चर्य मैंने देखे, वे वचन द्वारा कदापि नहीं कह सकता— ॥३४॥ क्योंकि जो विषय शरीरधारियोंकी इन्द्रियोंसे अनुभव किये जाते है, उनको सरस्वती भी वचन द्वारा नहीं कह सकती ॥३५॥

हे मित्र ! धर्मकी समान तुझे छोड़कर मै इतने समयतक वहांपर रहा, सो मुझ अविनयीका यह अपराध क्षमा करना चाहिये ॥३६॥ ये वचन सुनकर पवनवेग शुद्ध चित्तसे हास्यपूर्वक कहने लगा कि ऐसा कौन धूर्त है जो धूर्तोंके मिष्ट वचनोंको सुनकर नहि ठगाता ? ॥३७॥ हे मित्र ! जो कौतुक तूने देखा सो मुझे भी दिखा ! क्योंकि जो सज्जन पुरुष होते हैं वे विभाग किये बिना कुछ भी नहीं भोगते ॥३८॥ मित्रवर्य ! मुझे उस कौतुकके देखनेकी बड़ी उत्कण्ठा है, सो वहां फिर चलो । जो मित्र है वह मित्रकी प्रार्थनाको कदापि निष्फल नहि करते ॥३९॥ इसप्रकार सुनकर मनोवेगने कहा— हे मित्र ! अवश्य चलेंगे । परन्तु जल्दी मत करो । क्योंकि उदुम्बर फल शीघ्र ही नहीं पकता है ॥४०॥

सो कल प्रात:काल ही भोजन करके निराकुलतासे चलेंगे । क्योंकि भूख लगने पर जिनका चित्त ग्लानिरूप हो जाय उनके समस्त कौतुक (आनन्द) भाग जाते हैं ॥४१॥ तत्पश्चात् दोनों मित्र एकसाथ हो अपने घरको चले गये । कैसे हैं कि प्रक शमान है शोभा जिनकी ? नो उत्साह और नय दोनों एक ही रूप हो

रहे हैं ॥४२॥ अपने घर पहुंचकर वे दोनों मित्र मिलकर साथर भोजन करके या बैठे और सोये सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहसे वशीभूत है चित्त जिनका ऐसे पुरुष परस्पर एक क्षण भी वियोग नहीं सह सकते ॥४३॥

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अपनी इच्छानुसार गमन करनेवाले विमान पर चढके वे दोनों मित्र दिव्य मनोहर वस्त्राभूषण पहर कर श्रेष्ठ आकारके धारक देवोंके समान पटना नगरकी तरफ चल दिये ॥४४॥ सो वहांसे चल कर शीघ्र ही अनेक प्रकार आश्चर्योंसे भरे हुये मनोवांछित उस पुष्पपत्तन कहिये पटना नगरको प्राप्त हुये ॥४५॥

वहां पहुंच कर मनोवांछित फल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुये पटना नगरके एक उद्यानमें (बागमें) नंदनवनमें देवोंके समान उतरते हुये ॥४६॥ उस बागके समस्त वृक्ष पुष्पोंके गुच्छेरूपी स्तनोंकर नम्रीभूत फलोंसे वेष्टित हुये कामिनीसहित कामी पुरुषका तरह शोभते थे ॥४७॥ वहां उतर कर मनोवेगने पवनवेगसे कहा—यदि तुमको वास्तवमें कौतुक देखनेकी उत्कंठा है तो जिस प्रकार मैं कहूं, उसी तरह करने पर तुमारी इच्छा पूर्ण होगी ॥४८॥ यह मनोवेगका वचन सुनकर पवनवेगने कहा—हे महामते ! तू किसी प्रकारकी शंका मत कर, जिस प्रकार तू कहैगा उसी प्रकार करनेको मैं तैयार हूं ॥४९॥ हे मित्र ! तेरे कहे हुये वचनको अवश्य मानूंगा ऐसा मैने निश्चय कर लिया है। क्योंकि जो परस्पर वञ्चकवृत्ति हों (कहा नहीं माने) उनमें मित्रता कैसे हो सकती है ? ॥५०॥

इस प्रकार अपने मित्रके वचन सुनकर मनोवेगने अपने मनमें विचारा था कि वास्तवमें यह सम्यग्दृष्टि हो जायगा। क्योंकि

केवली भगवान्का कहा हुवा अन्यथा नहीं हो सकता ॥५१॥ तब प्रसन्नचित्त होकर पवनवेगसे कहा—यदि ऐसा है तो हे मित्र चलो! नगरमें प्रवेश करें ॥५२॥ तत्पश्चात् वे दोनों मित्र विचित्र प्रकारके महामूल्य आभूषण पहरे, तृण और काष्ठका भार मस्तकपर लेकर उस पटना नगरमें कौतूहलके साथ फिरने लगे ॥५३॥ इस प्रकार इन दोनोंको देखकर नगरके लोग महा आश्चर्यको प्राप्त हुये। क्योंकि पृथिवीमें ऐसा कौन है जो अपूर्व वस्तुको देखनेसे मोहित नहीं होता? ॥५४॥ जिसप्रकार गुड़के पुञ्ज गुंजार करती हुईं मक्खियोंसे वेष्टित होते हैं, उसी प्रकार वे दोनो देखनेवाले लोगोंकर चारों ओरसे वेष्टित हो गये ॥५५॥

सो कोई तो कहने लगे कि अहो बड़ा आश्चर्य है देखो ये महा आभूषण पहरे सुन्दराकार ये दोनों तृण और काष्ठका भार क्यों उठाये हुये हैं? ॥५६॥ कोई २ कहते हुये कि ये दोनों अपने बहुमूल्य आभूषणोंको बेचकर सुखसे अपने घर क्यों नहीं रहते? तृण काष्ठ क्यों बेचते हैं? ॥५७॥ अन्य कइएक मनुष्य इसप्रकार कहते हुये—अहो! ये तृण काष्ठके बेचनेवाले नहीं हैं; देव अथवा विद्याधर हैं, किसी कारणसे इस प्रकार प्रगट हुये भ्रमण करते फिरते हैं ॥५८॥ कईएक भले आदमी कहने लगे कि, अपने पराई चिन्तासे क्या प्रयोजन है? क्योंकि जो लोग पराई चिन्तामें लगते हैं उनको सिवाय पाप-बन्धके कुछ भी फल नहीं होता ॥५९॥ स्फुरायमान है कांति जिनकी ऐसे इन दोनों मित्रोंको देखकर कितनीएक नगरकी स्त्रियें कामदेवके वशीभूत हो अपने२ कार्यको छोड़कर क्षोभको प्राप्त हो गईं ॥६०॥

कितनीएक स्त्रियें तो इस प्रकार कहती हुईं कि, जगतमें

कामदेव एक है ऐसी प्रसिद्धि है; परन्तु उस प्रसिद्धिको प्रत्यक्षतया असत्य करनेके लिये ही मानों कामदेवने दो देह धारण करी है ॥६१॥ कोई स्त्री कहती हुई कि, ऐसी असाधारण शोभाके धारक महा रूपवान पुरुष तृणकाष्ठके बेचनेवाले मैंने तो कभी नहीं देखे ॥६२॥ अन्य कोई स्त्री कामसे पीड़ित हो उनसे वचनालाप करनेकी इच्छा कर अपनी सखीसे कहती हुई–हे सखी ! इन तृण काष्ठके बेचनेवालोंको शीघ्र ही यहां पर ले आव ॥६३॥ ये जितने मूल्यमें तृणकाष्ठ देंगे उतनेमें हो मैं ले लूंगी। क्योंकि इष्टजनोंसे वस्तुकी प्राप्तिमें किसी प्रकारकी गणना नहीं की जाती ॥६४॥ इस प्रकार नगर निवासियोंके वचन सुनते२ सुन्दर शरीरके धारक ये दोनों मित्र सुवर्णका है सिंहासन जिसमें ऐसी ब्रह्मशालामें (वादशालामें) पहुंच गये और। ६५॥

तृणकाष्ठके भारको डालकर बड़े जोरसे वादकी भेरी बजकर सिंहकी समान निर्भय हो सुवर्णके सिंहासनपर जा बैठे ॥६६॥ तब भेरीके शब्दको सुनकर पटना नगरके समस्त ब्राह्मण क्षोभको प्राप्त हुये और 'कहींसे कोई वादी आया है' इसप्रकार कहते हुये, वादकी लालसा रखनेवाले निरन्तर विद्याके गर्वरूपी अग्निमें जलते हुये पर-वादीको जीतनेकी इच्छा करके वे समस्त ब्राह्मण शीघ्र ही अपने २ घरसे बाहर निकल पड़े। ६७-६८॥ कोई तो कहते हुये कि तर्कशास्त्रके वादमें तो आजतक कोई भी विद्वान हमको परास्त करके नहिं गया ॥६९॥ कोई २ विद्वान अन्यान्य विद्वानोंको कहते हुये कि, तुमने तो अनेक दुर्जे हैं सो तुम तो मौनसे बठो, अब म इनसे वाद करेंगे ॥ ७० ॥

कई एक ब्राह्मण विद्याके मदमें उन्मत्त हो कहने लगे कि

सभादियोंमें रहनेसे हमारा तो पढ़नेका परिश्रम व काल वृथा ही चला गया ॥७१॥ कोई इस प्रकार कहते हुये कि, इस वादरूपी वृक्षको परवादीको जीतने रूपी दंडसे तोड़ कर यशरूपी फल ग्रहण करेंगे। ७२॥ इत्यादि वचनोंको कहते हुये वादकी खुजली सहित वे ब्राह्मण विद्वान उस ब्रह्मशालामें पहुँचे और ॥७३॥ हार, कँकण, कड़े, श्रीवत्स और मुकुटादिसे अलंकृत मनोवेगको देखकर सबके सब आश्चर्यान्वित हो गये ॥७४॥ "निश्चय करके ये विष्णु भगवान ही ब्राह्मणोंको देखनेकी इच्छासे आये हैं। क्योंकि शरीरकी ऐसी मनोहर शोभा अन्य किसीमें होना असम्भव है।" इस प्रकार कह कर भक्तिके भारसे नम्रीभूत हो नमस्कार करने लगे। सो ठीक ही है—विभ्रमस्वरूप हो गई है बुद्धि जिनकी उनसे प्रशंसनीय कार्य कदापि नहिं होता ॥७५-७६॥

कोई २ इसप्रकार कहते हुए कि निश्चय करके यह सुन्दर कहिये इन्द्र ही है। क्योंकि जगतको महानंददायिनी कांति अन्य किसीके नहिं हो सकती ॥७७। कोई महाशय कहने लगे कि ये अपने तीसरे नेत्रको अदृश्य करके पृथ्वी देखनेके लिये महादेवजी आये हैं क्योंकि ऐसा रूप सिवाय महादेवजीके अन्य किसीका नहीं हो सकता ॥ ७८ ॥ अन्य कोई महाशय कहते हुये कि यह कोई महाउद्धत विद्याधर है सो पृथिवीको देखता हुआ अनेक प्रकारकी लीला (क्रीडा) करता है ॥७९॥ इस प्रकार विचार करते हुये भी वे सब प्रभाकर पूरित कि दशों दिशा जिसने ऐसे विस्मरूप मणिकी समान उस मनोवेगका कुछ भी निर्णय नहीं कर सके कि यह कौन है ॥८०॥

तब किसी एक प्रवीण ब्राह्मणने इस प्रकार कहा—"निश्चय

करानेके लिये इसीको क्यों न पूछलो ? क्योंकि बुद्धिमान पुरुष हाथमें कंकण रहते आरसी (दर्पण)में आदर नहीं करते ॥८१॥ यदि यह वाद करनेको आया है तो वादियोंको जीतनेमें आसक्त है मन जिनका ऐसे हम समस्त शास्त्र और परमार्थके ज्ञाता इसके साथ वाद करेंगे ॥८२॥ पंडितोंका भरे हुये इस नगरमें षट्दर्शनोंमेंसे ऐसा कौनसा दर्शन है जिसको वास्तवमें हम सब जने न जानते हों। इनके सिवाय यह अल्पधी और क्या कहैगा ? ॥८३॥ इस प्रकार सबकी वाणी सुनकर एक ब्राह्मण आगे बढ़के मनोवेगको कहने लगा—आप कौन हैं और विरुद्ध है हेतु जिनका ऐसे आप किस प्रयोजनसे आये हो सो कहो ॥८४॥ यह सुनकर मनोवेग कहता हुआ—हे भद्र ! मैं एक निर्धनका पुत्र हूं। इस श्रेष्ठ नगरमें काष्ठका भारा बेचनेको आया हूं ॥८५॥

तब वह द्विज उस मनोवेगको कहने लगा—हे भद्र ! तू वाद जीते विना ही इस पूज्य सिंहासन पर शीघ्र ही वादकी सूचना करनेवाली दुन्दुभि भेरीका बजाकर क्यों बैठ गया ? ॥८६॥ यदि वादके जीतनेमें तेरी शक्ति है तो तू वादियोंके घमंडको दलनेवाले निर्दोष बुद्धिके धारक इन द्विजोत्तम पंडितोंके साथ वाद कर ॥८७॥ हे मूढ ! इस नगरसे आज तक कोई भी विद्वान वादको जीतकर यशका भागी होकर नहीं गया। भला ऐसा कौन पुरुष है जो नागभवनसे शेषनागके मस्तककी मणिसे भूषित होकर जा सके ? ॥८८॥ तू जो दिव्य मणिरत्नोंसे भूषित होकर तृण काष्ठ बेचता है, सो या तो तुझे वायुरोग है या तुझे पिशाच लगा है, अथवा जवानीके बढ़े हुये कामरूपी मदसे पागल हो गया दीखै है। क्योंकि—॥८९॥ इस जगत्में दरिद्र पिताके व भोले जीवोंके मनको

मोहित करनेवाले अनेक ठग हैं परन्तु तुम सरीखा पंडितोंके मनको भी मोहित करनेवाला महा ठग इस त्रिलोकीमें कोई भी नहीं दीखता ॥९०॥

इस प्रकारके वचन सुनकर वह मनोवेग विद्याधर कहने लगा— हे विप्र ! वृथा ही क्यों कोप करते हो ? बिना कारण तो सर्प भी रोष नहीं करता; फिर विद्वज्जन तो करेंगे ही कैसे ? ॥९१॥ भो द्विजपुत्र ! इस सोनेके सिंहासनको बहुत मनोहर देखकर कौतुकसे बैठ गया और इसका शब्द आकाशमें कहां तक होता है" ऐसा विचार कर मैंने सहज ही इस दुन्दुभिको बजा दिया है ॥९२॥ हे भट्ट ! हम तृण काष्ठ बेचनेवालोंके पुत्र हैं। वास्तवमें शास्त्रके मार्गको कुछ भी नहीं जानते; और 'वाद' ऐसा नाम तो मुझ निर्बुद्धिने अभी तेरे मुखसे ही जाना है ॥९३॥ भो ब्राह्मण! तुम्हारे भारतादि ग्रन्थोंमें क्या मुझ सरीखे बहुतसे पुरुष नहीं हैं ? जगतमें केवल मात्र परके दूषण ही देखते हैं। अपने दूषण कोई नहीं देखता ॥९४॥ यदि इस सुवर्ण सिंहासनपर मेरे बैठनेसे तुम्हारे चित्तमें हानि है तो लो उतर जाता हूं। इस प्रकार कहकर वह अप्रमाण ज्ञानका धारक मनोवेग सुधी त्वरित ही सिंहासनसे उतरकर नीचे बैठ गया ॥९५॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें तीसरा परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥



चतुर्थ परिच्छेद

अथान्तर वह द्विजाग्रणी मनोवेगको सुवर्णासनसे उतरा देख कहने लगा—मैंने तृण काष्ठके बेचनेवाले, रत्नोंसे विभूषित कभी नहीं देखे क्योंकि—॥१॥ पराई नोकरी करनेवाले मनुष्य रत्नमयी दिव्याभूषणकर शोभित घास लकड़ियें बेचते हुये कभी नहीं देखे जाते ॥२॥ तब मनोवेगने कहा—भारत रामायणादिक पुराणोंमें ऐसे मनुष्य हजारों सुने जाते हैं। परन्तु तुम सरीखे इस शास्त्रोय विधानको जानते हो परन्तु प्रतीति नहीं करते ॥३॥ तब उस ब्राह्मणने कहा—यदि तूने भारत अथवा रामायणमें ऐसे पुरुष देखे हों तो कह, हम विश्वास करेंगे। इस प्रकार ब्राह्मणके कहने पर मनोवेग बोला—॥४॥ भो ब्राह्मण ! मैं कहूं तो सही परन्तु कहते हुये मुझे बड़ा भय लगता है, कारण तुम लोगोंमें ऐसा कोई भी नहीं दीखता जो विचारवान हो ॥ ५ ॥

क्योंकि विचार रहित मूर्ख सत्य कहे हुयेको भी असत्य बुद्धिसे 'सोलह मुक्की न्यायकी' रचना किया करते हैं ॥६॥ तब ब्राह्मणोंने कहा—हे महाबुद्धे ! 'सोलह मुक्की न्याय' कैसा होता है ? सो कह। इस प्रकार सुनकर मनोवेगने कहा—बहुत अच्छा, मैं तुमको कहता हूँ सो सुनो ॥७॥ मलयदेशमें सुखरूप संगाल नामका एक ग्राम है। उसमें किसी अन्नदाता गृहस्थके मधुकर नामका एक पुत्र था ॥८॥ सो एक समय वह मधुकर नाराज होके पिताके घरसे निकल कर पृथ्वीमें भ्रमण करने लगा सो ठीक ही है। 'रोषसे क्या नहीं किया जाता' ॥९॥ जब वह आभीर देशमें गया तो वहां पर उसने विभाग की हुई चनोंकी बड़ी २ अनेक राशियें देखीं ॥१०॥

उसको देखकर वह मूढ़ विस्मित चित्तसे "ओहो मैंने बड़ा आश्चर्य देखा, मैंने बड़ा आश्चर्य देखा" इस प्रकार कहने लगा। तब—॥११॥ वहांके ग्रामपतिने पूछा—तूने क्या आश्चर्य देखा? तब उस मूढ़ने निम्न लिखित प्रकार कहा सो ठीक ही है, 'मूर्ख लोग आती हुई आपदाको नहीं जानते' ॥१२॥ जैसी इस देशमें चणोंकी राशियें (ढेर) हैं, इसी प्रकार हमारे देशमें मिरचोंकी राशियें हैं" ॥१३॥ यह सुनकर कुपित हो ग्रामपतिने कहा—क्या तू वातरोगसे ग्रसित है, जो ऐसा असत्य भाषण करता है? ॥१४॥ हे दुष्टबुद्धे! चणोंकी राशियोंके बराबर मिरचोंकी राशियें हमने किसी भी देशमें कभी नहीं देखीं ॥१५॥

"निश्चय करके इस चणावाले देशमें मिरचे अत्यन्त दुष्प्राप्य हैं। और हमारे यहां मिरचोंकी कुछ भी गणना नहीं है।" ऐसा जानकर यह दुष्ट हम लोगोंकी हँसी करता है। इस प्रकार मूर्खपणेके भ्रमसे उसने कहा—इसको शीघ्र ही दण्ड दिया जावे ॥१६-१७॥ उस ग्रामपतिके वचन सुनकर उसके कुटुम्बी जन (नोकर चाकर) उस मधुकरको बांधते हुये सो उचित ही है। अश्रद्धेय वचनोंका बोलनेवाला क्यों नहीं बन्धेगा? ॥१८॥ तब किसी दयावान सेवकने कहा—भद्र, इसको इस अपराध अनुसार ही दंड देना चाहिए ॥१९ तब उसने आज्ञा करी कि इसके चपटे माथेपर मुट्ठियोंके आठ भड़ाके देना चाहिये जिससे कि यह फिर किसीकी हँसी न करे ॥२०॥

उस पटेलके इस प्रकार वचन सुन उसके निर्दयी सेवकोंने मधुकरको बन्धनसे छोड़कर उसके चपटे माथेपर मुट्ठियोंके आठ भड़ाके मार दिये ॥२१॥ जो इन्होंने मुझे आठ धोलें लगाकर ही छोड़ दिया सो मुझे बड़ा लाभ हुआ, क्योंकि दुष्टोंमें रहनेवालोंके

जीवनमें भी सन्देह रहता है ॥२२॥ ऐसा विचार कर वह मधुकर भयभीत हो तत्काल हुं अपने देशको आ गया सो योग्य ही है। मूर्ख लोग पीड़ा पाये बिना किसी कामसे निवृत्त नहीं होते ॥२३॥ तत्पश्चात् वह मधुकरने अपने बंगाल ग्रामको प्राप्त होनेका इच्छक विभागरूप (मित्र२) चणोंकी राशिके बराबर मिर्चोंके समूह देखे-॥२४॥ सो वहांपर भी उसने वैसे ही कहा-"जैसे यहांपर मिर्चोंके ढेर हैं, इसी प्रकार आभीर देशमें मैंने चणोंके ढेर देखे" इत्यादि। तब वहांपर भी उसने वही आठ मुट्ठियोंकी मारका दण्ड पाया सो ठीक ही है। मूर्ख जन खण्डित होकर भी पंडित नहीं होते ॥ २५ ॥

इस प्रकार सत्य भाषण करते भी उस मधुकरने षोडश मुट्ठीकी मार खाई, तभीसे यह "षोडश मुट्ठी न्याय" प्रसिद्ध हुआ है ॥२६॥ इस कारण बिना साक्षीसे सत्य भी नहीं बोलना चाहिये। जो बोलेगे वे जनसमाजके द्वारा असत्य भाषीकी तरह दण्ड भोगेगा ॥२७॥ और साक्षी सहित असत्य भाषण हो वे सभीजन सत्य मानते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो ठगी मनुष्य जगतको किस प्रकार ठगते ? ॥२८॥ इस कारण चाहे सत्य हो चाहे असत्य हो परन्तु बुद्धिमानोंको चाहिये कि प्रतीति योग्य वचन कहें, अन्यथा जो महती पीड़ा भोगनी पड़ती है उसको कोई निवार नहीं सकता ॥२९॥ पुरुष सत्य भी कहे तो मूर्ख लोग नहीं मानते, इस कारण अपने हित चाहनेवालोंको चाहिये कि मूर्खोंसे कदापि न बोले क्योंकि-॥३०॥

लोक तो अनुभवमें आई हुई, सुनी हुई, देखी हुई, प्रसिद्ध वार्ताको मानते हैं। इस कारण चतुर पुरुषोंको मूर्खोंमें कुछ भी नहीं बोलना चाहिये ॥३१॥ सो हे विभो ! यहांपर निर्विचारोंके मध्य

बोलते मुझे भी वही दोष प्राप्त होता है। इस कारण प्रगटतया मैं कुछ भी नहीं बोल सकता, क्योंकि-॥३२॥ जो कोई पूर्वापरका विचार करे उसके आगे तो बोले; नहीं तो अन्यके आगे बुद्धिमानको बोलना योग्य नहीं ॥३३॥ इस प्रकार कहकर चुप रहने बाद एक द्विजाग्रणीने कहा-हे भद्र ! ऐसा मत कहो; हम लोगोंमें ऐसा कोई भी अविचारी नहीं है ॥३४॥ ऐसा हरगिज मत समझ कि अविचारी पुरुषोंकासा दोष इन विचारवान विद्वानोंमें होय, क्योंकि मनुष्योंमें पशुओंका धर्म कभी नहीं होता ॥३५॥

तू आभीर देशवालोंकी समान हमको मूर्ख न समझ। क्योंकि कव्वोंकी समान हँस कदापि नहीं होते ॥३६॥ हे भद्र ! तू किसी प्रकारका भय न कर। यहां सब ब्राह्मण चतुर हैं। योग्य अयोग्यका विचार करनेवाले विद्वान हैं, तेरी इच्छा हो सो कह ॥३७॥ जो वाक्य युक्तिसे ठीक हो और सज्जन पुरुषोंकी समझमें आ जाय ऐसा वचन निःशंक होकर कहो, हम विचारके साथ ग्रहण करेंगे ॥३८॥ इस प्रकार विप्रके वचन सुनकर जिनेन्द्र भगवानके चरणकमलोंका भ्रमर मिष्टभाषी वह मनोवेग कहने लगा-॥३९॥ रक्त १, द्विष्ट २, मनोमूढ़ ३, दूसरोंके कहनेको ही विश्वास करनेवाला हठग्राही ४, पित्तदूषित ५, आम्र ६, क्षीर ७, अगुरु ८, चन्दन ९ और बालिश (मूर्ख) १० ये दश प्रकारके मूर्ख हैं ॥४०॥

ये सब पूर्वापर विचाररहित पशुओंके तुल्य हैं। तुम लोगोंमें ऐसा जो कोई हो तो मैं अपनी बात कहते डरता हूं ॥४१॥ मनुष्य और तिर्यंचोंमें इतना ही भेद है कि, जो समस्त कार्य विचार-पूर्वक करे सो तो मनुष्य और बिना विचारे करे वही पशु है ॥४२॥ जो पूर्वापर विचार करनेवाले मध्यस्थ (पक्षपातरहित) धर्मेच्छु हों वे

ही उत्तम समाचार कहे गये हैं ॥४३॥ मूर्खोंमें सुभाषित और सुखदायक वचन भी कहा हुवा महती पीडा करनेवाला है। जैसे सर्पोंको दूध पिलाना ॥४४॥ यद्यपि पर्वतकी शिलापर कदाचित् कमल हो जाय तथा जलमें अग्नि और हलाहल विषमें अमृतकी प्राप्ति हो जाय, परन्तु मूर्खमें विचार कदापि नहिं होता ॥४५॥

हे भद्र ! ये दश प्रकारके मूर्ख कैसे होते हैं सो कहो। इस-प्रकार ब्राह्मणोंके कहनेपर वह मनोवेग विद्याधर रक्त द्विष्टादि दश मूर्खोंकी चेष्टा दश कथाओंके द्वारा कहने लगा ॥४६॥

१. रक्तपुरुषकी कथा।

रेवा नदीके दक्षिण किनारेपर सामन्त नगरमें बहुधान्यक नामका बड़ा धनाढ्य एक ग्रामकूट (चौधरी) रहता था ॥४७॥ उसके सुन्दरी और कुरंगी दो मनोहर स्त्रियें थीं। जैसे कि, महादेवके पार्वती और गंगा ॥४८॥ सो उसने कुरंगी नामक युवा स्त्रीको प्राप्त होकर सुन्दरी जो वृद्धा थी उसको छोड़ दी; सो उचित ही है। 'सरसाको पाकर विरसाको कौन सेवे' ॥४९॥ कुछ दिनोंके पश्चात् बहुधान्यकने सुन्दरीसे कहा—हे भद्रे ! तू अपना भाग (हिस्सा) लेकर अपने पुत्रसहित दूसरे घरमें जाके रह ॥५०॥

तब वह साध्वी पतिकी आज्ञानुसार (जिस प्रकार कहा उसी प्रकार) रहने लगी। क्योंकि—'पतिव्रता स्त्रियें अपने पतिकी आज्ञा कदापि उलंघन नहीं करतीं' ॥५१॥ उसके पतिने आठ तो बैल, दश गौ, दो दासी और दो हाली (सेवक) तथा सर्व प्रकारकी सामग्री सहित एक घर भी दिया ॥५२॥ तत्पश्चात् वह बहुधान्यक मोहित हो उस कुरंगीके साथ मनवांछित भोगोंको भोगता हुवा मदिरासे मदोन्मत्तकी समान जाते हुये समयको न जानता हुवा ॥५३॥

उस सुन्दराकार नवयौवना प्रियाको पाकर वह बहुधान्यक इन्द्राणीसे आलिंगन करनेवाले इन्द्रको भी अपनेसे अधिक नहीं मानता था ।।५४।। युवती स्त्री वृद्धपुरुषमें रत होती हुई नहिं शोभती । क्योंकि—'पुरानी कम्बलके साथ जोड़ा हुवा दुशाला कदापि नहिं शोभता' ।।५५।।

जो पुरुष वृद्धाकी अवज्ञा करके तरुण स्त्रीमें रत होता है वह शीघ्र ही उसके द्वारा दी हुई पीड़ाको प्राप्त हो विपदाको भोगता है ।। ५६ । वृद्ध पुरुषको तरुण स्त्रीकी बराबर अन्य कोई दुःखदायक नहीं है । 'क्या अग्निके सिवा य भी और कोई पदार्थ अधिक तापकारी है'? ।।५७।। वृद्धपुरुषके जीवनकी स्थिति (अवधि) तरुणी प्रसंगतक ही जानना । क्योंकि—'वज्राग्निके संग रहते शुष्क वृक्षकी स्थिति कैसे हो सकती है' ? ।।५८।। एक समय स्नेहरूपी सूर्यके द्वारा प्रफुल्लित कुरंगीके मुखरूपी कमलको नित्य अवलोकन करनेवाले बहुधान्यकको वहांके राजाकी सेनाका विशेष प्रबन्धकर्ता होना पड़ा ।। ५९ ।। सो राजाने उसे बुलाकर आज्ञा करी कि तुम सेनामें शीघ्र ही जावो और आवश्यकीय सामग्री करो ।।६०।।

उसने भी नमस्कार करके "ऐसा ही करूँगा।" कहके अपने घर आकर एकांतमें स्थित अपनी वल्लभाको गाढालिंगनपूर्वक कहता हुवा—।।६१।। हे कुरंगी ! मैं सेनामें जाता हूं तू घरमें खुशीसे रहना । क्योंकि—'सुखाभिलाषियोंको स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन करना योग्य नहीं' ।।६२।। हे सुन्दरी ! मेरे स्वामीकी सेना तैयार है, मुझे अवश्य ही जाना पड़ेगा । नहीं तो स्वामी कोप करेगा ।।६३।। ये वचन सुनकर वह कुरंगी खेदखिन्न बुद्धिसे कहने लगी—हे

नाथ ! मैं भी आपके साथ अवश्य चलूँगी ॥६४॥ हे नाथ ! जलती हुई अग्नि तो मैं सुखसे सह सकती हूं परन्तु समस्त शरीरको आताप करनेवाले आपके वियोगको नहीं सह सकती ॥६५॥

हे विभो ! आपके सन्मुख अग्निमें प्रवेश कर मर जाना श्रेष्ठ है परन्तु आपके पीछे विरहरूपी शत्रुसे मारी जाऊँ सो भली नहीं ॥६६॥ हे नाथ ! जैसे वनमें शरणरहित मृगीको सिंह मारता है, उसीप्रकार आपके विना यहां अकेलीको मुझे कामदेव मार डालेगा ॥६७॥ यदि आपको जाना ही हो तो जावो। यमराजके घर जाते हुये मेरे जीवनका मार्ग भी कल्याणरूप होवो। आपका मार्ग कल्याणरूप होवो ॥६८॥ इसप्रकार अपनी प्रियाके वचन सुनकर वह ग्रामकूट कहने लगा—हे मृगलोचनी ! ऐसा मत कह, स्थिर होके घरपर रह, चलनेकी इच्छा मत कर ॥६९॥ क्योंकि राजा बड़ा व्यभिचारी (परस्त्रीलोलुप) है तुझे देखते ही ग्रहण कर लेगा। इस कारण हे कान्ते ! तुझे घर रखकर ही मैं जाऊँगा ॥७०॥

राजाका स्वभाव है कि तुझ सरीखी मनोहर स्त्रीको देखकर वह अवश्य छीन लेता है। सो उचित ही है कि—'जिसकी सदृश दूसरा नहीं ऐसे स्त्रीरत्नको कौन छोड़े' ॥७१॥ इसप्रकार अपनी प्रियाको समझाकर और धनधान्यसे भरेहुए घरको सौंपकर वह ग्रामकूटपति सेनाके साथ चला गया ॥७२॥ सरागीका ऐसा ही स्वभाव होता है कि—वह मनोवांछित वस्तुको पाकर फिर किसीका भी विश्वास नहीं करता। यदि उस वस्तुका वियोग हो जाय तो मरण तक इच्छा करता है ॥७३॥ कुत्ता कुत्तीको पाकर उसे जगतकी समस्त वस्तुओंसे प्यारी समझता है। यद्यपि वह दीन है तो भी अपनी कुत्तीके छिन जानेके भयसे इन्द्रको भी भूँकता है ॥७४॥ नीच कुत्ता कृमि

नाक और मलसे लिप्त नीरस मांसको पाकर भी अमृतकी समान मानता है ॥७५॥

जो जिस वस्तुमें रत (मग्न) है वह उसकी रक्षा करता ही है। जैसे कौआ विष्टाको संग्रह करके क्या सर्व प्रकारसे रक्षा नहीं करता? ॥७६॥ जिस प्रकार कुत्ता पशुके हाडको रसायनकी समान समझकर चाटता है उसी प्रकार जो रक्त-मूर्ख होता है वह असुन्दरको भी सुन्दर मानता है ॥७७॥ अपने पतिको परदेश चले जानेके पश्चात् वह कुरंगी कामके वशीभूत हो अपने जारोंके (यारोंके) साथ निःशंक रमने लगी। कैसे हैं वे जार मानों देहधारी अन्याय ही हैं ॥ ७८ ॥ किये हैं इच्छित मनोरथ जिसने ऐसी वह कुरंगी अपने जारोंको अनेक प्रकारके भोजन वस्त्र धनादिक देने लगी ॥७९॥ जो स्त्री अनुरक्त होकर चिरकालसे पालन पोषण की हुई अपनी देहको भी सँवार सँवारके देती है तो उसको अपने द्रव्यादिक देनेमें कौनसा कष्ट है? ॥८०॥

सो उस रण्डाने नौ दश दिनमें ही अपने यारोंको समस्त धन दौलत देकर खा पीके पूरा किया, घरमें कुछ भी नहीं छोड़ा ॥८१॥ कामरूपी बाणोंसे पूरित है देह जिसकी ऐसी वह कुरंगी नष्टबुद्धि होकर अपने घरका समधान्य वस्त्र बर्तन रहित मूसोंकी वसती कर दिया ॥८२॥ जिसप्रकार ऋतुमती गौ कामार्त सांडोंके साथ जहां तहां पशुकर्म करती विचरती है उसीप्रकार वह कुरंगी कामपीड़ित हो अपने यारोंके साथ सर्वप्रकारसे निःशंक विचरने लगी ॥८३॥ जिसप्रकार समस्त बेर तोड़कर भयभीत चोर मार्गकी झाड़बेरीको छोड़कर भाग जाते हैं उसीप्रकार उस कुरंगीके पतिका आना सुनकर उसके यारोंने रहा सहा समस्त धन हरण करके छोड़ दी ॥८४॥ तब

वह भी अपने पतिका आगमन जानकर उत्तम पतिव्रताका वेष धारणपूर्वक लज्जायुक्त हो अपने घरमें तिष्ठती हुई। सो नीति ही है क्योंकि—'पति आदिकको धोका देना तो स्त्रियोंका स्वाभाविक धर्म है' ॥८५॥

कुरंगीने इसप्रकार अपना वेष बनाया कि जिससे कोई भी यह नहीं समझे कि यह कुलटा (व्याभिचारिणी) है' सो 'यह तो इन्द्रको भी धोका देकर अज्ञानी कर देती है तो मनुष्योंकी तो गणना ही क्या' ॥८६॥ सासलिये हैं मालिकके समस्त कार्य जिसने ऐसा वह बहुधान्यक अपनी प्रियाके (कुरंगीके) पास एक आदम को भेजकर आप ग्रामसे बाहर ही एक वृक्ष तले विश्राम करने लगा ॥८७॥ उसने कुरंगीके पास जाकर नमस्कारपूर्वक कहा—हे कुरंगी! तुमारा प्रियपति आगया है, सो उसके लिए शीघ्र ही अनेक प्रकारके भोजन बनाओ। मुझे यह बात कहनेके लिये ही उन्होंने भेजा है ॥८८॥ यह सुनकर उस कुटिला मुग्धाने कहा—तू यही बात बडी स्त्रीके पास जाकर कर; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष हैं वे क्रम उलंघनकी निंदा करते हैं। वह मेरेसे बडी है, सो प्रथम दिन उसीके घर भोजन होना चाहिये। इसप्रकार समझा कर ॥८९॥ वह कुरंगी उस आदमी सहित बडी सौत (सुन्दरी) के घर जाकर कहने लगी—हे सुन्दरी! तेरा पति आगया है, सो उसके लिये बहुत स्वादिष्ट भोजन बना, क्योंकि आज प्रथम दिन तेरे ही घर वे जीमेंगे ॥९०॥

यह सुनकर सुन्दरीने कुरंगीसे कहा—हे मिष्ट भाषिणी! सुन्दर यौवनकी समान मैं उज्ज्वल (पवित्र) भोजन तो बनाऊंगी परन्तु वह तेरा पति जीमेगा नहीं ॥९१॥ तब सुभागाने (कुरंगीने) हँसकर कहा कि यदि वह वास्तवमें मुझे प्यारी समझता है तो मेरे

वचनानुसार तेरे इस सुन्दर घरमें अवश्य जीमेगा। तू भोजन तो बना ।९२।। इसप्रकार कुरंगीके वचन सुनकर वह अनेकप्रकारके षट्रस पूरित भोजन बनाती हुई। "जो सज्जन पुरुष होते हैं वे अपनी समान ही सबको साफ समझते हैं" ॥९३॥ वह अकक्षितदोषा मायाचारिणी अपने धनहीन घरको छिपाती हुई, सो ठीक ही है, मायाचारिणी स्त्रियें अपने समस्त दूषणरूपी धनको छिपा लेती हैं ॥९४॥ इसप्रकार वह हीनाचारिणी महान् दूषणोंकी धरनेवाली धर्मके मार्गको तजकर अपने पतिको इसप्रकार ठगती हुई। क्योंकि जो पापी जीव हैं वे संसारके अपरिमित दुःखोंको नहीं जानते ॥९५॥

इतिश्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें चतुर्थ परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ४ ॥



पांचवां परिच्छेद

अथानंतर कामकी व्यथासे पीड़ित है चित्त जिसका ऐसा वह बहुधान्यक ग्रामकूट भी उत्साहपूर्वक हर्षित हो शीघ्र ही कुरंगीके घर गया ॥१॥ वो मेघोंके विना आकाश अथवा नगरनिवासियोंके विना श्रेष्ठ नगरके समान अपने घरको धनधान्यादिकसे शून्य (खाली) देखकर भी ॥२॥ वह मूढ़ कुरंगीके मुखावलोकनके लिये आकुलितचित्त होकर अपने घरको चक्रवर्तिके घरसे भी अधिक देखता (मानता) हुआ ॥३॥ तथा वह ऐसा मानता हुआ कि जो कार्य मेरी प्रिया करे वो मुझे प्रिय हैं और जो वह नहीं करती वे सब भी मुझे प्रिय हैं ॥४॥ रागी नर अन्यको नहीं देखे तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं क्योंकि जिनके नेत्र रागने अंधे कर दिये, वे अपने आपको (आत्माको) भी नहीं देखते ॥५॥

तथा जो रक्त नर होता है वह धर्म क्या है, अपना कर्तव्य क्या है, गुण क्या है, सुख क्या है, त्यागने योग्य वस्तु कोनसी है, ग्रहण करने योग्य वस्तु कोनसी है, यह क्या पदार्थ है, द्रव्य क्या है, और घरका नाश क्या चीज है इत्यादि कुछ भी नहीं जानता ॥६॥ रागी पुरुष स्वाधीनताको छोड़ देता है और पराधीनताको स्वीकार करता है, धर्म कार्यको छोड़कर पापकार्यमें रमने लग जाता है ॥७॥ रागकर ग्रसित पुरुष शीघ्र ही महती आपदाको प्राप्त होता है। क्या मांस लगी हुई फांसीमें आसक्त होकर फँसा हुआ मीन मृत्युरनेको प्राप्त नहीं होता ? ॥८॥ योग्य अयोग्यको न जाननेवाले हिरणको जिस प्रकार शिकारी मार डालता है, उसी प्रकार रक्तपुरुषको दुर्निवार बाणोंके द्वारा कामदेव मार डालता है ॥९॥ रक्तपुरुषको देखकर

सज्जनजन तो शोच (अफसोस) करते हैं और दुर्जनजन उपहास करते हैं, तथा बहुतसे लोक तिरस्कार भी करते हैं, अथवा ऐसी कौनसी आपदा है कि जिसको रक्तपुरुष नहीं भोगता ? ॥१०॥

बुद्धिवानोंको चाहिये कि रागमें उपर्युक्त प्रकारसे दूषण जानकर छोड़ दे। ऐसा कौन बुद्धिमान है जो सर्पको विषका घर जानता हुवा भी नहीं छोड़े ? ॥११॥ तत्पश्चात् वह बहुधा रक्त क्रीड़ाके साथ प्रफुल्लित कांतिवाले प्रियाके मुखरूपी कमलको देखता हुवा घरके द्वार पर स्थित हो रसोईघरको देखा और ॥१२॥ क्षण-एक ठहर कर अपने मनको प्यारी ऐसी कुरंगीको कहता हुवा-हे कुरङ्गी ! मुझे शीघ्र ही भोजन दे, विलम्ब क्यों करती है ? ॥ १३॥ तब वह पुरुषोंकी नाश करनेवाली कुटिल अभिप्रायकी धरनेवाली कुरंगी यमराजके भयानक धनुषके समान भृकुटी चढ़ाकर अपने पतिको कहती है-॥१४॥ हे दुष्टबुद्धि ! पूर्वपुरुषोंकी मर्यादा पालन करनेके लिये जिसके पास समाचार भेजा, उसी अपनी माके घर जा और वहीं पर भोजन कर ॥१५॥

देखो, उस कुरङ्गीने अपने आप ही तो सुंदरीको कहा—भर्त्ता आज तेरे ही घर जीमेंगे, फिर आप ही पतिके लिये क्रोध करती है सो ठीक ही है, जिन स्त्रियोंने अपने पतिको वशमें कर लिया है वे कौन२ सा अपराध नहीं लगाती ? ॥१६॥ यह स्वभाव ही है कि दुष्ट स्त्री अपने आप दोष (अन्याय) करके अपने उस दोषको छिपानेके अभिप्रायसे पतिपर कोप किया करती है ॥१७॥ कुटिल अभिप्रायवाली स्त्रियां सोच विचार कर ऐसा वचन कहती हैं कि जिससे बड़े २ बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है अथवा भ्रम-रूपी चक्रमें गोता खाने लग जाती है ॥१८॥ स्त्रियोंके मान होने

(रूठजाने) पर अवज्ञावस्थामें अभ्यासे करनेमें नहीं आवे, ऐसी स्त्रीकी स्थिरताको भले प्रकार करनेके लिये रागीजन स्त्रियोंके किये हुवे क्रोध, मान व अवज्ञा वगैरहको स्वभावसे ही सह लेते हैं ॥१९॥ जो नीच रक्तपुरुष होता है, उसको स्त्री ज्यों ज्यों तिरस्कार करती है, त्यों त्यों मंडूककी तरह उसके सन्मुख जाता है और—॥२०।

वह विचित्र प्रकारके आश्चर्य करनेवाली स्त्री उस रक्तपुरुषको रागी (मोहित) कर लेती है और रागयुक्त किया हुवा पुरुषोंका मन शीघ्र रंजायमान हो जाता है ॥२१॥ जिस प्रकार कर्मकार (लुहार) लोहेको बहुतसा ताप देकर उसे तोड़ भी सकता है और जोड़ भी सकता है, उसी प्रकार स्त्री भी प्रेमको तोड़ने और जोड़ने रूप दोनों कार्योंमें समर्थ होती है ॥२२॥ जिस प्रकार बिल्लीके भयसे मूसा सिकुड़कर चुप हो बैठ जाता है, उसी प्रकार वह बहुधान्यक कुरंगीके अयुक्त वचन सुनकर अवाक् (गूँगा) हो बैठ गया ॥२३॥ वज्राग्निकी शिखाका आताप तो मुखसे सहा जा सकता है, परन्तु स्त्रीकी भयकारिणी भ्रुकुटी सहित वक्रदृष्टिका कोई भी नहीं सह सकता ॥२४॥ दोनों हाथ जोड़कर वार्तालाप (प्रार्थना) की हुई भी वह दुष्टा कोपायमान महाविषवाली सर्पिणकी तरह बड़बड़ाती व चिल्लाती ही रही ॥२५॥

दुर्निवार रोगकी समान पुरुषोंको निरन्तर कष्ट देनेवाली इस प्रकारकी दुःशील (खोटे स्वभावकी धरनेहारी) स्त्रियें पापके प्रभावसे ही होती हैं ॥२६॥ इसी अवसरमें "हे पिताजी! घर चलकर भोजन कीजिये" इस प्रकार उसके पुत्र द्वारा प्रार्थनापूर्वक बुलाने पर भी वह मूर्ख चिंतातुरकी समान चुप हो रहा तब—॥२७॥ "तूने यह क्या पाखण्ड रचा है, अपनी प्रियाके घर जाकर क्यों नहीं जीमता?"

इस प्रकार कुरंगीके सुडकनेपर वह उसी वक्त डरता डरता सुन्दरीके घर चला गया ॥२८॥ वहां पहुंचते ही उस सुन्दरीने परम स्नेह प्रगट किया और अपने निर्मल चित्तकी समान विशाल कोमल उत्तम आसन दिया ॥२९॥ तत्पश्चात् उसने पतिके सम्मुख अनेक प्रकारके पात्र रखकर उनमें यौवनकी समान सुन्दर रसीले भोजन परोसे । परन्तु—॥३०॥

जिस प्रकार निर्मल विशुद्ध जिनवाणी द्वारा वर्णन किया हुआ सम्यक्त्व अभव्यको नहीं रुचता, उसी प्रकार सुन्दरीके दिये हुये भोजन उसको स्वादिष्ट (अच्छे) नहीं लगे ॥३१॥ उसने ऐसा समझ लिया कि वह जो कुछ करती है वे सब मूझे अनिष्ट (अप्रिय) हैं और यह कुरंगी जो कुछ करती है वे सब कार्य मुझे प्रिय हैं ॥३२॥ जो जीव मोहके वशीभूत हो जिससे विरक्त हो जाता है वह वस्तु उत्तम होने पर भी उसको कदापि नहीं रुचती ॥३३॥ इसीकारण महास्नेहकी धारण करनेवाली स्त्रीकी समान सुन्दर पुष्टिकारक सुवर्णपात्रमें परोसा हुवा वह सुन्दर भोजन उसको नहीं रुचा ॥३४॥

कामरूपी अंधकारसे आच्छादित अपने सम्मुख पात्रमें उत्तम भोजनको देखता हुवा, वह बहुधान्यक इसप्रकार विचार करने लगा कि, चन्द्रमाकी मूर्तिसमान आनन्दको देनेवाली, सुन्दर कुचकी धारक वह कुरंगी किसकारणसे क्रोधायमान होती हुई ? मेरी तरफ दृष्टि भी नहीं करती ? निश्चयकरके उसने मुझे वेश्याके साथ सोया हुवा समझकर ही कोप किया है। सो ठीक है, संसारमें ऐसा कोई भी विषय नहीं है जो चतुर स्त्री न जान सके ॥३५॥३६॥३७॥ इस-प्रकार बिना जीमे ही ऊँचा मुख किया हुवा देख उसके कटुम्बीजनोंने



कहा—"यहां सब मनोहर वस्तु हैं जो जीमो, क्या ये भोजन तुमको अच्छे नहीं लगते ? ॥३८॥ तब वह बोला कि क्या जीमूं ? मेरे मनलायक यहां कुछ भी नहीं है। मुझे कुरङ्ग के घरसे कुछ भी भोजन लाकर दो तो ठीक हो। ३९॥ इस प्रकार पतिके वचन सुनकर सुन्दरी उसी वक्त कुरङ्ग के घर गई और कहा—हे कुरङ्गी ! पतिको जो कुछ रुचिकारक भोजन हो सो दे ॥४०॥

कुरङ्गीने कहा—पतिका भोजन तेरे घर पर होगा ऐसा समझकर मैंने आज कुछ भी नहीं बनाया ॥४१॥ यदि वह रक्तबुद्धि मेरा दिया हुआ गोमय (गोबर) खा लेगा तो मेरे समस्त दूषण भी वह लेगा ॥४२॥ इस प्रकार अपने मनमें विचार कर उसने उसी वक्त गमेर चावे हुये गेहूके हैं दाने जिसमें ऐसा निस पतलार गोबर लाकर ॥४३॥ "ले, यह व्यञ्जन ले जाकर स्वामीको परस" ऐसा कहकर बर्तनमें भरके सुन्दरीको सौंप (दे) दिया ॥४४॥ जब उस सुन्दरीने लाकर वह गोबर स्वामीको परस दिया तो सुन्दर भोजनको छोड़कर उस गोबरकी बारंबार प्रशंसा करता हुआ विष्टाको शूकरकी तरह खा गया ॥४५॥

आचार्य कहते हैं कि उस बहुधान्यकने कुरंगीका दिया हुआ गोबर खा लिया तो इसमें क्या आश्चर्य हुआ ? क्योंकि रागी पुरुष तो स्त्रियोंके जघनस्थलके महा अशुचि पदार्थको भी खा लेता है ॥४६॥ विरागीको प्रशस्त कहिये सुन्दर भी असुन्दर भासता है। परन्तु रागी पुरुषको प्रगटपणेकर असुन्दर पदार्थ भी सुन्दर दीखता है ॥४७॥ जगतमें ऐसा कोई भी नीच कार्य नहीं है, जो रागी पुरुष स्त्रीकी आज्ञासे नहीं करे। क्योंकि बहुतसे कामुक रागी पुरुष विष्टातक खा लेते हैं। तब गोबर उसकी अपेक्षा पवित्र क्यों

न हो ॥४८॥ वह सेठ मात्र गोबर खाकर अपनी बैठकमें जा बैठा और अपनी प्रियाके क्रोधका कारण जाननेके लिये ब्राह्मणसे (ज्योतिषीसे) पूछने लगा ॥४९॥ कि हे भद्र ! मेरी स्त्री मेरेपर रुष्ट क्यों हो गई ? क्या निश्चयसे उसने कोई मेरा दुश्चरित्र जान लिया है ? यदि तुम जानते हो तो कहो ॥५०॥

तब ब्राह्मणने कहा—हे भद्र ! अपनी स्त्रीकी बात तो रहने दो, इसके पहिले जो स्त्रियोंकी चेष्टायें हैं, वे थोड़ीसी कहता हूँ सो सुन लो ॥ ५१ ॥ जगतमें ऐसा कोई भी दोष नहीं है जो स्त्रियोंमें न हो। क्योंकि 'ऐसा कौनसा अन्धकार है जो रात्रिमें कहीं भी नहीं हो' ॥ ५२ ॥ समुद्रके जलका परिमाण करना तो शक्य है परन्तु समस्त दोषोंकी खानि रूप स्त्रीके दोषोंकी गिनती कदापि नहीं हो सकती ॥५३॥ दूसरोंके दोष ढूंढनेमें चतुर द्विजिह्व कहिये एक ही बातको कहीं कुछ कहीं औरकी और कहनेवाली स्त्रियोंका क्रोध महाक्रोधायमान सर्पिणीकी समान कदापि शमन नहीं होता ॥५४॥ यह स्त्री, सदा उपचार (चिकित्सा) करते हुये भी अत्यन्त वृद्धि रूप वेदनाकी सदृश जीवनको क्षय करनेवाली है ॥५५॥

इधर उधर भटकते हुये दोषोंका परस्पर कभी मिलाप नहीं होता था, इस कारण ब्रह्माजीने समस्त दोषोंको एक ही जगह मिलाप नहीं होता था इस कारण ब्रह्माजीने समस्त दोषोंको एक ही जगह मिलाप करानेकी इच्छासे ही मानो यह स्त्री रूपी सभा बनाई है ॥५६॥ जिस प्रकार जलकी खानि नदी है उसी प्रकार अनर्थोंकी खानि स्त्री है और जैसे विषका घर सर्पिणी है उसी प्रकार दुश्चरित्रोंकी बस्ती भी (घर) यह स्त्री है ॥५७॥ जिस प्रकार बेलोंके उत्पन्न होनेको

पृथिवी कारण है, उसी प्रकार अपयशको उत्पन्न करनेका कारण स्त्री है तथा जैसी अन्धकारकी खानि रात्रि है, उसी प्रकार दुर्नयोंकी महाखानि स्त्री है ॥५८॥ यह स्त्री अपना स्वार्थ साधनेमें चोरटीके समान है, आताप करनेको अग्निके सदृश है, हठग्राहितामें अन्धक छायाके समान है और सन्ध्याके समान क्षणमात्र प्रेमकी धरनेवाली है ॥५९॥ तथा कुत्तीके समान अपवित्र, नीच, खुशामद करनेवाली, पापकर्मसे अपने मलीन उच्छिष्टको भक्षण करनेवाली है ॥६०॥

दुर्लभ वस्तुमें शीघ्र ही रंजायमान होकर अपने स्वाधीन वस्तुको छोड़नेवाली और महान् घोर साहस करनेवाली, न कभी डरती और न शर्माती है। तथा—॥६१॥ बिजली समान अस्थिर बाघिनीके समान मांस खानेकी इच्छक, मच्छीके समान चपल और दुर्नीतिके समान दुःख देनेवाली है ॥६२॥ हे महाशय, बहुत कहांतक कहूं, तुम्हारे घरमें जो यह कुरंगी है, इसको प्रत्यक्षमें अपना शत्रु समझना ॥६३॥ हे भद्र! सम्यक्चारित्रके समान दुर्लभ तेरा समस्त धन, इस कुरंगीने अपने यारोंको देकर नष्ट करदिया है ॥६४॥ जो स्त्री निर्भयचित्त हो तेरे धनको नष्ट करती है, वह दुराशया तेरे जीवनको हरै तो उसे कौन निवारण कर सकता है? ॥६५॥

बराबर रक्षित न होनेके कारण सब दिन खोटे मार्गमें चलनेवाली स्त्री जूतीकी तरह पुरुषको स्खलित कर देती है। ६६॥ जो मूर्ख निर्दयचित्तवाली स्त्रियोंका विश्वास करता है वह क्षुधासे आकुलित सर्पिणीका विश्वास करता है ॥६७॥ जिसके घरमें दुष्ट स्त्री रहती हो तो वह सर्पिणी, तस्करी, दुष्ट हथिनी, राक्षसी, शाकिनीके समान प्राणोंको हरनेवाली है ॥६८॥ इस प्रकार हितवादी भट्टके वचन सुनकर उस भ्रष्टबुद्धि बहुधान्यकने सबका सब कुरंगीको कह सुनाया

॥६९॥ उसने कहा—हे स्वामी! इसने मेरा शील हरना चाहा था, इस कारण मेरा यह दुश्मन है, सो यह मेरे दूषणोंको कहता है ॥७०॥

जिस प्रकार समुद्र मगरोंका (नाके वगैरहका) स्थान है उसी प्रकार यह दुष्ट भट्ट समस्त अन्यायोंकी खानि है। सो हे प्रभो, इसको शीघ्र ही घरसे निकाल देना चाहिये ॥७१॥ कुरंगीके इस वचनसे वह हितैषी भट्ट तिरस्कृत किया गया। सो ठीक ही है। 'स्त्रियोंको आज्ञामें चलनेवाला रक्तपुरुष ऐसा कौनसा अनुचित कार्य है जो नहीं करता' ॥७२॥ 'अविचारी पुरुषोंका दिया हुआ सद्वचन भी सर्पोंको हितकारक दूध पिलानेके समान महा भयकारी है' ॥७३॥ इस संसारमें हितरूप वचन कहते हुये भी ग्रामकूटके समान निर्विचार रागान्ध पुरुषोंके द्वारा प्रत्यक्ष-तया दोषारोपण किया जाता है ॥७४॥ जो मनुष्य हितैषी पुरुषके द्वारा कहे हुये दुष्टशीलाके चरित्र उसी दुःशीलाको जाकर कह देता है वह और क्या नहीं करेगा? अर्थात् सब कुछ करेगा ॥७५॥

हे विप्र! इस प्रकार मैंने दुष्टचित्तवाले रक्तपुरुषको सूचित किया। अब द्विष्टपुरुषका विधान कहता हूँ सो सुनो ॥७६॥

२-दुष्टपुरुषकी कथा।

कोटीनगरमें स्कंध और वक्र नामके दो जमीदार किसान रहते थे। उनमेंसे वक्र नामका किसान बड़ा वक्रपरिणामी था ॥७७॥ वे दोनों किसान एक ही ग्रामकी उपज खानेवाले थे, इस कारण दोनोंमें परस्पर बड़ा द्वेष (वैर) हो गया। सो ठीक ही है, क्योंकि 'जहां दो चार मनुष्योंकी एक ही द्रव्यकी अभिलाषा होती है वहांपर

अवश्य ही वैर हो जाता है' ॥७८॥ प्रकाश चाहनेवाले काक, और नित्य अन्धकार चाहनेवाले उल्लूकी तरह उन दोनोंमें स्वाभाविक दुर्निवार वैर हो गया ॥७९॥ इनमेंसे वक्र नामका किसान सदैव लोगोंको बड़ा दुःख देता था, सो नीति ही है कि—'जिसने दोष-बुद्धि धारण की, वह मनुष्य किसको सुखदायक होगा।' ॥८०॥

एक समय वक्र प्राणहारी व्याधि (अपास्मररोग) से पीड़ित हो गया। सो नीति ही है कि—'जो पापिष्टपरको दुःखदायक होता है वह कौनसे दुःखको प्राप्त नहीं होता' ॥८१॥ वक्रकी ऐसी अवस्था देखकर भी वक्रके पुत्रने कहा—हे पिताजी! आप विशुद्ध मन होकर किसी ऐसे धर्मको धारण करो कि जिससे आपको परलोकमें सुखकी प्राप्ति हो ।८२॥ परलोकमें एक मात्र सेकड़ों सुख दुःखका कर्ता अपना किया हुआ पुण्य पापरूप कर्म ही साथ जाता है। पुत्र कलत्र धनधान्यादिमेंसे कोई भी साथ नहीं जाता है ॥८३॥ हे तात! अन्तरहित बड़े लम्बे मार्गवाले इस संसाररूपी वनमें सिवाय आत्माके अपना व पराया कोई भी नहीं हैं। इस कारण कुबुद्धिको छोड़कर कोई हितकारी कार्य करें ॥८४॥ मेरी समझमें तो आप मित्र पुत्रादिकसे मोह छोड़कर ब्राह्मण और साधुजनोंके अर्थ धनादिकका दान दें और किसी इष्टदेवका स्मरण करें जिनसे आपको सुखदायक गतिकी प्राप्ति हो ॥८५॥

ये वचन सुनकर वक्रने कहा—हे पुत्र! मेरा एक अहितरूप कार्य (जो कि मैं कहता हूँ) करो। जो सुपुत्र (सपूत) होता है वह पिताके पूज्य वाक्यका उल्लंघन कदापि नहीं करता ॥८६॥ रे वत्स! मेरे जीते जी तो यह स्कन्ध कदापि सुखी नहीं हो सका, परन्तु बन्धु, पुत्र, कुटुम्ब, सम्पत्ति सहित उसका विनाश नहीं कर

सका। भो हे पुत्र ! यह जिस प्रकार समूल (सकुटुम्ब) नष्ट हो जाय ऐसा कोई उपाय करना, जिससे कि मैं मनोहर शरीरको धारण कर प्रसन्नचित्तसे सदैवके लिये स्वर्गवास कर सकूँ। ८७-८८॥ मेरी समझमें इसके लिये यह उपाय रचना कि मेरे मर जानेपर मेरी लाशको स्कन्धके खेतमें लेजाकर लकड़ियोंके सहारे खड़ी कर देना। तत्पश्चात् अपनी समस्त गौ, भैंस, घोड़ोंको उसके खेतमें छोड़ देना, जो वे उसके खेतका समस्त धान्य नष्ट कर दें। और तू किसी वृक्ष वा घासकी ओटमें छिपकर देखते जाना। जब स्कन्ध क्रुद्ध होकर मेरेपर घात (वार) करे तो उसी वक्त तू अन्य लोगोंको सुनानेके लिये बड़े जोरसे चिल्ला उठना कि स्कन्धने मेरे पिताको मार डाला ॥८९-९०॥

जब तू इसप्रकार करेगा तो राजा स्कन्ध द्वारा मुझको मरा जान स्कन्धको कुटुम्बसहित दण्ड देगा, सम्पत्ति छीन लेगा तो यह स्कन्ध पुत्रसहित मरणको प्राप्त हो जायगा ॥९१॥ इसप्रकार महा-पापरूप वचन कहता २ वह बक मर गया और उसके पुत्रने भी पिताकी आज्ञाका पालन किया। सो नीति ही है कि—'पाप कार्य करनेवालोंके सहायक अनेक हो जाते हैं' ॥९२॥ जो दुष्ट मरता २ भी परको सुखी देखनेमें अधीर है, उसको सिवाय निर्दयी यमराजके और कौन है जो हितकी बात समझा सके ? ॥९३॥ भो ब्राह्मण ! जिस प्रकार बकने अपने पुत्रके कहे हुये हितवचनोंको कुछ भी स्वीकार नहीं किया, सो उस बकके सदृश जो कोई तुम लोगोंमें निकृष्ट (दुष्ट) हो तो मैं हितरूप वचन कहते डरता हूँ ॥९४॥ जो पुरुष महा द्वेषरूपी अग्निसे दग्धहृदय हैं, वे पराई चिंताके सिवाय न तो सुखसे खाते और न सोते और न पराई सम्पत्तिको

देख सकते अर्थात् वे दोनों ही लोकमें निर्मल सुखको नहीं पाते ॥९५॥

जो नीच निरन्तर द्विष्टचित्त रहते हैं और तुच्छ ज्ञानी पराई सम्पत्तिको नहिं देख सकते, वे हमेशा जलते हुये अन्तरहित नर्करूपी अग्निकुण्डमें चिरकाल तक रहना स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अपने दुष्ट स्वभावको नहिं छोड़ते ॥९६॥ जो मूढ हितवचनको छोड़कर हमेशाह विपरीतताको ही ग्रहण करता है. ऐसे दुष्टचित्तके सन्मुख बहुज्ञानी जन कुछ भी वचन नहिं कहते ॥९७॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी
बालावबोधिनी भाषाटीकामें पंचम परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ५ ॥



छठा परिच्छेद

भो ब्राह्मणो ! तुमने अग्निके समान तापकारी दुष्ट पुरुषकी कथा तो सुनी किन्तु अब पाषाण समान नष्ट बुद्धि मूढ पुरुषकी कथा सुनो ॥१॥

३—मूढ़ पुरुषकी कथा ।

यक्षदेवोंके स्थानके समान निधानका खजाना देवालयोंसे पूरित कण्ठोष्ठ नामका एक नगर था ॥२॥ उसमें विप्रोंकर पूजनीय वेदवेदांगका पाठी अर्थात् ब्रह्माके समान चार वेद ही हैं मुख जिसके ऐसा एक भूतमति नामका ब्राह्मण रहता था ॥३॥ उस धीरचित्तके वेदादि पढ़ते २ पचास वर्ष तो बालब्रह्मचर्यावस्थामें ही बीत गये ॥४॥ तत्पश्चात् उसके कुटुम्बीजनोंने यज्ञकी अग्निशिखाके समान उज्ज्वल, नारायणकी लक्ष्मीके समान यज्ञा नामकी एक कन्यासे विधिपूर्वक विवाह करा दिया ॥५॥

वह भूतमति उपाध्यायपदमें ही तिष्ठता हुआ लोकोंके पढ़ानेमें आसक्त बुद्धिवाला, समस्त ब्राह्मणोंसे पूजनीय, यज्ञ करानेमें प्रवीण, भोलाभिक्षार्थियोंमें मान्य, उस यज्ञाके साथ अनेक प्रकारके भोग भोगता हुआ स्थिर चित्त पृथ्वीमें प्रसिद्ध विद्वान् हो सुखसे निवास करता था ॥६-७॥ उसके यहां पढ़नेकी इच्छासे स्त्रियोंके नेत्ररूपी भ्रमरोंको कमल समान सुकमलपाका धारक यज्ञके समान पवित्र यज्ञ नामका एक बटुक (ब्राह्मणका लड़का) आया ॥८॥ उस बटुकको विनयवान् और वेदोंके अर्थ ग्रहण करनेमें चतुर देखकर उस भूतमतिने अपने घर शिष्य बनाकर रख लिया, जो मानो उसने मूर्तिमान अनर्थ ही ग्रहण कर लिया ॥९॥ उस ब्राह्मणके

लड़केको देखते ही यज्ञा तो निश्चल हो गई और जिस प्रकार अतिशय भारसे कदी हुई गाड़ी एकदम ठहर जाती है, उसी प्रकार यज्ञाके नेत्रोंकी दृष्टि अन्य पदार्थोंसे हटकर उसीके देखनेमें स्थिर हो गई ॥१०॥

रति और कामके समान उन दोनोंके सदैव एकत्र रहने रूपी जलसे सींचा हुआ इष्ट फलदायक स्नेहरूपी वृक्ष भी प्रतिदिन बढ़ने लगा ॥११॥ दरिद्रकी सभा, सेवककी प्रतिकूलता और वृद्ध पुरुषकी तरुणी भार्या, ये तीन कुलको क्षय करनेके लिये कारण हैं ॥१२॥ 'पर पुरुषमें आसक्त हुई स्त्री समस्त दोषोंको करती है सो उचित ही है। वज्राग्निकी ज्वाला किसको आतापकारी नहीं होती' ॥१३॥ जो पुरुष स्त्रीको अपने घरमें स्वतंत्र और निरंकुश करता है, वह साक्षात् धान्यमें जलती हुई अग्नि शिखाको नहीं बुझाता, क्योंकि–॥१४॥ संभाल की हुई स्त्री उदयको प्राप्त होकर बढ़े हुये असाध्य रोगके समान प्राणोंको क्षय करती है ॥१५॥

यह स्त्री सबको तृप्त करती है, तथा सेवन करती है, इसी कारण इसका नाम 'योषा' है और क्रोध करनेवाली है, इस कारण इसका नाम 'भामिनी' है ॥१६॥ और अपने दोषोंको ढक लेती है, इस कारण विद्वज्जन इसको 'स्त्री' कहते हैं। इससे चित्त विलीन हो जाता है, इस कारण इसको 'विलया' कहते हैं ॥१७॥ यह पाप कार्योंमें रमाती है, इसी कारण इसको 'रमणी' कहते हैं। यह 'कु' अर्थात् समस्त पृथ्वीको मारती है, इस कारण इसको 'कुमारी' कहते हैं ॥१८॥ यह लोकोंको बलरहित कर देती है इस कारण इसको 'अबला' कहते हैं। इसमें आसक्त होकर मनुष्य प्रमादी हो जाता है इस कारण इसका एक नाम 'प्रमदा' भी है ॥१९॥ अनेक अनर्थोंके

करनेमें प्रवीण स्त्रियोंके ये सब नाम ही प्रगटतया दुःखकारक वेदनाके समान दुःखोंके कारण हैं ॥२०॥

अरक्षित (वशमें नहीं की हुई) स्त्री मनोवृत्तिके समान निरन्तर दोषोंको ही धारण करती है इस कारण स्त्रियोंको सदा वशमें रखना चाहिये ॥२१॥ जो अपना हित चाहते हैं, वे सत्पुरुष नदी, सर्पिणी, व्याघ्री और मृगलोचिनी स्त्रियोंका कदापि विश्वास नहीं करते ॥२२॥ एक समय मथुराके ब्राह्मणोंने कुछ भेट देकर पुडरीक नामका यज्ञ करानेके लिये भूतमतिको बुलाया। सो 'यज्ञे ! घरकी रक्षा करती हुई तू तो घरके भीतर सोया करना और इस बटुकको घरसे बाहर द्वारपर सुलाना" इस प्रकार कह भूतमति मथुराको चला गया॥२३–२४॥ अपने पतिके चले जानेपर उस पापिष्ठाने उस ब्राह्मण विद्यार्थीको अपना यार (यार) बना लिया। सो नीति ही है कि– 'शून्य घरमें व्यभिचारिणी स्त्रियोंका बड़ा राज्य हो जाता है' ॥२५॥

उन दोनोंके परस्पर दर्शन स्पर्शन और बारंबार गुप्त अंगोंके प्रकाशनेसे कामेच्छा, घृतके स्पर्शसे अग्निशिखाके समान शीघ्र ही तीव्रतया बढ़ गई ॥२६॥ 'बहुधा समस्त प्रकारकी स्त्रियोंके द्वारा समस्त पुरुषोंका मन हरा जाता है, तो तरुण व्यभिचारिणीके द्वारा तरुण व्यभिचारीका मन क्यों नहीं हरा जायगा'? ॥२७॥ इसी कारण वह बटुक उस यज्ञाके पीनस्तनोंसे पीड़ित होकर उसको निरन्तर भोगने लगा। सो नीति ही है कि,–'ऐसा कौन पुरुष है, जो एकान्तमें युवती स्त्रीको पाकर भी वैराग्यको प्राप्त हो जाय' ॥२८॥ विभ्रम (सुन्दरता) की निधान (खानि) उस यज्ञा द्वारा गाढालिंगन किया हुआ वह बटुक पार्वतीसे आलिंगन किये हुये

महादेवजीको तृणके समान भी नहीं मानता था ॥२९॥ स्त्री-पुरुषोंको मिलानेवाला न तो कोई दूत है और न संग करानेको कामदेव ही जाता है, ये तो नेत्रोंके विभ्रमोंसे (कटाक्षोंसे) अपने आप ही तुरन्त मिल जाते हैं ॥३०॥

निःशङ्क मदनयुक्त व्यभिचारिणी युवा स्त्री पुरुषको देख कर जो कुछ भी न कर बैठी है तो इससे बड़ा आश्चर्य और क्या है? ॥३१॥ जिस प्रकार अग्निकी ज्वालासे घृतका घड़ा स्वभावसे ही पिघल जाता है, उसी प्रकार नतभ्रूके अर्थात् स्त्रीके द्वारा स्पर्शन किया हुवा पुरुष शीघ्र ही विलीन (मोहित) हो जाता है ॥३२॥ यह मनुष्य अपनी स्त्रीके द्वारा सुरतरूपी अमृतको पीकर अनेक प्रकारके भोगोंको प्राप्त हो कर भी एकान्तमें पर स्त्रीको पाकर प्रायः क्षोभको प्राप्त हो जाता है ॥३३॥ सो यह बटुक तो कामकर पीड़ित मदोन्मत्त तरुण अवस्थाका धारक है। सो एकान्तमें तरुण परस्त्रीको पाकर क्यों नहीं क्षोभको प्राप्त होगा? ॥३४॥ इस प्रकार दृढ़ प्रेम-रूपी फांसीसे बंधा हुवा है चित्त जिनका ऐसे बटुक और यज्ञाको भोगसमुद्रमें मग्न रहते हुये चार महिने बीत गये ॥३५॥

एक दिन उस बटुकको म्लानमुख देखकर प्रेमके भारसे नम्रीभूत यज्ञाने कहा—हे प्रभो! आज तुम चिंतातुर क्यों दीखते हो? सो मुझसे कहो ॥३६॥ बटुकने कहा—हे कान्ते! तेरे साथ लक्ष्मी और विष्णुके समान सुख भोगते हुये आज अनेक दिन बीत गये परन्तु—॥३७॥ हे तन्वि! अब भट्टजीके आनेका समय निकट आ गया, सो अब क्या करूँ और मनको अतिशय प्यारी जो तू उसे छोड़ कर कहां जाऊँ? ॥३८॥ यदि यहां पर रहता हूं तो बड़ी विपत्ति है, यदि जाता हूं तो जानेके लिये पांव नहीं उठते, एक

तरफ तो नदीका किनारा और दूसरी तरफ व्याघ्र है। क्या करूँ: दुविधामें पड़ गया हूँ ॥३९॥ ब्राह्मणीने उससे कहा—तुम इस चिंताको छोड़ दो और स्वस्थ होओ, अपने चित्तको अन्यथा मत करो, मैं जो कहती हूँ सो करो ॥४०॥

हे सज्जन! अपन दोनों बहुत सा द्रव्य लेकर कहीं अन्यत्र चले जांय तो स्वच्छन्दताके साथ मनोहर सुरतामृतको भोगते हुये आनन्द करेंगे और दुष्प्राप्य नरभवको सफल करेंगे तथा जाते हुये तारुण्यका सारभूत मनोहर रस पीवेंगे ॥४१-४२॥ इस कारण हे प्यारे! व्याकुलताको छोड़ कर तुम दो मुरदे लाओ। समस्त जनोंके लक्ष्यमें न आवे ऐसा यहांसे निकलनेका उपाय करूँगी ॥४३॥ यह सुनकर उस यज्ञाकी समस्त आज्ञाको प्रसन्नचित्तसे पालता हुआ। सो नीति ही है कि—'कामी पुरुष ऐसे कार्योंमें मूर्ख नहीं होते' ॥४४॥ फिर रात्रिमें जाकर वटुकने श्मशानसे दो मुरदे लाकर रख दिये। सो उचित ही है 'स्त्रीसे प्रार्थना किया हुआ पुरुष कौनसा साहस नहीं करता' ॥४५॥॥

उस यज्ञाने एक मुरदेको तो पोलीमें और दूसरेको घरके भीतर डालकर समस्त धन लेकर घरको आग लगा दी और— ॥४६॥ व्याध (शिकारी) की फांसीसे मृगके समान उस बस्तीसे शीघ्र ही निकल कर उन दोनोंने उत्तरकी तरफका मार्ग ले लिया। ४७॥ वह प्रज्वलित अग्नि समस्त घरको जलाकर धीरें २ शान्त हो गई। और बस्तीके लोक भी केवलमात्र भस्मको देख २ कर शोच करने लगे— ॥४८॥ देखो! इस अग्निने सतियोंमें अग्रणी गुणवती ब्राह्मणीको बटुक सहित कैसे जला दिया! ॥४९॥ भीतर और बाहरके दोनों मुरदोंके हाड देखकर मन ही मन विस्मय करते हुये

वे समस्त जन अपने २ घरको चले गये ॥५०॥

आचार्य कहते हैं—तीनलोकमें ऐसा कोई भी प्रपंच (छल-कपट) नहीं है, कि जिसको कामसे पढ़ाई हुई स्त्रियां न जानती हों ॥५१॥ बस्तीके लोगों द्वारा भेजे हुये पत्रको देखकर वह मूढधी द्विजाग्रणी आया और अपने घरको जला हुवा देखकर विलाप करने लगा— ॥५२॥ हे महामते बटुक! मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले, गुरुसेवा करनेमें चतुर तुझे निर्दयी अग्निमें कैसे जला दिया ? ॥५३॥ तुझ सरीखा विनयवान् पवित्र ब्रह्मचारी चतुर शास्त्रोंके पार जानेवाले कुलीन यज्ञ बटुकको अब कहां देखूं ? ॥५४॥ हाय ! मेरी आज्ञामें रहनेवाली गृहकार्यमें तत्पर ऐसी तुझ पतिव्रता सुकुमारीको अग्निने कैसे जला दिया ? ॥५५॥

हे कान्ते ! तुझ सरीखी गुणशील कलाकी आधारभूत बहुत लज्जावती पतिव्रता स्त्री कभी नहीं होगी ॥५६॥ हे कृशोदरि ! हे चन्द्रानने ! मेरे वाक्यानुसार रहनेवाली जो तू ऐसी विपत्तिको प्राप्त हुई, सो इस पापसे मेरी शुद्धि कैसे होगी ? ॥५७॥ हे तन्वि ! पावोंसे कमलोंका, जघाओंसे कामके बाण रखनेकी भातड़ीको, पींडियोंसे केलेके खम्भको, जघनकी शोभासे रथांग कहिये रथके पहिये अथवा चक्रवाकको,— ॥५८॥ नाभिचिह्नसे जलके भ्रमणको, उदरसे वज्रकी शोभाको, कुचोंसे सुवर्ण कुम्भोंको, कण्ठसे कमल-नालकी शोभाको,— ॥५९॥ मुखसे चन्द्रमाके बिम्बको, नेत्रोंसे मृगीके नेत्रोंको, ललाटसे अष्टमीके चन्द्रमाको, केशोंसे चमरीकी पूंछको, ॥६०॥

वचनोंसे कोकिलाको; और क्षमासे पृथ्वीको जीतनेवाली ऐसी तुझको स्मरण करते हुये हे कान्ते ! मुझे कहां सुख हो सकता है ? ॥६१॥

हे कान्ते ! तेरे साथ दर्शन स्पर्शन एवम् मधुर भाषण करते देख यमराजने सबको दूर (नष्ट) कर दिया ॥ ६२ ॥ इस रमणीक कण्ठेष्ठ नगरमें देवांगनाके समान कण्ठ ओंट वगैरह अंगोंसे सुन्दर जो तू, सो मुझे भोगनेके लिये नहीं मिली ॥६३॥ हे मृगाक्षी ! चकवीके मरनेपर चकवेके समान अब तेरे बिना सुखकी आशा और निर्वृत्ति कहां ? ॥६४॥ इस प्रकार विलाप करते हुये उस ब्राह्मणको एक ब्रह्मचारीने कहा—हे मूढ ! प्रयोजन नष्ट होनेपर अब वृथा ही क्यों रोता है ? ॥६५॥

पवनके द्वारा उड़ाये हुये शुष्कपत्रोंके समान जीव भी कर्मोंके प्रेरेहुये मिलते बिछुड़ते रहते हैं ॥६६॥ जैसे बिछुरे हुये परमाणुओंका सम्बन्ध कभी नहीं होता उसी तरह बिछुरे हुये जीवोंका पुनः संयोग होना दुर्लभ है ॥६७॥ रस (पीव), रुधिर (खून), मांस, मेद, हाड, मज्जा, धातु वगैहरका पुंज पतले चमड़ेसे ढके हुये स्त्रीके शरीरमें मनोहर वस्तु कौनसी है ? ॥६८॥ यदि दैवयोगसे स्त्रीके शरीरकी बाह्य रचना तो भीतर हो जाती और भीतरकी रचना बाहर हो जाती तो, इससे आलिंगन करना तो दूर ही रहो किन्तु कोई देखता तक नहीं ॥६९॥ हे मूढ ! रक्त झरनेका द्वार दुर्गन्धमय, जिसका नाम लेते भी घिन आवे ऐसे विष्टागृहके समान निन्द्य स्त्रीका जघन किसप्रकार उत्तमपुरुषोंकर स्पर्शने योग्य है ? ॥७०॥

खेद है कि—लाल खँकार, कफ, दन्तमल और कीटोंका घर ऐसे स्त्रीके मुखको कवियोंके द्वारा चन्द्रमाकी उपमा कैसे दी जाती है ? ॥७१॥ फोड़े (व्रण) के सदृश मांसके पिंड ऐसे जो स्त्रीके कुच हैं, उनको तीक्ष्ण—बुद्धि पंडितजन सुवर्णके कलशोंकी उपमा कैसे देते हैं ॥७२॥ समस्त अशुचि पदार्थोंकी खानि विचित्र छिद्रोंके

स्त्री पुरुषोंका संग बिल्लीके दो बच्चोंके समान होता है ॥७३॥ यह कामिनी रूपी नदी रागरूपी कल्लोल सैकड़ोंसे नररूपी वृक्षोंको गिराकर लेजा २ कर संसाररूपी समुद्रमें पटकती है ॥७४॥ यह स्त्री नीच पुरुषोंको मोहित करके नरकमें डाल देती है और उनके साथ आप (स्वयं) नहीं जाती। ऐसी स्त्रीको पंडितजन कैसे सेवन करते हैं ॥७५॥

ये भोगे हुये दुष्ट भोग हैं, वे काष्ठको अग्निकी सदृश हृदयको जलाया करते हैं। इसलिए इनके समान अन्य शत्रु कहां है ? ॥७६॥ नष्ट कर दिया है समस्त विवेक जिसने ऐसी मदिराके समान स्त्रीसे मोहित हुआ जीव, अपने हित अहितको नहीं जानता सो उन्मत्त ही है ॥७७॥ यह स्त्री है, यह पुत्र है, यह माता है और यह धन है, ऐसी बुद्धि कर्मके वशीभूत मूढोंके ही होती है ।७८॥ जिस संसारमें जन्मसे लेकर पालनपोषण करते२ मनुष्यका देह ही नष्ट हो जाता है, उस संसारमें स्त्री पुत्र धनादिकमें निर्वाह कैसा ? ॥७९॥ इस प्रकार ब्रह्मचारीके उपदेशसे वह भूतमति मूढ शोक-शान्ति कर लेनेकी जगह उलटा क्रोधित होकर निम्नलिखित प्रकारसे कहने लगा। सो उचित ही है कि—'मूढ चित्तवालोंको विद्वानोंके द्वारा दिया हुआ उपदेश वृथा जाता है' ॥८०॥

हे ब्रह्मचारी ! यदि स्त्री ऐसी अत्यन्त निन्द्य होती तो समस्त मार्गोंमें विचक्षण चित्तवाले हर ब्रह्मा विष्णु इन्द्रादिक स्त्रीको हृदयका हार क्यों बनाते ! ।८१॥ हे ब्रह्मचारी ! जड़सदृश (अचेतन) अशोकादि वृक्ष भी जिस स्त्रीको (लतादिकके आलिंगनको) नहीं छोड़ते तो समस्त प्रकारके सुख देनेमें चतुर ऐसी स्त्रियोंको ये पुरुष किस प्रकार छोड़ सकते हैं ? इस लोकमें इन स्त्रियोंके सिवाय इन्द्रियोंके

समस्त प्रकारके सुख देनेवाली अन्य कोई भी वस्तु नहीं है ॥८३॥ भो ब्रह्मचारिन् ! यदि स्त्रियोंके सेवनसे पुरुष पागल हो जाते हैं तो क्या इस जगतमें युवती संगसे रत हुआ पुरुष कोई भी विचारवान् नहीं है ? अर्थात् तुम्हारे कहनेसे तो स्त्रीवाले पुरुष सब मूर्ख ही हैं, सो ऐसा कदापि नहीं है ॥८४॥ अपने अपने मनको प्रिय कोई भी कुछ कहो । जगतमें सबकी रुचि भिन्न भिन्न है । सो अनिवार्य है । परन्तु मेरा तो मत संशयरहित यही है कि संसारमें स्त्रीके समान सुखकारी वस्तु अन्य कोई भी नहीं है ॥८५॥

इस प्रकार कहकर वह मूढ ब्राह्मण अपने आप ही दो तुम्बी लेकर एकमें प्रियतमाके हाड (फूल) और दूसरीमें बटुकके हाड भरकर गंगाजीमें डालनेके लिये बडे वेगके साथ चल पड़ा ॥८६॥ रास्तेमें जाते हुये किसी नगरमें उसका वह नीच शिष्य यज्ञ नामा बटुक मिल गया । सो गुरुको देखते ही उसका समस्त शरीर कांपने लगा । लाचार गुरुके पांवोंमें गिरकर वह बटुक "हे विभो ! मेरा अपराध क्षमा करो" इस प्रकार प्रार्थना करने लगा ॥८७॥ तब ब्राह्मणने पूछा—"तू कौन है ?" तब अतिशय विनीत भावसे बटुकने कहा—हे विभो ! आपके चरणकमलोंके सेवनसे ही है जीवन जिसका ऐसा, मैं आपका यज्ञ नामा बटुक हूं ॥८८॥ इस प्रकार सुनकर वह मूढधी ब्राह्मण कहने लगा—अरे ! वह मेरा चतुर बटुक कहां ? वह तो जल गया । तू तो कोई दूसरा ही ठग है । जो मूर्ख तेरी ठगाईको नहीं समझे, उसको जाकर ठग । यहां तेरा दाव नहीं चल सकता ॥८९॥ इस प्रकार कहकर वह किसी अन्य नगर पहुंचा तो वहां पर दैवयोगसे उसकी प्रियतमा दुष्टा यज्ञा अचानक ही मिल गई । वह भी भयसे थर थर कांपती हुई उस

ब्राह्मणके चरणकमलोंमें मस्तक रखकर इसप्रकार कहती हुई ॥९०॥

हे प्रिय ! तेरा धन सबका सब मौजूद है। हे गुणनिधान ! इस अपराधको पहले (क्षमा करें) क्योंकि—'जिसका चित्त अपने ही पाप कार्योंसे कम्पायमान है, उस पर शुभमति पुरुष कदापि कोप नहीं करते' ॥९१॥ इस प्रकार वचन सुनकर उस मूढने यज्ञासे पूछा—तू कौन है ? सो कह। तब यज्ञाने कहा—मैं आपकी यज्ञा नामा ब्राह्मणी हूं। ब्राह्मणने कहा—वह प्रियतमा यज्ञा तो इस तूंबडीमें है; फिर बाहर तू कैसे आगई ? ॥९२॥ इस नगरमें यदि तुम मुझे भोजनपान नहीं करने दो तो, लो मैं दूसरे नगरमें जाता हूं। ऐसा कहकर नष्ट हो गई है समस्त विचारोंमें बुद्धि जिसकी ऐसा वह ब्राह्मण गुस्से होकर उसी वक्त दूसरे नगरकी तरफ चल दिया ॥९३॥ जिस मूढचित्तको प्रगटतया पदार्थोंमें निश्चयपना मालूम नहीं होता, ऐसे निर्विचार पुरुषको, मूढोंको विशेष प्रकारसे मर्दन करनेवाले यमराजके सिवाय और कौन समझा सकता है ? ॥९४॥ जो ज्ञान-रहित मूढ पुरुष हैं, वे संसारके भयको मथन (नष्ट) करनेवाले, स्थिर शिवसुखको देनेवाले शुद्धमतिका है विस्तार जिसमें ऐसे, अमितगतिवचनं कहिये सम्यग्ज्ञानी पुरुषोंके निर्मल वचनको हृदयमें नहीं धरते। इस कारण वे सुधोमन अपने हृदयमें ही रखते हैं ॥९५॥

इतिश्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें छठा परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

सातवा परिच्छेद

अथानन्तर मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मण ! उपर्युक्त प्रकारसे विवेकरहित मूढ पुरुषकी कथा तो तुमको कही। अब अपने ही अभिप्रायमें आलीढ (दृढ़) ऐसे व्युद्ग्राही पुरुषकी कथा कहता हू सो सुनो ॥१॥

४—व्युद्ग्राही मूढ पुरुषकी कथा

एक समय नंदुरद्वारी नामकी नगरीमें दुर्द्धर नामका एक राजा था। उसके जन्मका अन्धा जात्यन्ध नामका एक पुत्र हुआ ॥२॥ सो बड़ा होने पर वह प्रतिदिन याचकोंको अपने हार, कंकण, केयूर कुंडलादि आभूषण दान कर दिया करता था ॥३॥ इस प्रकार कुमारके अलौकिक दानको देखकर राजाके मन्त्रीने राजासे कहा—हे प्रभो ! कुमारसाहबने तो समस्त खजाना दान देकर खाली कर दिया ॥४॥ तब राजाने कहा—हे सत्पुरुष ! यदि इसको आभूषण नहीं दिये जायगे तो यह सर्वथा भोजनका त्याग कर देगा। तब मैं क्या करूँ ॥५॥

मन्त्रीने कहा—"मैं इसका कुछ भी उपाय करूगा" राजाने कहा—अवश्य कोई उपाय कर ! मैं मनाही नहीं करता ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् मन्त्रीने लोहेके आभरण पहिनाकर याचकोंको मारनेके लिये एक लोहेका दण्ड लाकर राजकुमारको दिया और कहा कि,— ॥७॥ हे तात ! ये गहने पंडितोंको पूजने लायक कुलक्रमसे आये हुए हैं, सो इनको पहरलो और ये गहने किसीको भी नहीं देना। यदि दोगे तो तुम्हारा राज्य नष्ट हो जायगा ॥८॥ जो कोई इनको लोहमयी बतावे, उसीके माथेमें इस दंडेकी मार देना।

किसी प्रकारकी दया व करुणा कुछ भी नहीं करना ॥९॥ इस प्रकार मन्त्रीके कहे हुये वचनोंको कुमारने भलेप्रकार स्वीकार किया। 'इस जगतमें ऐसा कौन है, जो चतुर पुरुषोंके कहे हुये वचनोंको नहीं मानते' ॥१०॥

तत्पश्चात् वह राजकुमार रोमांचित हो प्रसन्नचित्तसे लोहेके दण्डको ग्रहण कर बैठ गया ॥११॥ उसके पास आकर जो कोई कहता कि ये तो लोहमयी गहने हैं, तब वह उसी वक्त उसके माथेमें लोहदण्डकी मार देता सो ठीक ही है 'जिसकी व्युद्ग्राही मति हो गई, वह नीच अच्छा कार्य कहांसे करेगा' ॥१२॥ 'जो पुरुष अपने इष्टजनके कहे हुये समस्त वचनोंको अच्छा और अन्यके कहे हुये समस्त वचनोंको बुरा मानता है, उस अधमको कौन समझावे ?' ॥१३॥ जो पुरुष जात्यन्धके समान परके वचनोंको नहीं विचारता, उसीको पडितोंने अपने ही आग्रहमें आसक्त बुद्धि व्युद्ग्राही कहा है ॥१४॥ मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो! कदाचित् सुमेरु पर्वत तो हाथकी चोटसे तोड़ा जा सकता है, परन्तु व्युद्ग्राही पुरुष वचन द्वारा किसी प्रकार भी नहीं समझाया जा सकता ॥१५॥

जिस प्रकार जात्यन्धने सुवर्णमयी आभूषणोंको छोड़ लोहेके आभूषण पहरे, उसी प्रकार अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे पुरुष उत्तम वस्तुको छोड़कर निकृष्टको ग्रहण करते हैं ॥१६॥ जो मूढ सदाकाल असुन्दरको सुन्दर मानता है, उसके आगे बुद्धिमान पुरुष सुभाषित (सुन्दर वचन) कदापि नहीं कहते ॥१७॥ यह समस्त लोक कामार्थी पुरुषोंसे ठगाया जाता है इस कारण शुद्धबुद्धि सत्पुरुषोंको यह बात सदैव विचारते रहना चाहिये ॥१८॥ मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो! मैंने व्युद्ग्राही (हठग्राही) का वर्णन तो किया।

अब पित्तदूषित मूढ़की कथा कहता हूँ, सो सावधानचित्त होकर सुनो—॥१९॥

५–पित्तदूषित मूढ़ पुरुषकी कथा।

कोई एक पुरुष प्रज्वलित अग्निके समान तीव्र पित्तज्वरके वेगसे विह्वल शरीर हो गया ॥२०॥ उसको अमृतके समान पवित्र, पुष्टि-तुष्टिका देनेवाला मिश्री मिला हुवा दुग्ध दिया गया सो—॥२१॥ वह अधम उसको कडुवे नीमके समान मानता हुवा सो ठीक ही है। क्योंकि 'प्रकाशमान सूर्यके प्रकाशको उल्लू तो अन्धकार ही मानता है' ॥२२॥ इसी प्रकार मिथ्याज्ञानरूपी महा तीव्र ज्वरसे व्याकुल है आत्मा जिसकी ऐसा, जो कोई मनुष्य युक्त अयुक्तको न विचारने-वाला हो, उसको शान्तिदायक जन्म, मृत्यु, जराके नाश करनेवाले अत्यन्त दुर्लभ अमृतके समान वस्तुका स्वरूप कहा जावे तो वह उस वस्तु स्वरूपको जन्म–मृत्युजराके करनेवाले, भ्रान्तिकारक, चेतनाको नष्ट करनेवाले, सुलभ कालकूटके समान मानता है ॥२३–४२–२५॥

इस कारण जो पुरुष सदैव प्रशस्तको भी अप्रशस्त देखता है, वही अवज्ञासे व्याकुल चित्त पित्त दूषित मूढ़ पुरुष कहा जाता है ॥२६। इसी प्रकार जो ज्ञान रहित पुरुष न्यायको अन्याय माने तो तत्त्व विचार करनेवाले पण्डितजनोंको चाहिये कि उसको कुछ भी उपदेश नहीं करे ॥२७॥ इस प्रकार मैंने विपरीत आशयवाले पित्त दूषित मूढ़ पुरुषको प्रगट किया। अब आपको आम्र मूढ पुरुषकी कथा कहता हूँ सो सावधानता पूर्वक सुनें ॥२८॥

६–आम्रमूढ़ पुरुषकी कथा।

स्वर्गमें देवोंकर पूजित सुन्दर अप्सराओंसे रमणीय मनोहर

मंदिरवाली अमरावतीनगरीके समान, अँगदेशमें चम्पावती नामा एक नगरी है ॥२९॥ उस नगरीमें स्वर्गमें देवोंकर सेवनीय इन्द्रके समान, नम्रीभूत मुकुटवाले राजाओंकर सेवनीय 'नृपशेखर' नामका राजा राज्य करता था ॥३०॥

उस राजाके पास उसके प्रिय मित्र वंगदेशीय राजाने समस्त रोग और जराको नष्ट करनेवाला, साधारण मनुष्योंको अनेक प्रकारकी सेवा करने योग्य, रत्नत्रयके समान पूजनीय, अन्य लोगोंको दुर्लभ, हृदयग्राही, मनोहर स्त्रीके यौवनके समान सुखकारी, सुन्दर और सुखद रूप, रस, गन्ध और स्पर्श द्वारा आनंदित किया है मनुष्योंका हृदय जिसने, तथा अपनी सौरभ द्वारा आकर्षण किया है भ्रमरोंका समूह जिसने ऐसा एक आम्रफल भेजा ॥३१-३२-३३॥ उसको देखते ही वह राजा अतिशय हर्षित हुवा सो ठीक ही है। 'रमणीय पदार्थको देखनेसे किसको हर्ष नहीं होता !' ॥३४॥

समस्त रोगोंके नाश करनेवाले इस एक ही आमका समस्त लोगोंमें विभाग नहीं हो सकता। इस कारण जिससे यह बहुत हो जाय ऐसा उपाय करूँगा, इस प्रकारका विचार करके राजाने वह आम्र फल एक चतुर मालीको देकर कहा—हे भद्र ! जिसप्रकार यह आम्र अनेक फलोंका देनेवाला होजाय, ऐसा उपाय कर और किसी उत्तम वनमें लेजाकर इसको बो दे ॥३५-३६-३७॥ वृक्षारोपण विद्यामें प्रवीण उस मालीने नमस्कार करके "ऐसा ही करूँगा" इस प्रकार कहकर उस आम्रफलको बागमें बोकर (लगाकर) बड़ा करने लगा ॥३८॥ सो वह वृक्ष सज्जन पुरुषके समान शीघ्र ही सघन सुन्दर छाया और बड़े २ असंख्य फलोंसे सबको आल्हादित करनेवाला बहुत बड़ा हो गया ॥३९॥ दैवयोगसे किसी पक्षीके

द्वारा ले जाते हुये सर्पकी वसा (विषरूपचर्बी) उसी आमके एक फल पर गिर पड़ी ॥४०॥

उस निन्दनीय वसाके संयोगसे वह आम्र फल पककर बुढ़ापेके यौवनकी समान नेत्रोंको आनन्दकारी मनोहर हो गया ॥४१॥ अतिशय बुरे अन्यायके करनेसे पूजनीय बड़े कुलके अध:पतनकी समान वह आम्र फल उस विषके आतापसे तापित होकर शीघ्र ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥४२॥ तुष्टचित्त वनपालने समस्त इन्द्रियोंको हर्षित करनेवाले उस फलको लाकर क्षितिपाल (राजा) को भेट किया ॥४३॥ क्षितिपालने विकलतापूर्वक उस प्राणहारी विषकर पके हुये मनोहर फलको देखकर अपने युवराज पुत्रको दिया। राजपुत्रने 'प्रसादं' ऐसा कहकर ग्रहण किया और घार कालकूट विषकी समान उसी वक्त खा लिया ॥४४–४५॥

सो वह राजपुत्र उस फलके खाते ही प्राणरहित हो गया। सो उचित ही है—'दुष्टसेवा की हुयी किसके जीवनको नहीं रहती' ॥४६॥ राजाने अपने पुत्रको मरा देख क्रोधाग्निसे संतप्त होकर उद्यानकी शोभा करनेवाले उस आम्र वृक्षको उसी वक्त कटवा डाला ॥४७॥ खांसी, शोष, (यक्ष्मारोग) जरा कुष्ट, वमन, शूल, (दर्द) यक्ष, स्वास आदि दु:साध्य रोगोंसे पीड़ित जीवनसे विरक्त पुरुषोंने सुना कि—राजाने विषमयी आम्र वृक्षको कटवा दिया है, तो हम सबने मरनेकी इच्छासे उसके बचे फल ला ला कर खाने शुरू किये, परन्तु उनके खाते ही वे समस्त रोगी शीघ्र ही रोगरहित होकर कामदेवकी समान सुन्दर हो गये ॥४८–४९–५०॥

राजाने यह वार्ता सुनी तो विस्मित होकर उन रोगियोंको बुलाकर प्रत्यक्ष देखकर परम अनिवार्य पश्चात्ताप किया ॥५१॥

हाय ! विचित्र पत्रोंकर पृथ्वीमें मण्डलका भूषण समस्त प्रकार वांछित करा देनेवाला, चक्रवर्तीको समान है उदय जिसका ऐसा ऊँचा आम्र वृक्ष विचाररहित क्रोधसे अन्धचित्त होकर मैंने जड़सहित क्यों कटवा दिया ? ॥५२–५३॥ हाय ! मुझ दुर्बुद्धिने वह फल बिना विचारे ही युवराजको क्यों दिया ? यदि दिया तो पृथ्वीपर पड़ा हुआ क्यों दिया ? आम तो बिचारा रोगोंका नाशक ही था ॥५४॥ इसप्रकार दुर्निवार वज्राग्निकी समान पश्चात्तापसे सन्तप्त होकर वह राजा मन ही मनमें निरन्तर जलने लगा ॥५५॥

जो पुरुष पूर्वापर परीक्षा (विचार) न करके कार्योंको करता है, वह आम्रनाशक राजाकी समान महान पश्चात्तापको प्राप्त होता है ॥५६॥ जो कोई दुराशय बिना विचारे ही किसी कार्यको करता है, उसके समस्त वांछित कार्य शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥५७॥ क्रोध कर व्यापित है चित्त जिसका ऐसे निर्विचारी पुरुषको दोनों भवमें समस्त प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥५८॥ इसप्रकार निर्विवेकीपनेके दोषोंको जानकर हृदयमें उभयलोक सम्बन्धी सुख देनेवाला विवेक रखना चाहिये ॥५९॥ जो विद्वान अपना हित चाहते हैं, उनको चाहिए कि द्रव्य क्षेत्र काल भाव युक्त अयुक्तमें तत्पर होकर सर्वदा विचारके काम किया करें ॥६०॥

मनुष्य और पशुमें इतना ही भेद है कि मनुष्यको तो हिता-हितका विचार होता है, परन्तु पशुको नहीं होता। इस कारण जो पुरुष विचार रहित है, वे पशुके तुल्य हैं ॥६१॥ इस प्रकार पूर्वापर विचार रहित आम्रघाती मूर्खको मैंने सूचित किया। अब क्षीरमूर्खकी कथा कहता हूँ, सो सावधान होकर सुनो ॥६२॥

७-क्षीरकदंबकी कथा ।

प्रसिद्ध लोहार नामके देशमें सामुद्रिक व्यापारका ज्ञाता, जलयात्रा करनेमें चतुर सागरदत्त नामका एक वणिक था ॥६३॥ सो वह वणिक एक समय जहाज पर चढ़कर नक्र (नाके) मगर ग्राहादिसे भरे हुये समुद्रसे पार होकर व्यापारार्थ चोल द्वीपमें पहुँचा ॥६४॥ उस वणिकने घरसे चलते समय जिनेश्वरकी वाणीके समान सुख देनेमें चतुर, दुग्ध देती हुई एक गौ भी अपने साथ ले ली थी ॥६५॥

सो उस व्यवहार-चतुर वणिकने चोलद्वीपमें पहुचते ही कुछ भेंट लेकर द्वीपके पति तोमर बादशाहके दर्शन किये ॥६६॥ दूसरे दिन उस वणिकने शरीरमें कांति विस्तारनेवाली अमृतके समान अतिशय स्वादिष्ट (पायस) खीर ले जाकर बादशाहको भेंट की ॥६७ अन्य एक दिन उस वणिकने अमृतके समान दुर्लभ शालिधान्यके उत्तम चावल (भात) बनाकर सुन्दर दही सहित भेट करके दर्शन किये। क्योंकि उस देशमें गौ भैसे नहीं होती थीं और न गोरस ही होता था। इसलिये पूर्वोक्त प्रकार अपूर्व उज्वल मिष्ट आहारको भक्षण कर प्रसन्न चित्त हो, तोमरबादशाहने उस वणिकको पूछा-॥६९॥ हे वणिक्पते ! तुमको ऐसे दिव्य भोजन कहांसे प्राप्त होते हैं ? तब वणिकने कहा-हुजूर ! मेरे पास एक कुलदेवी है, सो वह ऐसे आहार देती है ॥७०॥

तत्पश्चात् म्लेच्छनाथ तोमरबादशाहने वणिक्पुत्रको कहा-हे भद्र ! वह तुम्हारी कुलदेवता हमको दो ॥७१॥ यह बात सुनकर वणिकने कहा-हे द्वीपपते ! यदि आप मुझे मुँह मांगा धन दें तो नी कुलदेवता आपको दे सकता हूं ॥७२॥ तब द्वीपपति

तोमरबादशाहने कहा—हे भद्र ! बेशक मनचाहा द्रव्य ले जाओ, और यह कुलदेवता हमको दे जाओ ॥७३॥ तत्पश्चात् वणिकने उस बादशाहसे मुँह मांगे रुपये लेकर उस गौको दे दिया और जहाजके द्वारा समुद्र पार हो अपने देश चला आया ॥७४॥ दूसरे दिन प्रात:काल ही तोमरबादशाहने उस गौके सन्मुख एक पात्र (बर्तन) रखकर कहा—हे कुलदेवते ! जो दिव्य आहार उस वणिकको देती थी, वह मुझे भी दे परन्तु—॥ ७५ ॥

मूर्ख कामीके पास चतुर विलासिनी नायिकाके समान वह गो चुपचाप ही खड़ी रही ॥७६॥ जब उस गौको चुपचाप खड़ी देखा तो बादशाहने कहा—हे कुलदेवते ! प्रसन्न होकर मुझे दिव्य भोजन दे, भक्तकी इच्छा पूरी कर॥७६। फिर भी उसको चुपचाप खड़ी देखकर बादशाहने विचारा—आज तो यह अपने सेठको स्मरण करती है सो कल प्रात:काल ही देगी। अच्छा, आज तो हे देवी ! तू निराकुलतासे स्वस्थ हो तिष्ठ ॥७८॥ दूसरे दिन भी उस गौके सामने एक बड़ासा वर्तन रखकर बादशाहने कहा—हे देवी ! आज तो तू स्वस्थ होगई, अब मुझे इच्छित भोजन दे ॥७९॥ परन्तु गौ तो फिर भी चुप खड़ी रही। वह विचारी क्या तो दे और क्या बोले ? इस प्रकार उसको चुप देखकर उस बादशाहने क्रोधित होकर नोकरोंके द्वारा उस गौको अपने द्वीपसे बाहर निकलवा दिया ॥८०॥

देखो ! इस बादशाहकी कैसी मूर्खता है जो इतनी बात भी नहीं समझता कि याचनामात्र करनेसे किसी गौने कभी किसीको दुग्ध दिया है ? ॥८१॥ दूध देती हुई उस श्रेष्ठ गौको म्लेच्छ बादशाहने वृथा ही निकाल दी सो नीति ही है कि, 'मूर्खके हाथमें गया हुवा महारत्न भी वृथा जाता है' ॥८२॥ यद्यपि पाषाणमें सुवर्ण

मौजूद है परन्तु उसको पाषाणसे निकालनेकी क्रिया जाने बिना उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार गौ भी विधिपूर्वक लिये बिना अपने पास रहता हुवा दूध कदापि नहीं दे सकती है ॥८३॥ यह कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा, इसमे हानि कैसी होगी, इसकी वृद्धि किस प्रकार होगी ? इस प्रकार जो पुरुष प्रति समय नहीं विचारता, वह दोनों लोकमें दुःख ही भोगता है ॥८४॥ जो नीच पुरुष गर्वित आशय होकर अपने मनमें सारभूत विचारको स्थान नहीं देता, वह उक्त बादशाहके समान मानमर्दित हो अपने कार्यको नष्ट करता है और वह बुद्धिमानोंके द्वारा त्यागने योग्य है ॥८५॥

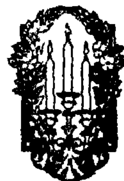
उस नष्टबुद्धि म्लेच्छ राजाने उस गौको अवध्य पीड़ा दी सो ठक ही है। मूर्खकी संगति करनेवाला प्रगटतया अनिवार्य समस्त दोषोंको प्राप्त होता है ॥८६॥ इस संसारमें मूर्खताके समान तो कोई अंधकार नहीं है और ज्ञानके समान कोई प्रकाश नहीं है, इसी प्रकार जन्म मरणके समान तो कोई शत्रु नहीं और मोक्षके समान कोई मित्र (बन्धु) नहीं है ॥८७॥ कदाचित् सूर्यके रहते अन्धकार हो जाय, अथवा सूर्यमें शीतलता और चन्द्रमामे उष्णता हो जाय, परन्तु मूर्खमें कदापि विचारशक्ति नहीं होती ॥८८॥ सिंह दि हिंस्रजन्तुओंसे परिपूर्ण वनमें फिरना, सर्पराजकी सेवा करना, तथा वज्राग्निमें जल जाना श्रेष्ठ है, परन्तु मूर्खजन तो कभी क्षणभर भी सेवा करने योग्य नहीं है ॥८९॥ जिस प्रकार अन्धेके आगे नृत्य करना, बधिर (बहरे)के आगे संगीत करना, कव्वेका शौच करना, मुरदेको भोजन देना, नपुंसकको आंका होना वृथा है, उसी प्रकार मूर्खको दिया हुवा सुखकारी रत्न भी वृथा जाता है ॥९०॥

यह गौ मुझे दूध किस प्रकार देगी, इस प्रकार जिस म्लेच्छ

बादशाहने न पूछ कर बहुतसा धन देके गौको ले लिया, सो उस म्लेच्छाधिपतिके समान दूसरा कौन मूर्ख है ? ॥९१॥ जो पुरुष उस वस्तुके ज्ञाताको तो पूछे नहीं, और किसी वस्तुको धन देकर मोल लेवे तो वह मूढ भयावने वनमें मूल्य ग्रहणकी इच्छासे चोरोंको रत्न बेचता है ॥९२॥ जो विनीत सत्पुरुष उभय लोकमें सुखकी इच्छा रखते हैं, उनको चाहिये कि मानको छोड़ अज्ञात कार्यको पूछकर विधिसे साधन करे ॥९३॥ जो दुर्बुद्धि राग द्वेष मोह काम क्रोध मान लोभ और मूढ़ताके वशीभूत हो हिताहितका विचार कर नहीं करते, वे स्वयं अपने मस्तक पर वज्रपात करते हैं ॥९४॥ जो दुर्विदग्ध (मिथ्याज्ञानसे ही अपनेको पंडित समझनेवाला) पुरुष दुर्भेद्य गर्वरूपी पहाड़के शिखरपर चढ़कर किसी दूसरेको नहीं पूछता, वह द्वीपाधिपति तोमर बादशाहके समान हस्तगत हुये पयरूपी पवित्र रत्न (उत्तम पदार्थ) को नष्ट करता है ॥९५॥

जो विनयवान पुरुष सदैव पूछकर अपने मनमें भले प्रकार विचार कर, चिंतवन कर युक्तायुक्त कार्योंको करते हैं वे विस्तृत यशवाले मनुष्य, मनुष्य और देवगतिके सुखपनेको पाकर केवल ज्ञानके धारक हो आपदारहित निर्वाणपदको प्राप्त होते हैं ॥९६॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें सातवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ७ ॥



आठवा परिच्छेद

अथानन्तर प्राप्त हुये क्षीरको अज्ञानी म्लेच्छ राजाने जिस प्रकार नष्ट किया सो तो तुमसे कहा—अब अगुरु (चन्दनको) प्राप्त होकर नष्ट किया उसकी कथा कही जाती है ॥ १ ॥

८—अगुरुमूढ़की कथा ।

मगध देशमें वैरीरूपी मदोन्मत्त हस्तीके कुम्भको भेदन करनेके लिये केशरी (सिंह) के समान 'गजरथ' नामका एक राजा था ॥ २ ॥ वह राजा अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करनेवाला था, सो एक समय क्रीड़ाके लिये वनमें गया तो सेनाको छोड़कर मन्त्री सहित बहुत दूर निकल गया ॥ ३ ॥ वहां वनमें पहिलेसे आगे खड़े हुये एक नौकरको देखकर राजाने मन्त्रीसे पूछा—यह कौन है और किसका नौकर व किसका पुत्र है ? सो मुझे कहो ॥ ४ ॥ तब मन्त्रीने कहा—हे राजन् ! यह आपके हरि नामक महत्तरका पुत्र हालिक नामका आपका ताबेदार सेवक है ॥ ५ ॥

श्रीमान्‌के चरणाम्बुजकी नित्य क्लेशकारक सेवा करतेर आज इसको बारह वर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ यह बात सुनकर राजाने मन्त्रीसे कहा—हे भद्र ! तूने आज तक इसके क्लेशका कारण मुझे नहीं कहा, सो बहुत बुरा किया ॥ ७ ॥ पयादोंको क्लेश है, वा नहीं है कौन अच्छी सेवा करता है, कौन नहीं करता इत्यादि समस्त बाते मन्त्रीको जानकर राजाके प्रति निवेदन करना चाहिये ॥ ८ ॥ स्वाध्याय करते रहना साधुपुरुषोंका कार्य है, गृहकृत्य करना स्त्रियोंका और राज्यकार्य करना मंत्रियोंका काम है । सो इन तीनों बातोंको निरन्तर विचारते रहना चाहिये ॥ ९ ॥ तत्पश्चात् राजाने प्रसन्नचित्त होकर हालीसे

कहा कि शंकराट नामका उत्तम मठ है सो तुमको दिया उसे स्वीकार करो ॥१०॥

हे भद्र ! यह मठ कल्पवृक्षके समान मनोवांछित फलके देनेवाले अन्य पांचसौ गांवोंकर सहित बहुत अच्छा है, सो तुम ग्रहण करो ॥११॥ यह बचन सुनकर हालीने राजासे कहा—हे देव ! मैं तो अकेला हूं, बहुतसे गांव लेकर क्या करूँगा ? ॥१२॥ ये तो उन्हींके ग्रहण करनेयोग्य हैं कि जिनके हजारों पयादे और प्रबंध करनेवाले सेवक हों ॥१३॥ तब राजाने कहा—हे भद्र ! मनोहर गांवोंके विद्यमान रहते अपने आप प्रतिपालना करनेवाले सेवक हो जायगे । क्योंकि—॥१४॥ ग्रामोंसे धनकी प्राप्ति होती है, धनसे नौकर चाकरोंके समूह हो जाते हैं और नौकर चाकर राजाकी सेवा करते है, द्रव्यसे उत्तम और कोई वस्तु नहीं है ॥१५॥

द्रव्यसे ही कुलीन पंडित मान्य शूर न्यायविशारद विदग्ध (चतुर रसज्ञ) धर्मात्मा और प्रिय होता है ॥१६॥ योगी वाग्मी दक्ष वृद्ध (दाना) शास्त्रपारायण ये सब चाटुकारक (खुशामदी) होकर धनाढ्योंकी सेवा करते हैं ॥१७॥ गल गये हैं हाथ पांव और नाक जिसके ऐसा कोढ़ी होय और धनवान् होय तो उसको नवयोवना स्त्री भी गाढालिंगन करके शयन करती है । १८॥ जिसके घरमें द्रव्य है, उसके सभीजने तावेदार प्रियकर और वशीभूत हो जाते हैं ॥१९॥ जिसके घरमें सम्पदा है, वह यदि मूर्ख हो तो भी उसकी बड़े बड़े पंडितजन प्रशंसा करते हैं, यदि वह भीरु (कायर) हो तो भी उसकी बड़े २ योद्धा सेवा करने लग जाते हैं, यदि वह पापी हो तो भी उसकी धर्मात्मा पुरुष स्तुति करते हैं ॥२०॥

अतः त कदाचित् वहां आवे, जिसकी बराबर और कोई नहीं

हुआ ऐसे चक्री नारायण बलभद्र वगैरह जो बड़े बड़े पुरुष हो गये, वे सब ग्रामोंके ही प्रसादसे गौरवको प्राप्त हुये हैं ॥२१॥ ये सब बातें सुननेके पश्चात् हालीने कहा—महाराज ! मुझे तो कोई ऐसा क्षेत्र (खेत) देवें कि जिसमें हमेशा खेती हो सके व जिसमें वृक्ष कूप (गड्ढे) वगैरह नहीं हों ॥२२॥ यह सुनकर राजाने विचार किया कि यह अपने हित अहितको नहीं समझता । सो ठीक ही है, गांवके 'गवारोंमें निर्मल बुद्धि कहांसे होय' ॥२३॥ तत्पश्चात् राजाने मंत्रीको आज्ञा करी कि, हे भद्र ! इसको अगुरु चन्दनका क्षेत्र दे दो, जिससे यह मरणपर्यन्त विस्तीर्ण काष्ठको बेचकर सुखसे रहै ॥२४॥ तब मन्त्रीने जाकर उस हालीको कल्पवृक्षोंकी समान मन-वांछित वस्तुके देनेवाले अगुरु वृक्षोंसे भरा हुवा एक क्षेत्र दिखाकर कहा—महाराजने तुझे यह खेत दिया है ॥२५॥

उस खेतको देखकर हालीने अपने मन ही मन विचार किया कि, राजा बड़ा कृपण है, जो वृक्षरहित खेत मांगने पर भो अनेक वृक्षोंसे भरा हुवा खेत दिया ॥२६॥ मैंने तो कुबेरके समान अन्न उत्पन्न करनेवाला अजनके समान श्यामवर्ण वृक्ष गड्ढे आदिके उपद्रव रहित विस्तीर्ण और छिन्न भिन्न अर्थात् जुता हुवा खेत मागा था सो राजाने औरही तरहका वृक्षादि उपद्रवोंसे भरा हुवा दे दिया ॥२७॥ खैर ! अब यही ले लेना चाहिये, क्योंकि यदि राजा यह भी नहीं देता तो मैं क्या करता ? इसको ही मैं ठीक कर लूँगा ॥२८॥ इसप्रकार विचार कर उस हालीने 'प्रसाद' कह कर वह क्षेत्र स्वीकार किया और अपने घर आ तीक्ष्ण कुठार लेकर उस कुबुद्धिने अगुरुके वृक्ष काटने शुरू कर दिये ॥२९॥ सो आकृष्ट (खिचे) हैं भ्रमरोंके समूह जिससे ऐसी सौरभसे दशों दिशाओंको आमोदित करनेवाले,

सज्जन पुरुषकी समान सेवा करने योग्य, ऊँचे २ सरस, सुखदायक, बड़े कष्टसे मिलनेवाले, द्रव्यके देनेवाले, वे अगुरु वृक्ष सबके सब काट कर उस हालीने जला दिये। सो ठीक ही है—'स्वेच्छाचारी निर्विवेकी गवार कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं करते' ॥३०-३१॥

इस प्रकार परिश्रमसे उन वृक्षोंको काट जलाकर शीघ्र ही अन्यायसे घरकी समान वह खेत बोने लायक हथेलीकी समान निर्मल करता हुवा और हर्षके साथ राजाको भी दिखाया और कहा—देखिये मैंने यह कैसा उमदा खेत बनाया है, सो ठीक ही है,—घमंडी नीचपुरुष अपनी मूर्खतासे ही प्रसन्न रहते हैं, ॥३२-३३॥ राजाने खेतको देखकर कहा—ऐसे खेतमें तूने क्या२ बोया है ? तब हालीने कहा कि हजूर ! मैंने महाफलके देने-वाले कोदों बोये हैं ॥३४॥ इसप्रकार उसकी मूर्खता देखकर राजाने कहा कि—अरे ! उन जलाये हुये वृक्षोंमेंसे कुछ रहा भी है कि नहीं ? ॥३५॥

तब उसने अगुरुचन्दनका एक हाथभरका टुकड़ा लाकर दिखाया, और कहा—हजूर ! उन वृक्षोंको जलाते समय यह हाथ-भरका एक टुकड़ा तो रह गया है ॥३६॥ तब राजाने कहा कि तू इस टुकडेको बाजारमें ले जाकर शीघ्र ही बेचकर आ, हालीने कहा—हजूर ! इतने काठका क्या मूल्य मिलेगा ? ॥३७॥ राजाने हँसकर उस दुर्बुद्धि हालीसे कहा कि बनियां जितना मूल्य दे, उतना ही ले लेना ॥३८॥ जब उस हालीने वह हाथभरका अगुरु चन्दन बाजारमें लेजाकर बेचा तो बनियेने उसको पांच दीनार दिये ॥३९॥ तब वह हाली इस बातको विचारकर विषादरुपी अग्निसे तापित हो पश्चात्ताप करने लगा। सो ठीक ही है, जो अज्ञानतासे कार्य करने-

चाके हैं,—'इनमें ऐसा कौन है कि जिसको पीछेसे पश्चात्ताप न हो ॥४०॥

जो इस जरासे टुकडेका इतना मूल्य मिल गया तो उन सब वृक्षोंका कितना मूल्य मिलता, उसकी तो गिनती ही नहीं ॥४१॥ राजाने तो मुझे निधानकी समान क्षेत्र दिया था, परन्तु मुझ अज्ञानी पापीने व्यर्थ ही नष्ट कर दिया ॥४२॥ यदि मैं उन वृक्षोंकी यत्नसे रक्षा करता तो मरणपर्यन्त सुखका साधनभूत द्रव्य हो जाता ॥४३॥ इसप्रकार वह हाली कामसे पीड़ित विरहीके समान अनिवार्य दुःखी हुवा ॥४४॥ जो अधम बडे यत्नसे प्राप्त किये द्रव्यको नष्ट कर देता है, वह हालीकी समान सदैव दुर्निवार पश्चात्ताप करता है ॥४५॥

जो नष्टबुद्धि वस्तुमें सारासार नहीं जानता, वह पाये हुवे दुष्प्राप्य रत्नको नष्ट कर देता है ॥४६॥ जो कुधी वस्तुके हेय उपादेयको नहीं विचारता, वह आककी जडके लिये सोनेके हलसे पृथिवीको कर्षण करता है ॥४७॥ हे ब्राह्मणो! तुम लगोंमें उस हालीकी समान सारासारका विचार न करनेवाला हो तो पूछनेपर भी मैं कहते हुये डरता हू ॥४८॥ अब अलभ्य अगुरुचन्दन वृक्षोंको नष्ट करनेवाले निर्विचार मूर्खकी कथा कहता हूं सो सुनो ॥ ४९॥

९—चन्दनत्यागी मूर्खकी कथा।

भोगभूमिकी समान सुखके आधारभूत मध्यदेशमें किसी समय शांतमन नामवाला मथुरा नगरीका राजा था ॥५०॥ सो एक समय वह राजा ग्रीष्म ऋतुके सूर्यसे हाथीकी समान दुर्निवार पित्तज्वरसे अतिशय पीड़ित और विह्वल हो गया ॥५१॥ सूर्यके आतापसे थोडे जलमें मछलीकी समान उस पित्तज्वरके तापसे वह राजा कोमल

सन्ताप्त तडफडाता था ॥५२॥ उस राजाका बड़े२ प्रामाणिक वैद्यों द्वारा उपचार होते भी वह दुःसाध्य संताप, इन्धनसे अग्निके समान उत्तरोत्तर बढ़ने लगा ॥५३॥ अष्टप्रकारकी चिकित्सा जानते हुये भी वे वैद्य दुर्जनकी सांत्वनामें सज्जनोंकी समान उस तापको शमन करनेमें समर्थ नहीं हुये ॥५४॥

जब मन्त्रीने देखा कि राजाके शरीरमें ताप बढ़ता ही जाता है, उसने मथुरा नगरमें चारों तरफ घोषणा की (ढिंढोरा पीटा) कि जो कोई राजाके शरीरका दाह नष्ट कर देगा, उसको मानप्रतिष्ठाके साथ १०० गांव दिये जायगे ॥५५–५६। इसके सिवाय खास राजाके पहिरनेका उत्कृष्ट कंठा, अत्यन्त कटिमेखला और एक पोषाकका जोडा भी दिया जायगा ॥५७॥ यह घोषणा सुनकर एक वणिक गोशीर्ष चन्दनकी लकड़ी लेनेके लिये घरसे बाहर हुवा, सो दैवयोगसे एक धोबीके हाथमें गोशीर्षचन्दनका मूठा देखा ॥५८॥ उस वणिकने चारों तरफ उड़ते हुये भ्रमरके समूहसे वास्तवमें गोशीर चन्दनका समझ धोबीसे पूछा—हे भद्र ! नीमकी लकड़ीका मूठा तू कहांसे लाया ? ॥५९॥ धोबीने कहा—मुझे नदीमें बहता हुआ मिला है। तब वणिकने कहा—इसके बदलेमें बहुतसा काष्ट लेकर यह हमको दे दो। ६०॥

उस निर्विवेकी धोबीने कहा—हे साधु पुरुष, ले लो, इसमें मेरी क्या हानि है ? इस प्रकार कह कर उस चन्दनके मूठेके बदलेमे बहुतसा काष्टसमूह लेकर वह मूठा दे दिया ॥६१॥ तब वह बुद्धि-विशाल वणिक शीघ्र ही घर आकर उसको घसकर ले गया और राजाके समस्त शरीरमें उसका लेपन कर दिया ॥६२॥ जिस प्रकार प्रियस्त्रीके संयोगसे वियोगी पुरुषके दुःखका नाश होता है, उसी

प्रकार उस चन्दनके लगाते ही राजाके समस्त शरीरका सन्ताप नष्ट हो गया ॥६३॥ तत्पश्चात् राजाने भी अपनी घोषणाके अनुसार सौ गांव और कण्ठाभरणादि देकर उस वणिककी बहुत कुछ प्रतिष्ठा की। सो ठीक ही है, महान् पुरुषोंका उपकार करना कल्पवृक्षके सदृश है ॥६४॥ इस प्रकार उस काष्ठके ही प्रभावसे वणिककी प्रतिष्ठाको सुनकर वह धोबी शोकसे तापित हो माथा कूट२ कर रोने लगा ॥६५॥

हाय! दुरात्मा बनियेने उस काष्ठको चन्दनका मूठा जानकर यमके समान किस प्रकार मुझे ठग लिया? नीमकी बहुतसी लकड़ियें देकर मेरा गोशीरचन्दनका मूठा कैसे ले लिया। सो ठीक ही है, असत्यभाषी बनियोंसे यमराज भी ठगाया जाता है ॥६६–६७॥ इस प्रकार महाशोक करके वह रजक निरन्तर दहने (जलने) लगा। सो ठीक ही है—'अज्ञानमें रहनेवालोंको सुख किस प्रकार हो' ॥६८॥ उस धोबाने यह विचार नहीं किया कि, नीमके एक काष्ठ-खण्डके बदलेमें यह बनिया बहुतसा काष्ठ क्यों देता है ॥६९॥ इस दुर्निवार अज्ञानरूपी महा अन्धकारको सूर्य चन्द्रमाकी किरणें भी नष्ट नहीं कर सकतीं ॥७०॥

जो अन्धकारसे अंधा होता है वह नेत्रोंसे तो नहीं देखता, किन्तु चित्तसे तो तत्त्वको (वस्तुके स्वरूपको) देखता है परन्तु जो अज्ञानसे शून्य हृदय हैं, वे न तो चित्तसे देखते और न नेत्रोंसे ही देखते ॥७१॥ सो हे विप्रो! उस धोबीके समान बदला करनेवाला कोई मनुष्य इस वादशालामें होवे तो मैं पूछने पर भी उसी बात कहते हुये डरता हूँ ॥७२॥ इस प्रकार मैंने चन्दन त्यागी,

मूर्ख कहा । अब सर्व प्रकार निंदाके भाजन ४ मूर्खोंकी कथा कहता हूं सो सुनो ॥७३॥

१०—चार मूर्खोंकी कथा ।

एक समय चार मूर्ख मिलकर कहीं जा रहे थे सो उन्होंने मार्गमें कहीं पर जिनेश्वरके समान निष्पाप मोक्षाभिलाषी मुनि महाराजको देखा ॥७४॥ कैसे हैं वे मुनिराज वीरनाथ होनेपर भी किसी जीवको पीड़ा नहीं देनेवाले हैं, दोनों नयके कहनेवाले होकर भी सत्यवादी हैं, चित्तचोर होकर भी चौर्य कर्मसे रहित हैं, निष्काम होकर भी बड़े बलवान् हैं ।७५॥ ग्रन्थधारी (सिद्धान्तशास्त्रके पाठी) होकर भी निर्ग्रंथ (परिग्रह रहित) हैं, मलिन देहके धारी होकर भी निर्मल (पापरूपी मैलसे रहित) हैं, गुप्तिमान् अर्थात् मन वचन काय गुप्तिके धारक होकर भी निर्बन्ध हैं, विरूप होकर भी मनुष्योंको प्रिय हैं ॥७६॥

महाव्रती होकर भी अन्धकारादिको नाश करनेवाले हैं, सर्व संगरहित होकर भी समितियोंके प्रवर्तक हैं ॥७७॥ प्राणी मात्रके रक्षक होकर भी धर्ममार्गके चलानेमें चतुर हैं, सत्यमें लवलीन होकर भी धर्मके बढ़ानेवाले हैं ॥७८॥ समुद्रके समान गम्भीर, मेरु पर्वतके समान स्थिर, सूर्यके समान तेजस्वी, चन्द्रमाके समान कान्तिके धारक ॥७९॥ सिंह समान निर्भय, कल्पवृक्षके समान वांछितके देनेवाले, वायुके समान निःसंग आकाशके समान निर्मल हैं॥८०॥

जिस प्रकार शीतसे पीड़ितजन प्रज्वलित अग्निको सेवन करते हैं, उसी प्रकार इन मुनि महाराजकी सेवा करनेसे समस्त प्राणियोंको पीड़ित करनेवाले तथा सम्यग्दर्शन चारित्रको नष्ट करनेवाले पापोंसे छूट जाते हैं ॥८१॥ और जिसने इन्द्र ब्रह्मा विष्णु महेश आदिको

भी अपने बाणोंसे हमकर जीत लिये और सैकड़ों दुःख दिये, ऐसे कामको भी जिन्होंने सहजमें ही जीत लिया ॥८२॥ और "जिस मुनिराजने स्वर्गलोकको जीतनेवाले कामदेवको ही नष्ट कर दिया सो हमको तो शीघ्र ही मारेगा।" इस प्रकार भयभीत होकर ही मानो बलवान क्रोधादिक कषायोंने इन महा पराक्रमी मुनिमहाराजकी सेवा नहीं की ॥८३॥ वे मुनिराज तपकी तो सेवा करते हैं परन्तु तम कहिये मिथ्यात्वकी नहीं। वे सदा धर्मकथा कहते हैं, परन्तु निन्दनीय विकथा नहीं कहते। वे अनेक प्रकारके दोषोंको नष्ट करते हैं, परन्तु गुणोंको नहीं। वे निद्राका त्याग कर देते हैं, परन्तु जिन-वाणीका त्याग कभी नहीं करते ॥८४॥ वे मुनिमहाराज समस्त-जनोंको धर्मोपदेश करके शीघ्र ही प्रतिबोधित धर्मात्मा करते हुये जगतके समस्त चराचरोंको (जीवाजीव पदार्थोंको) जाननेवाले और जिनेन्द्र भगवानके समान इन्द्रनरेन्द्रोंकर बन्दनीय हैं ॥८५॥

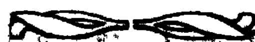
वे मुनिराज समस्त इन्द्रियोंके प्रसारको रोककरके भी समस्त पदार्थोंके समूहको अवलोकन करते हैं, तथा त्रस स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेवाले होकर भी विषयोंको मर्दन करनेवाले हैं ॥८६॥ गुणोंसे जड़े हुये, संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले उस मुनीश्वरके चरणरूपी कमलोंको वे चारों मूर्ख पृथिवीपर मस्तक रखकर नमस्कार करते हुये ॥८७॥ निर्दोष है चेष्टा जिनकी ऐसे वे मुनिराज उन चारों मूर्खोंको एक साथ ही दुःखोंको हरनेवाली पापरूपी पर्वतको उडानेवाली धर्मवृद्धि (तुम्हारे धर्मकी वृद्धि होवो ऐसा आशीर्वाद) दी ॥८८॥ तत्पश्चात् वे चारों मूर्ख वहांसे एक योजनके आगे जाकर परस्पर लड़ाई करने लगे। सो उचित ही है, कि मनवांछित फलकी देनेवाली एकता मूर्खोंमें कहांसे होय! ॥८९॥ एकने तो कहा—साधु-

महाराजने मुझे आशीर्वाद दिया। दूसरेने कहा—मुझे दिया। इस प्रकार परस्पर बोलते हुये उन हतबुद्धि मूर्खोंमें बहुत देरतक निर्गल कलह होती रही ॥९०॥

तब किसी अन्य पुरुषने कहा—हे मूर्खो ! तुम वृथा ही कलह क्यों करते हो ? भले प्रकार निश्चय करा देनेवाले उस मुनीश्वरसे ही जाकर क्यों न पूछ लो ? क्योंकि सूर्यके रहते हुये कहीं अन्धकार नहीं रहता ॥९१॥ यह वचन सुनकर उन सब मूर्खोंने मुनीन्द्र महाराजके समीप जाकर पूछा—हे मुनिपुङ्गव ! आपने जो आशीर्वाद दिया था, वह आपके प्रसादसे हम चारोंमेंसे किसको हुवा ? ॥९२॥ मुनिमहाराजने कहा—तुम चारोंमेंसे जो अधिक मूर्ख है, उसीको वह आशीर्वाद था। यह वचन सुनकर सब कहने लगे कि "अधिक मूर्ख मैं हूँ। अधिक मूर्ख मैं हूँ" सो ठीक ही है। क्योंकि 'ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं जो अपना पराभव सह ले' ॥९३॥ तब उन सबका दुस्तर युद्ध सुनकर मुनिमहाराजने कहा—हे मूर्खो ! तुम नगरमें जाकर बुद्धिमानों द्वारा अपनी मूर्खताका न्याय करा लो। यहांपर यह कलह मत करो ॥९४॥

इसप्रकार मुनिमहाराजके वचन सुनकर वे सब मूर्ख लड़ाई छोड़ प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र ही अमितगतयः सन् कहिये अपरिमित वेगसे नगरप्रति जाते हुये। तीन भवनमें पूजनीय मुनिमहाराजके वचनोंको प्रसन्नचित्त होकर तिर्यञ्च भी मानते हैं तो बुद्धिके धारक मनुष्य तो क्यों न मानेंगे ॥९५॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें आठवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ८ ॥



नौवां परिच्छेद

अथानन्तर वे मूर्ख पत्तन (नगर) में जाकर नगर निवासियोंके सन्मुख कहते हुये—आप हमारा एक विचार (न्याय) कर दीजिये। नगरनिवासियोंने कहा—हे भद्र ! तुम्हारा कैसा विचार है ? तब उन्होंने कहा—हम लोगोंमें अधिक मूर्ख कौन है सो विचार कर बता दीजिये ॥२॥ तब नगर निवासियोंने कहा—तुम अपनी २ मूर्खताकी कथा कहो। तब एक मूर्खने कहा—पहिले मेरी कथा सुन लीजिये ॥३॥

प्रथम मूर्खकी कथा।

हे महाशय ! विधाताने (कर्मने) मुझे बड़े पेट और लम्बे स्तनोंवाली साक्षात् भयंकर वेतालीके समान दो भार्यायें दीं ॥४॥ वे दोनों ही स्त्रियां मुझको रतिदायक और अतिशय प्रिय होती भईं, सो नीति ही है कि सबको सर्वप्रकारकी स्त्रियां स्वभावसे ही प्रिय हुआ करती हैं ॥५॥ मैं उन दोनों राक्षसियोंसे निरन्तर भयभीत रहता हूँ। 'जगतमें ऐसा कौन पुरुष है, जो बहुधा स्त्रियोंसे नहीं डरता' ॥६॥ उन दोनोंके साथ क्रीड़ा करते हुये मेरे बहुत दिन सुखसे चले गये। एक दिन रात्रिके समय मैं अपनी योग्य शय्यामें सोता था ॥ ७ ॥

सो वे दोनों ही गुणकी भाजन मेरी प्यारी स्त्रियां शीघ्र ही आकर मेरे एक एक हाथको मस्तकके नीचे दबाकर दोनों तरफ सो गईं ॥८॥ मैंने विलासके लिये ऐसे स्थानपर जो ठीक मस्तकपर था दीपक रख दिया था। क्योंकि "कामी पुरुष आनेवाली विपदाओंको नहीं देखते' ॥९॥ जब मैं सोते सुखसे सो गया तो एक दुष्ट मूषक

उस दीपकमेंसे बत्ती निकालकर ले जाने लगा। सो मेरे वाम नेत्रपर वह जलती हुई बत्ती गिर पड़ी ॥१०॥ तब मैंने शीघ्र ही जगकर नेत्रके जलनेसे व्याकुल हो यह विचार किया कि—॥११॥ यदि मैं दाहने हाथको निकालकर बत्ती बुझाता हूँ तो मस्तकके नीचेसे हाथ निकाल जानेके कारण मेरी दाहने हाथवाली स्त्री गुस्से हो जायगी और बायें हाथसे बुझाता हूँ तो यह दूसरी क्रोध करेगी ॥१२॥

लाचार मैं अपनी प्यारी स्त्रियोंके भयसे उनके मस्तकके नीचेसे हाथ न निकाल कर उसी तरह चुपचाप सोता रहा। जिससे मेरी बायीं आख फूट जानेसे मैं उसी दिनसे काणा हो गया ॥१३॥ मेरे नेत्रको जलाकर फोड़नेके पीछे वह अग्नि (बत्ती) अपने आप ही बुझ गई, परन्तु मैंने स्त्रियोंके भयसे उसके बुझानेका कोई भी उपाय नहीं किया ॥१४॥ मेरे समान मूर्ख होय तो कहो, जोकि स्त्रीमें आसक्त हो अपने नेत्रको जलता हुआ देखकर भी मध्यस्थ (चुप) रहे ॥ १५ ॥

स्त्रीके भयसे जिस दिन मेरा विषम (वाम) नेत्र फूट गया उसी दिनसे मेरा 'विषमेक्षण" ऐसा नाम पड़ गया है ॥१६॥ इस लोक वा परलोकमें ऐसा कोई भी असह्य दुःख नहीं है जो स्त्रीके वशीभूत होनेवाले पुरुषको नहीं होता ॥१७॥ 'जो स्त्रीके वशीभूत पुरुष नेत्रोंके जलते हुये भी मूक होकर रहते हैं, वे दीन ऐसा कौनसा अयोग्य कार्य है, जो नहीं करते॥१८॥मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणों! इस वादशालामें उस विषमेक्षणके सदृश कोई पुरुष हो तो मैं पूछने पर भी कहते हुए डरता हूँ ॥१९॥ जब वह मूर्ख इस प्रकार अपनी मूर्खताको कहकर एक तरफ बैठ गया तब दूसरे नष्टबुद्धि मूर्खने प्रशंसा करते२ अपनी कथा कहनी शुरू की ॥२०॥

द्वितीय मूर्खकी कथा

मेरे दो स्त्रियां थीं। विधाताने समस्त विरूप पुद्गलोंको इकट्ठा करके मानो आककी डोडीके समान हाडवाली वे दो स्त्रियां मेरे लिये बनाई थी। क्योंकि ॥२१॥ वे बहुत ही काली और कौडीके दांतवाली थीं। लम्बे पांव, बडी जँघायें और लम्बी नासिकायें थी, और उनके कडे रोम कंसकारों (कासेरियों) की देवीके समान बडे भयंकर थे।'२२॥ वे भक्षण करनेमें गधीको, अशुचि पदार्थ खानेमें शूकरीको और चपकलामें वायसी (कागली) को जीतनेवाली और बुरा२ भक्षण करनेसे निन्द्य उपकार लेनेवाली थीं॥२३॥ सो वे दोनों ही स्त्रियां मेरे पर प्रीति रखनेवाली मुझे बडी प्यारी थी। सो एक तो मेरे दहने पांवको धोया करती थी और दूसरी बायें पांवको धोती थी॥२४॥ एकका नाम ऋक्षी (रींछनी) और दूसरीका खरी (गधी) था, उन दोनोंसे निरन्तर क्रीडाके साथ रमते हुये मेरा काल सुखसे जाता था॥२५॥

एक दिन प्राणोंसे भी अतिशय प्यारी मेरी ऋक्षी नामा स्त्रीने प्रीतिपूर्वक मेरा पांव धोकर दूसरे पांव पर रख दिया॥२६॥ सो खरीने देख कर उसी वक्त एक मूशल द्वारा अतिशय निष्ठुर आघात करके मेरा पांव तोड डाला॥२७॥ तब ऋक्षीने खरीसे कहा—आज तुझे इतना स्वार्थ हो गया है जो ऐसी नीच क्रिया करने लगी? ॥२८॥ हे दुष्टिनी, गधोंको गधेडीके समान हजारों यारोंको भोगती२ अब पतिव्रता बननेको चली है? ॥२९॥ इस प्रकार सुनकर खरीने कहा—हे खले! अपनी माताके सदृश हजारों व्यभिचारोंको भोग कर अब मेरे पर भी वही दोष रखती है? ॥३०॥

हे बोडे, हे शठे, तेरा सिर मुंडकर पांच चोटी रखवाकर गलेमें

शरावोंकी माला पहराकर शहरमें फिराऊँ तो ठीक लगे ॥३१॥ इस प्रकार उन दोनोंमें दुष्ट राक्षसियोंके समान लोगोंके देखने योग्य बड़ी दुर्निवार लड़ाई हुई ॥३२॥ तब सखीने रुष्ट होकर कहा—हे तू और तेरी मा अपने पांवकी रक्षा कर, ऐसा कह कर मूसल ले, मेरा दूसरा पांव उस सखीने तोड़ डाला ॥३३॥ दो दुष्टवाघिनियोंसे बकरेके समान उन दोनों स्त्रियोंसे भयभीतचित्त कंपित शरीर होकर मैं तो चुपचाप देखता ही रहा ॥३४॥ जबसे मैंने स्त्रियोंके भयसे चुपचाप पांव तुड़वा लिये तभीसे मेरा 'कुंटहंसगति' ऐसा नाम पड़ गया ॥३५॥

देखो मेरी कैसी मूर्खता है जो उस समय स्त्रियोंके भयसे कंपित शरीर होकर मौन धारण कर लिया ॥३६॥ जैसा दुःशील कुरूप नीच कुलकी स्त्रियोंको सौभाग्य, रूप और सुन्दरताका गर्व होता है, वैसा सुशील सुरूप कुलीन निष्पाप धर्मात्मा स्त्रियोंको कदापि नहीं होता ॥३७-३८॥ अपने हितकी वांछा करनेवाले समझदार पुरुषोंको कुलीन भक्तिमती शान्त और धर्ममार्गकी जानकार एक ही स्त्री करनी चाहिये ॥३९॥ जो पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत होता है, वह निःसन्देह इसलोकमें तो कुलकी कीर्ति और सुखका नाश करता है और परलोकमें अवश्य नर्क वेदनाको भोगता है ॥४०॥

इस जगतमें वैरी व्याघ्र और सर्पोंसे निर्भय रहनेवाले तो बहुत पुरुष हैं, परन्तु स्त्रियोंसे नहीं डरनेवाला एक भी नहीं दीखता ॥४१॥ जो पुरुष कुंटहंसगतिके सदृश दुर्बुद्धि होते हैं, उनके सन्मुख पंडित-जनोंको चाहिये कि—तत्त्व (वस्तुका स्वरूप) न कहें ॥४२॥ इस प्रकार अपनी निंदनीय कथा कहकर, दूसरे मूर्खके चुप रहने पर तृतीय मूर्खने अपनी कथा कहनी प्रारम्भ की ॥४३॥

तृतीय मूर्खकी कथा

हे पुरवासियो ! अब मैं तुमको अपना मूर्खपन कहता हूँ, सो सावधान होकर सुनो ॥४४॥ एक समय मैं सुसराल जाकर अपनी स्त्रीको ले आया। रात्रिको सोते समय वह बोलती नहीं थी। सो मैंने कहा—हे कृशोदरि ! अपन दोनोंमेंसे जो कोई पहिले बोलेगा वही घीमें तले हुये गुडके दश पूवे हारेगा (देगा) ॥४५-४६॥ तब मेरी स्त्रीने कहा—बहुत ठीक है, ऐसा ही करो। सो उचित ही है कि—'कुलवती स्त्रियें पतिके वाक्यको कदापि उल्लंघन नहीं करती' ॥४७॥

इसप्रकार हम दोनोंके प्रतिज्ञारूढ होकर बैठ जानेपर उसी समय हमारे घरमें एक चोरने आकर समस्त धन हरण कर लिया ॥४८॥ उस चोरने द्रव्य ग्रहण करनेमें कुछ भी बाकी नहीं छोड़ा सो उचित ही है कि, 'छिद्रके मिलनेपर व्यभिचारी और चोरोंमें बड़ी सामर्थ्य हो आती है' ॥४९॥ शेषमें जब वह चोर मेरी स्त्रीके पहरनेका वस्त्र खोलने लगा तब मेरी स्त्रीने मुझे कहा कि, रे दुराचारी! क्या तू अब भी उपेक्षा करता है ? हे दुष्ट ! अपने सन्मुख मेरी धोतीके खोलनेपर भी किसप्रकार जीता है ? कुलीन पुरुषोंका जीना तो स्त्रीके पराभवतक ही होता है। अर्थात् कुलीन पुरुष मर जाना श्रेष्ठ समझते हैं परन्तु अपनी स्त्रीका पराभव नहीं देख सकते ॥५०॥५१॥

अपनी स्त्रीके ये वचन सुनकर मैंने हंसके कहा—हे कान्ते ! तू ही पहिले बोल गई। सो "हार गई, हार गई" तूने गुड घीके दश पूवे देना स्वीकार किया था, सो अब मेरे दश पूवे इसी वक्त लादे ॥५२॥५३॥ देखो मेरी मूर्खता; जो मैंने दुष्प्राप्य, धर्म और सुखके देनेवाले पूर्वोपार्जित समस्त द्रव्यको अपनी आंखोंके सामने चोरके द्वारा नष्ट कर दिया ॥५४॥ उसी दिनसे मेरा नाम 'बोद'

प्रख्यात हो गया है। सो उचित ही है, 'मिथ्याभिमानके वशीभूत होकर यह मनुष्य क्या क्या आपदा नहीं भोगता' ॥५५॥

अपने कर्त्तव्यमें अवज्ञा (हानि) होती हो तो मनुष्य अपने जीवितव्यको छोड देता है, परन्तु शरीरका खण्ड-खण्ड हो जाय तो भी अपना गर्व नहीं छोडता ॥५६॥ समस्त द्रव्यके नाशको सहते हैं इसमें सत्पुरुषोंको कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि मिथ्याभिमानसे नरककी वेदनातक सह लेते हैं ॥५७॥ जो नराधम बोदके समान मूर्ख हैं, उनको सारासार विचार करनेका अधिकार (सामर्थ्य) ही नहीं है ॥५८॥ इसप्रकार अपनी मूर्खता प्रगटकर तीसरे मूर्खके चुप रहने बाद नगर निवासियोंके पूछनेपर चौथा मूर्ख अपनी कथा कहने लगा ॥५९॥

चतुर्थ मूर्खकी कथा

एक समय मैं अपनी स्त्रीको लेनेके लिये स्वर्गके समान इच्छित सुखकी आधारभूत ससुरालमें गया ॥६०॥ सो मेरी सासने विचित्र वर्ण सचिक्कण आनन्ददायक जिनवाणीके समान उज्ज्वल (पवित्र) भोजन दिया ॥६१॥ परन्तु कष्टसे है उतार चढ़ाव जिसका ऐसी महामारी (हैजे) के समान लज्जाके कारण विकल चित्त हो, मैंने कुछ भी नहीं खाया ॥६२॥ दूसरे दिन भी देहसहित व्याधियोंके समान उस गांवकी स्त्रियोंको देखकर कुछ भी भोजन करने नहीं पाया ॥६३॥ तब तीसरे दिन प्रलयकालकी अग्निके सदृश सर्वांगमें दाह करनेवाली जठराग्नि (क्षुधा) बड़ी तेज हो गई ॥६४॥

जो क्षुधासे घबराया हुआ होता है, वह किसीके सन्मुख नहीं देखता। सो मैंने उस समय सहज ही पलंगके नीचे झांका तो वहां पर आकाशको निर्मल करनेवाली चन्द्रमाकी किरणोंके समान स्वच्छ

शालि चावलोंसे भरा हुवा एक बहुत बड़ा बर्तन देखा ।।६५-६६
तत्पश्चात् मैंने घरके दरवाजेकी तरफ देखा तो कोई भी नहीं है
और न किसीके आनेकी आहट सुनी तब मैंने उन चावलोंसे
मुँह भर लिया सो उचित ही है, अत्यन्त क्षुधातुरके मर्यादा
कहां ।। ६७ ।। दैवयोगसे उसी समय मेरी वल्लभा (स्त्री)
आ गयी तो उसकी शरमसे उसी तरह फूले हुये गाल और मुख-
सहित मैं चुपचाप बैठा रहा ।।६८।। उसने फूले गाल व मुखको
तथा मिचे हुये नेत्रोंको देखा तो मुझे महाव्याधि हो गयी है, ऐसा
समझकर अपनी माको खबर कर दी ।।६९।। मेरी सासूने आकर
देखा तो वह मेरे जीवनमें ही सन्देह करने लगी। सो उचित ही
है। 'प्रेमीजन वैभवमय भी अपने प्रियजनोंको बड़ी आपदा सहित
देखा करते हैं' ।।७०।।

मेरी सास चितासहित ज्यों ज्यों मेरे गालोंको हाथसे दबा २
कर देखती थी, त्यों त्यों मैं विह्वल शरीर होकर गालोंको कठिन
किये पड़ा रहा था ।।७१।। मेरी स्त्रीको रोती हुयी सुनकर गांवकी
अनेकों स्त्रिया भी इकट्ठी हो गयीं और सबकी सब स्त्रियां अनेक
प्रकारके रोग बताने लगीं ।।७२।। एकने कहा—इन्होंने माता-पिताकी
अथवा सप्तमाताओंकी (सात प्रकारकी देवियोंकी) सेवा पूजा नहीं
की, इसी कारण यह अनिष्ट दोष हो गया है और कोई बात नहीं
है ।।७३।। दूसरीने कहा—निसन्देह यह किसी देवताका दोष है।
क्योंकि इसके सिवाय इसप्रकार अकस्मात् पीड़ा कैसे होती? ।।७४।।
तीसरीने अपने बांये हाथपर मेरा मस्तक रखकर दूसरे हाथको
सकाकर कहा—यह तो कर्णसूचिका माता (चेचक) है ।।७५।।

इसी प्रकार किसीने पित्तका रोग, किसीने वात रोग, किसीने

बीर्य सम्बन्धी और किसीने वाजिनातिक दोष बताया ॥७६॥ इस प्रकार व्याकुलचित्त होकर परस्पर कहती हुयी स्त्रियोंमें अपनी प्रशंसा करता हुआ एक शस्त्रवैद्य भी आ निकला ॥७७॥ चिंतामें घबराई हुई मेरी सासने उसी वक्त उस वैद्यको मेरा रोग बताकर मुझे दिखाया ॥७८॥ इंगितकारमें चतुर उस वैद्यने शस्त्रम पत्थरके कर्कश कठोर गालोंको देखकर हाथसे दबाकर अपने मनमें विचार किया कि—निःसन्देह इसने मूखके मारे बिना चाबी हुई कोई भी वस्तु मुखमें डाली है, अन्यथा ऐसी चेष्टा कदापि नहीं हो सकती ॥७९-८०॥

तत्पश्चात् उस चतुर वैद्यने पलंगके नीचे चावलोंका बर्तन देखकर कहा—हे मात: इस तुम्हारे जंवाईको कष्टसे है अन्त जिसका ऐसा प्राणोंका नाश करनेवाला अत्यन्त कष्टसाध्य तंदुली रोग हो गया है ॥८१॥ यदि तू मनचाहा बहुतसा द्रव्य देगी तो मैं तेरे जंवाईका रोग दूर कर दूंगा। तब मेरी सासने कहा—हे वैद्यवर! यदि यह बालक नीरोग हो जायेगा और जीता रहेगा तो निःसंदेह मुंहमांगा द्रव्य दूंगी ॥८२॥ तदनन्तर उस वैद्यने शस्त्रके द्वारा मेरे गालोंमें छिद्र करके चावलोंकी बराबर अनेक प्रकारके कीड़े (चावल) उन विषाद करती हुयी स्त्रियोंको निकाल २ कर दिखाये और शीघ्र ही मेरा रोग दूर कर दिया। तब एक जोड़ा वस्त्र देकर उन सब स्त्रियोंने वैद्यराजकी बहुत कुछ भेट पूजा की। और मैं मानाग्निसे तप्त होकर वृथा ही दुर्निवार पीड़ाको सहकर चुप चाप बैठा रहा ॥८३-८४॥

जब मेरे मुखसे वास्तविक हाल आया तो समस्त लोगोंमें मेरी बड़ी हंसी की और उसी दिनसे मेरा नाम 'गल्लस्फोट' प्रख्यात हुआ। सो उचित ही है कि—'जो प्राणी दुष्ट चेष्टा करेगा, वह शीघ्र ही

निन्दनीय हास्य और दुःखको क्यों नहीं पावेगा ? ||८५|| हे पुरवासियो ! तुमने ऐसी मूर्खता देखली ? मूका होकर गाना सीखनेकी इच्छा रखनेवाला आश्चर्यकारक मुझ सरीखा मूर्ख तुमने कहीं पर भी देखा हो तो कहो ? ||८६|| लज्जा मान पौरुष शौच अर्थ काम धर्म संयम और अकिंचनपणेका स्वरूप भलेप्रकार समझकर योग्य समयपर ही सेवन किये हुये ये तत्काल मनवांछित सिद्धिको देते हैं ||८७|| सो हे ब्राह्मणो ! जो मूर्ख हेयाहेयके ज्ञानरहित सर्वप्रकारसे त्याज्य होकर भी अभिमान करता है, वह हास्य दुःख और समस्त लोगोंसे निन्दा पाकर घोर नरकमें जाता है ||८८|| तत्पश्चात् नगर निवासियोंने कहा–हे भद्र पुरुषो ! तुम उसी साधुके पास शीघ्र ही जाकर अपने मूर्खपणेको शुद्ध करो । सो उचित ही है । 'सत्पुरुष असाध्य कार्यमें कदापि प्रयत्न नहीं करते' ||८९|| हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार सारासार विचारके व्यवहाररहित चार प्रकारके मूर्ख मैंने प्रगट किये । यदि तुम लोगोंमें कोई ऐसा मनुष्य होय तो मैं तत्त्व (सच्ची बात) कहते डरता हूं ||९०||

लज्जा करनेवाली वेश्या, अतिशय दान करनेवाला धनाढ्य, गर्व करता नोकर, भोगाभिलाषा करता ब्रह्मचारी, चिन्ता करनेवाला भांड, शीलका नाश करनेवाली स्त्री और लोभी राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ||९१|| विवेकरहित पुरुषके किसी कालमें भी कीर्ति कान्ति लक्ष्मी प्रतिष्ठा धर्म अर्थ काम सुख वगैरह नहीं होते । इस कारण सर्वप्रकारसे श्रेष्ठ प्रत्येक कार्यके करते समय सारासारका विचार रखना चाहिए ||९२|| जो पुरुष विनाकारण ही वृथा अभिमान रखता है, उस लोकनिंद्य नष्टबुद्धि पुरुषके जीवनके साथर इस लोक परलोक सम्बन्धी समस्तकार्य भी नष्ट हो जाते हैं ||९३||

जो पुरुष देश कालानुसार वारवार विचार कर समस्त श्रेष्ठ कार्य करता है, वही इसलोकमें विद्वानोंसे पूजनीय, मनोवांछित सारभूत सुखको प्राप्त होकर मोक्षको जाता है ॥९४॥ इस जगतमें बहुधा अहित करनेपर हितको करते हैं और हित करनेपर अहित करते हैं, परन्तु अपना हित चाहनेवाले 'अमितगतयः' कहिये अपरिमाणज्ञानके धारक जो सत्पुरुष हैं वे अपनी बुद्धिके अनुसार अपने मनमें विचार कर पहिलेसे ही हित किया करते हैं। ९५॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें नवमा परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ९ ॥



दसवा परिच्छेद

अथानन्तर मनोवेगने कहा—ब्राह्मणो ! रागसे अन्धा रक्तपुरुष, द्वेषका करता द्विष्टपुरुष, विज्ञानरहित मूढपुरुष, व्युद्ग्राही राजाका पुत्र, विपरीतात्मा पित्तदूषित, बिना परीक्षा किये ही आम्रके वृक्षको काटनेवाला शेखर नामका राजा, सुरभि (गौ) का त्यागी तोमर बादशाह, अंगूर वृक्ष जलानेवाला हाली, नीमकी लकड़ीसे चन्दनका बदला करनेवाला लोभी, रजक और विचाररहित चार मूर्ख, ये दश प्रकारके मूर्ख कहे। इनमेंसे कोई मूर्ख तुम लोगोंमें होय तो मुझे बता दो ॥१–२–३॥ यह वचन सुनकर समस्त ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र ! हम सब विचारवान् हैं। जिस प्रकार गरुड सर्पको मारता है उसी प्रकार हम मूर्खको दण्ड देते हैं ॥४॥ मनोवेगने फिर कहा—हे विप्रगणो ! मेरे मनमें अब भी थोड़ासा भय है, क्योंकि आप लोगोंमें बहुधा अपने वाक्यके आग्रह करनेवाले होंगे ॥५॥

दूसरे जिस वक्ताके पास सुन्दर मनोहर बैठनेका आसन नहीं हो, शिरपर मोटी पगड़ी अथवा चोटी नहीं हो, पुस्तक नयी नहीं हो, योग्य सुन्दर धोती जोड़ा नहीं हो ॥६॥ तथा जिसके पावोंमें सुन्दर पावड़ी (खड़ाऊ) का जोड़ा नहीं हो, लोकको रंजायमान करनेवाला भेष नहीं हो, तो उस वक्ताका कहना कोई भी प्रमाणीक नहीं समझते ॥७॥ क्योंकि आजकल बहुधा लोग किसी वेशके धारण किये बिना किसीका आदर नहीं करते, घटाटोपरूप आडम्बरकी ही पूजा करते हैं, गुणोंकी पूजा कोई भी नहीं करता ॥८॥ यह सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र ! तू किसी प्रकार भी मत डर, प्रस्तावित

कथनसे (रत्नालंकार वर्जित तृण काष्ठके बेचनेवालोंके सदृश पुरुष भारत रामायणादिमें बताना वगैरह) महात्मा पुरुषोंमें चर्वितका चर्वण करना (पिसे हुयेको पीसना) नहीं शोभता ॥९॥ तब मनोवेगने कहा—यदि ऐसा है तो मैं जो वचन कहूं सो पूर्वापर विचार कर स्वीकार करना ॥१०॥

इस जगतमें पुंडरीक नामका विख्यात एक प्रसिद्ध देव है सो वह इस जगतकी सृष्टि स्थिति और विनाशका एकमात्र कारण है ॥११॥ जिसके प्रसादसे जगतजन अविनाशी पदको पाते हैं, व ... के समान सर्वव्यापी नित्य, निर्मल और सदा अक्षय है ॥१२॥ ... त्रिलोकरूपी घरका एकमात्र स्तम्भ और शत्रुको जलानेमें ... के समान, जिसके हाथमें धनुष, शङ्ख, गदा, चक्रके द्वारा भूषित है तथा—॥१३॥ जिसके द्वारा जगतको उपद्रव करनेवाले दुष्ट दानव सूर्यकी किरणोंसे अन्धकारके समूहके समान शीघ्र ही मारे जाते हैं और—॥१४॥ जिसकी गोदमें लोगोंको महा आनन्द करनेवाली आतापको नष्ट करनेवाली मनोहर चन्द्र किरणके समान पूजनीय लक्ष्मी स्थित है ॥१५॥

जिसके शरीरमें निर्मल प्रभावाला कौस्तुभमणि शोभायमान है, सो मानो लक्ष्मीने अपने सुन्दर मंदिरमें दीपक हो रक्खा है ॥१६॥ सो हे विप्रो! इस प्रकारके समस्त देवोंके देव पुंडरीक भगवान बैकुण्ठके परमात्मा (विष्णु) में तुम लोगोंकी प्रतीति है कि नहीं? ॥१७॥ तब ब्राह्मणने कहा—हे भद्र! उपर्युक्त प्रकारका चराचर जगद्व्यापी जो विष्णु भगवान है, उसको कौन नहीं मानता? ॥१८॥ दुःखरूपी अग्निको मेघके समान और संसाररूपी समुद्रसे तारनेको जहाज समान विष्णुको जो लोग स्वीकार नहीं

करते अर्थात् नहीं मानते, वे मनुष्य शरीरको धारण करते हुये भी पशु हैं ॥१९॥ भो भट्टगणो ! यदि तुमारा विष्णु ऐसा कृतकृत्य है तो नन्द गोकुलमें ग्वालिया होकर गौओंको किसलिये चराता था ? ॥२०॥

तथा कुटज पुष्पोंकी मालासे दृढ़ बन्धा हुआ मयूरपुच्छ धारणकर गोपालकोंके (ग्वालियोंके) साथ वारंवार रासक्रीडा क्यों करता था ? ॥२१॥ तथा युधिष्ठिरकी तरफसे दूतपणा करनेके लिये दुर्योधनके पास सिपाइयोंके समान भागा भागा क्यों गया था ? ॥ २२ ॥ तथा हाथी घोडे पदातियोंसे भरे हुये युद्धमें अर्जुनका सारथी (रथ हांकनेवाला) बनकर किसलिये रथ हांकता था ? ॥२३॥ तथा बवनेका रूप धारण कर दरिद्रके समान दीन वचन कहता हुवा बलिराजासे पृथ्वीकी याचना क्यों की थी ? ॥२४॥ तथा समस्त लोकको धारण करनेवाला सर्वज्ञ सर्व-व्यापी स्थिर होकर रामावतारमें कामीके सदृश सर्व तरफसे सीताके विरहरूपी अग्निके द्वारा किसप्रकार तापित होता भया ॥२५॥

इनको आदि लेकर अनेक अनुचित कार्य योगियों द्वारा गम्य जगतके गुरु वन्दनीय महात्मा देवके (विष्णुके) होना योग्य है ? ॥२६॥ यदि इस प्रकारके कार्य विराग रूप हरि (विष्णु) करता है तो हम दरिद्रके पुत्रोंका काष्ट वेचनेमें कोनसा दोष है ? ॥२७॥ यदि इसप्रकारकी क्रीडा (लीला) मुरारी परमेष्ठिके है, तो अपनी शक्तिके अनुसार काष्टादिक वेचनेरूप क्रीडा करते हुये हमको कौन निवारण कर सकता है ? ॥२८॥ इसप्रकार विद्याधर मनोवेगके वचन सुनकर चतुर ब्राह्मणोंने कहा—हमारा विष्णु भगवान् जो ऐसाही है इसका हम उत्तर क्या दे सकते हैं ? ॥२९॥ इस समय

तो हमारे मनमें भी भ्रान्ति होगई है कि परमेष्ठी हरि ऐसे कार्य किसप्रकार कर सकता है ॥३०॥

हे भद्र ! तूने हम मूढ मनवालोंको प्रबोधित किया सो उचित ही है–'दीपकके बिना नेत्र रहते भी रूप नहीं देखा जाता'। ३१॥ यदि हमारा विष्णु ऐसे अनुचित कार्य किसी अन्य परमेष्ठीकी प्रेरणासे करता है तो वह अपने पिताकी आज्ञासे तृणकाष्ट बेचता है ॥३२॥ यदि देव ही ऐसे अन्याय कार्य करता है तो वह अपने शिष्यों (भक्तों) को निषेध कैसे कर सकता है ? क्योंकि खुद राजा ही चोरी करता हो तो वह चोरोंको किसप्रकार निवारण कर सकता है ? ॥३३॥ विष्णुको ऐसे कार्य करते हुये अन्यपुरुषोंको ऐसे कार्य करनेमें दोष क्यों देना ? क्योंकि 'जिस घरमें सासू ही व्यभिचारिणी हो तो बहूको दोष देना व्यर्थ है' ॥३४॥ यदि उसके अंश सरागी हैं तो वह परमेष्टी भी सरागी है वीतराग नहीं है क्योंकि अवयव सरागी होनेसे अवयवी वीतराग कैसे हो सकता है ॥३५॥

समस्त लोक विष्णु भगवान्के उदयमें था तो फिर सीताका हरण किसप्रकार हुआ ? क्या आकाशसे बाहर भी कभी कोई वस्तु हो सकती है ? ॥३६॥ तथा विष्णु सर्वव्यापी और नित्य है तो उसके इष्टका विरह (वियोग) व पीड़ा किसप्रकार हो सकती है ? ॥३७॥ यदि वह किसीकी आज्ञासे ऐसे कार्य करेता है तो वह जगतका प्रभु कैसे हो सकता है ! क्योंकि राजा होकर सेवकका कार्य कोई भी नहीं करता ॥३८॥ सर्वज्ञ होकर उसने वृक्षादिकसे सीताकी खबर क्यों पूछी ? ईश्वर होकर भिक्षा क्यों मांगी ? प्रबुद्ध होय सो निद्रा कैसे ले ? और विरागी होकर कामसेवन कैसे कर सकता है ? ॥३९॥ तथा अन्य जीवोंके समान दुःखित होकर उसने मत्स्य

कच्छप शूकर नृसिंह वामन परशराम राम कृष्ण वगैरह अवतार किस लिये धारण किये ? ॥४०॥

अनेक प्रकारके छिद्रों सहित विष्टाके घडेके समान नवद्वारोंसे चारों ओरसे अपवित्र वस्तुओंको निकालनेवाले कर्म निर्मित समस्त अपवित्रताके घररूप महा अपवित्र देहको पापरूप मैलसे रहित वह स्वतंत्र परमेश्वर किसप्रकार धारण करता है ? ॥४१-४२॥ उस प्रभुने दानवोंको उत्पन्न करके फिर कैसे मारे ? क्योंकि जगतमें ऐसा कोई भी पिता नहीं होता जो अपने पुत्रका अपकारक हो ॥४३॥ यदि वह तृप्त है तो भोजन क्यों करता है ? यदि क्षमा है तो अवतार ले लेकर क्यों मरता है ? यदि भय और क्रोधसे रहित है तो शस्त्र किसलिये धारण करता है ? ॥४४॥ सर्वज्ञ होकर भी वसा (नसे) रुधिर मांस अस्थि मज्जा शुक्र आदिकसे दूषित विष्टाके घरके समान गर्भमें कैसे रहा ? ॥४५॥

हे भद्र ! इस प्रकार हम अपने देवके विषयमें विचार करते हैं तो पूर्वापर विचार करनेवाले हम सबकी भक्ति तेरे वचनोंमें ही होती है । अर्थात् तुमारा कहना ही सत्य है ॥४६॥ जो पुरुष अपने सन्देहोंको ही दूर नहीं कर सकता, वह अन्य हेतु—वादियोंको क्या उत्तर देगा ? ॥४७॥ हे भद्र ! निश्चय करके तूने हमको जीत लिया । अब तू जयलाभ रूपी आभूषणसे भूषित होकर जा ! हम भी अब समस्त दोष रहित देवको ढूंढेंगे । क्योंकि जो अपना कल्याण चाहते हैं, उनको चाहिये कि जन्म मृत्यु जरा रोग क्रोध लोभ भयका नाश करनेवाले पूर्वापर दोष रहित देवको पहचानकर ग्रहण करें ॥४८-४९॥ इस प्रकार विप्रोंके कहनेपर जिनेन्द्र भगवानके वचन रूपी जलसे धोकर निर्मल किया है अपना चित्त जिसने ऐसा वह मनोवेग विद्याधर उस वादशालासे निकलकर जाता हुआ ॥५०॥

तत्पश्चात् उसी बागमें जाकर अपने मित्र पवनवेगको कहने लगा—हे मित्र ! तूने इस लौकिक सामान्य देवको विचारपूर्वक सुना ? अब मैं तेरे संशयरूपी अन्धकारको नाश करनेवाले सूर्यके समान थोड़ासा अनुक्रमका स्वरूप और भी कहता हूँ सो सुन ॥५१-५२॥

हे मित्र ! इस भारतवर्षमें ६ ऋतुके समान अपने भिन्न स्वभावोंको लिये हुये छः काल यथाक्रमसे हुआ करते हैं ॥५३॥ इनमेंसे चतुर्थकालमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कीर्तिके धारक जगन्मान्य ६३ त्रेसठ शलाका पुरुष (उत्तम पुरुष) उत्पन्न होते हैं ॥५४॥ उनमेंसे चौबीस तो तीर्थंकर (अरहंत), द्वादश चक्रवर्ती, नव बलभद्र (राम), नव नारायण और नव प्रतिनारायण (बलभद्र और नारायणके शत्रु) होते हैं ॥५५॥

इस समय वे सबके सब पृथ्वीमण्डलके मंडन उत्पन्न हो होकर व्यतीत हो गये। क्योंकि 'जगतमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है कि जिसको काल नहीं ग्रसता' ॥५६॥ नारायणोंमेंसे अन्तका नारायण वसुदेवका पुत्र श्रीकृष्ण हुआ। उसको इन ब्राह्मण भक्तोंने निरंजन परमेष्ठी मान लिया है ॥५७॥ और कहते हैं कि जो पुरुष सर्वव्यापी निष्कल जरामरणका नाशक, अभेद्य, अव्यय, देव, विष्णुरूप ध्येयका ध्यान करते हैं वे दुःख नहीं पाते ॥५८॥ तथा जिस विष्णुको मीन, कूर्म, शूकर, नारसिंह, वामन, राम, परसराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्की इन दश अवतार रूप कहकर निष्कलंक कहिये शरीर रहित भी कहा और दश अवतारका धारी भी बताया, सो इस प्रकार पूर्वापर विरोधवाले देवको विद्वज्जन कदापि आप्त नहीं कह सकते ॥५९-६०

बलिके बन्धनकी सच्ची कथा मैं कहता हूँ जिसको कि मूढ़-

बुद्धि मनुष्योंमे कुछका कुछ प्रसिद्ध कर दिया है ॥ ६१ ॥ एक समय बलि नामके एक दुष्ट ब्राह्मण मन्त्रीने मुनियोंको (उपसर्ग) उपद्रव किया था, सो ऋद्धिप्राप्त विष्णुकुमार नामा एक मुनिने वामन (बवना) का रूप धारण कर तीन पांव जमीन मांगकर बलिको बांध लिया और मुनियोंकी रक्षा की थी। इसप्रकार जो कथा है उसको मूढ लोकोंने और ही प्रकार मान ली है ॥६२-६३॥ नित्य निरंजन सूक्ष्म, मृत्यु जन्मसे रहित तथा निष्कल होकर उसने दश अवतार कैसे धारण किये ? ॥६४॥ हे मित्र ! इसीप्रकार पूर्वापर विरोधसे भरे हुये इनके पुराण हैं, सो तुझे फिर भी बताता हूं, ऐसा कहकर उसने लकड़हारेका रूप छोड़ा ॥६५॥

तत्पश्चात् अपनी विद्याके प्रभावसे उस मनोवेगने बक्र है केशोंका भार जिसका, कज्जलके समान रूप, मोटे मोटे हाथ पांव-वाले भीलका रूप धारण किया ॥६६॥ इसीप्रकार पवनवेगने भी मार्जारी विद्यासे पीली२ आंखोंवाले कटे हुये कानोंके काले मार्जारका (बिलावका) रूप बनाया ॥६७॥ तत्पश्चात् वह मनोवेग नगरमें प्रवेश करके मार्जारको एक घडेमें रख दूसरी वादशालामें पहुंचा और वहां जाकर घंटे और भेरी बजाकर सुवर्ण सिंहासनपर जा बैठा ॥६८॥ भेरीका शब्द सुनते ही वादी ब्राह्मण शीघ्र ही आकर मनोवेगको कहने लगे—क्यों बे ! तू वाद किये बिना ही इस सोनेके सिंहासनपर कैसे बैठ गया ? ॥६९॥ तब मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो ! 'वाद' इस नामको ही नहीं जानता तो मैं पशुके समान वनमें फिरनेवाला वाद कैसे कर सकता हूं ? ॥७०॥

तब ब्राह्मणोंने कहा—हे मूर्ख ! यदि तू वादका नाम ही नहीं

जानता तो यह ब्राह्मणोंको वादीकी सूचना करनेवाली भेरीको बजाकर इस सुवर्ण सिंहासन पर क्यों बैठ गया? ॥७१॥ तब मनोवेगने कहा—मैं तो केवल कौतुकसे भेरी बजाकर इस सिंहासन पर बैठ गया न कि वादके घमण्डकी इच्छासे ॥७२॥ यदि सुवर्णके सिंहासन पर मूर्खका बैठना योग्य नहीं है तो हे विभो! लो मैं उतर जाता हूं ऐसा कहकर वह मनोवेग नीचे बैठ गया ॥७३॥ तब विप्रोंने कहा—तू यहां किस लिये आया है? मनोवेगने कहा—मैं भील हूँ। यह एक मार्जार बेचने आया हूँ ॥७४॥

ब्राह्मणोंने कहा—इस बिल्लीका महात्म्य तो क्या है और मूल्य क्या है सो कहो। भीलने (मनोवेगने) कहा—गरुड़से सर्पोंके समान इस बिल्लीकी गन्धमात्रसे बारह योजन (४८ कोस) तकके मूषक (चूहे) नष्ट हो जाते है ॥७५–७६॥ हे विभो! इस महा प्रभाववाले मार्जारका मूल्य पचास सुवर्णके पल (एक मुहर) है। यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो ले लो ॥७७॥ तत्पश्चात् समस्त ब्राह्मण परस्पर कहने लगे कि समस्त मूषकोंके नाश करनेमें समर्थ ऐसा यह मार्जार अवश्य ले लेना चाहिये ॥७८॥ एक दिनमें मूसे जितना द्रव्य नाश कर देते हैं तो क्या उससे हजारवां हिस्सा भी इसको नहीं दिया जावे? ॥७९॥ तत्पश्चात् समस्त ब्राह्मणोंने मिलकर उसी वक्त वह मार्जार पचास पल देकर ले लिया सो उचित ही है—'दुर्लभ्य वस्तुको प्राप्त करनेमें बुद्धिमान विलम्ब नहीं करते' परन्तु ॥८०॥

तब मनोवेगने कहा—हे विप्रो! यह बिडाल तुम परीक्षा करके ग्रहण करो नहीं तो बड़ी हानि होगी। उसका फिर मुझे दोष नहीं देना ॥८१॥ यह बात सुनकर उन ब्राह्मणोंने मार्जारको देखा तो

उसके कान न देखकर कहने लगे—इसके कान किस प्रकार नष्ट हो गये सो कहो ॥८२॥ तब मनोवेगने कहा—रात्रिको हम एक देवालयमें थके थकाये सो गये थे उस मंदिरमें चूहे बहुत थे ॥८३॥ वहीं पर यह बिडाल भी भूखके मारे अचेत निद्रामें सो रहा था, सो उन सब चूहोंने मिलकर इसके कान कुतर २ कर खा लिये ॥८४॥ तब ब्राह्मणोंने अत्यन्त हंसीके साथ कहा—हे मूर्ख ! तेरे वचन परस्पर विरुद्ध हैं। क्योंकि जिसकी गन्धमात्रसे १२ योजनके चूहे नष्ट हो जाते हैं, उसके कान चूहोंने कैसे काट खाये ॥८५-८६॥

तब जिनेन्द्र भगवानके चरणरूपी कमलोंमें भ्रमरके समान वह मनोवेग कहने लगा—विप्रगणो ! क्या इस एक दोषके कारण इसके समस्त गुण नष्ट हो गये ? ॥८७॥ ब्राह्मणोंने कहा—बेशक इस एक दोषसे इसके अन्य समस्त गुण भी गये। क्या कांजीका बिन्दुमात्र पड़जानेसे दूध नहीं फट जाता ? ॥८८॥ तब मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो ! इसके एक दोषसे सब गुण कदापि नष्ट नहीं हो सकते। क्या अन्धकारसे मर्दन किये हुये सूर्यके किरण कहीं चले जाते हैं ? ॥८९॥ हम तो दरिद्रके पुत्र हैं, वनमें पशुके समान रहनेवाले हैं, आपसे विद्वानोंके साथ विशेष वादविवाद नहीं कर सकते ॥९०॥

•

ब्राह्मणोंने कहा—भाई ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, किंतु इस बिलावका दूषण दूर कर। तब मनोवेगने कहा—॥९१॥ बेशक मैं इस मार्जारका दूषण दूर कर सकता हूँ, परन्तु आप ईश्वरके समान इस नगरके राजा हैं आपके साथ बोलते हुये मेरा मन भयभीत होता है ।९२। जो मनुष्य कूपमंडुकके समान अथवा कृतकबधिरके तुल्य

अथवा शिष्यजनकी सदृश होय तो उसके सामने यथार्थ तत्त्व (वस्तुका स्वरूप) कहते हुये मनमें भयकारक शँका होती है ॥९३॥ जो पुरुष शास्त्रकी बातको प्रमाण नहीं करे और अपनी वस्तुको छोटी होते भी बहुत बड़ी कहै और परवस्तुका परिणाम नहीं करे, वह पुरुष कूप-मण्डूकके सदृश कहाता है। ९४॥

जैसे एक समय समुद्र निवासी राजहंसको देखकर किसी कूएके मेंडकने पूछा—तुम कहां रहते हो? हंसने कहा—मैं समुद्रमें रहता हूं। तब मेंडकने पूछा—वह तेरा समुद्र कितना बड़ा है, तो हंसने कहा—बहुत बड़ा है ॥९५॥ तब मंडूकने अपने हाथ पांव पसार कर कहा कि समुद्र इतना बड़ा है, तब हंसने कहा—भाई, समुद्र बहुत बड़ा है। मेंडकने कहा—क्या मेरे कूएसे भी बड़ा है? तब हंसने कहा—भाई इससे बहुत ही बड़ा है। परन्तु उस मेंडकने हंसका कहना झूठ माना, जैसे कि एक कहावत है कि,—

" हाथ पसारे पांव पसारे और पसारा गात।
इससे बड़ा समुद्र है (तो) कहन सुननकी बात ॥१॥"

सो हे ब्राह्मणो! ऐसे कूपमंडूक सदृश जो सत्य वचनको भी स्वीकार नहीं करे उसको पंडित जन कुछ भी नहीं कहते। क्योंकि सत्पुरुष व्यर्थ कार्य कभी नहीं करते ॥ ९६-९७ ॥ जो पुरुष स्वजनोंके तथा शकुन शास्त्रके शब्दों द्वारा निवारण किया हुवा भी उन शब्दोंको नहीं सुनकर ढोल वगैरहके शब्दोंसे अन्य शब्दोंको आच्छादन करके किसी कार्यका प्रारम्भ करता है, वही निकृष्ट कृतकबधिर नामा मूर्ख कहाता है ॥ ९८ ॥

जो पुरुष राजाको तृष्णावान दुष्टमति, असहायक (कृपण) जानकर

भी नहीं छोड़ता और अनेक प्रकारके क्लेशोंको भोगता है, वही निंदनीय कृष्टभृत्य कहा गया है ॥९९॥

जो मनुष्य इन तीनोंके समान कार्य अकार्यको प्रगट करनेवाले वचनको चुटकियोंमें उड़ानेवाले, दीन निर्बुद्धि हैं, उनके प्रति पंडितजनोंकर पूजनीय अविनाशीक मोक्ष लक्ष्मीको देखनेवाले निर्दोष, अपरिमाण ज्ञानके धारक सत्पुरुषोंको चाहिये कि तत्त्व (वस्तुका यथार्थ स्वरूप) न कहैं ॥१००॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें दशवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १० ॥



ग्यारहवाँ परिच्छेद

अथानन्तर ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र! क्या हम ऐसे मूर्ख हैं? जो युक्तिसे प्रगटतया घटमान (सिद्ध किये हुये) वचनको भी नहीं समझें? ॥१॥ तब विद्याधरनाथके चतुर पुत्रने कहा—हे विप्रगणो! यदि ऐसा है तो मैं अपने मनोभावको प्रगट करता हूं सो सुनो ॥२॥

जिस प्रकार सूर्यमें तेज है उसी प्रकार निवास किया है दोष जिसमें ऐसी तपस्याका घर एक मंडप कौशिक नामका तपस्वी था ॥३॥ वह एक समय तारोंमें चन्द्रमाके समान पवित्र शरीरवाले तपस्वियोंके साथ भोजन करनेके लिये बैठा था, सो उसको निंदनीय चांडालके सदृश बैठा हुवा देखकर उसके स्पर्शका है भय चित्तमें जिनके ऐसे वे समस्त तपस्वी उसी वक्त खड़े हो गये ॥४–५॥

तब मंडप कौशिकने उनसे कहा—आपके साथ भोजन करते हुये मुझे कुत्तेके समान देखकर आप लोग क्यों उठ गये? ॥६॥ तब तपस्वियोंने कहा—तुमने पुत्रका मुख नहीं देखा, अभी तक कुमार ब्रह्मचारी ही हो, इस कारण तापसियोंके नियमसे बहिर्भूत हो, क्योंकि, ॥७॥ निपुत्रकी (जिसने पुत्रका मुख नहीं देखा हो उसकी) न तो गति होती है और न उसके तपसे स्वर्ग ही होता है। इस कारण पहिले गृहस्थाश्रम धारणपूर्वक पुत्रका मुख देखकर मोक्षके लिये तपस्या ग्रहण की जाती है। यदि तुझे मोक्षकी इच्छा होय तो पहिले गृहस्थाश्रम धारणपूर्वक पुत्रमुख दर्शन कर ॥८॥ तब वह मण्डपकौशिकने उन ऋषियोंकी आज्ञानुसार अपने जाति भाइयोंसे विवाहके लिये कन्या जाची (मांगी, किंतु उसकी उमर बहुतसी बीत जानेके कारण किसीने भी अपनी कन्या देना स्वीकार नहीं

किया ॥९॥ तब उसी बक तपस्वियोंके पास आकर पूछा कि मुझे वृद्ध समझकर कोई भी अपनी कन्या नहीं देता, सो अब मैं क्या करूँ ? ॥१०॥

तब उन ऋषियोंने आज्ञा करी कि तू किसी विधवाका ही ग्रहण करके सुख भोग। इसप्रकार करनेमें तुम दोनोंको कोई भी दोष नहीं है। क्योंकि हमारे ऋषिमतमें (स्मृतियोंमें) कहा है—॥११॥ ×पतिके परदेश चले जानेपर, नपुंसक होनेपर, रोगी दरिद्री होनेपर अथवा भाग जानेपर, पतित (जातिच्युत) होनेपर तथा मर जानेपर इन पांच आपदावोंमें स्त्रीके लिये दूसरा पति किया जाता है ॥१२॥ तब उसने ऋषियोंकी आज्ञानुसार एक विधवाका ग्रहण किया। यह जगत बिना उपदेश ही विषयोंमें लालसा रखते हैं, सो गुरुजनोंकी आज्ञा होनेपर तो क्यों न इच्छा करेंगे ? ॥१३॥ उस स्त्रीके साथ भोग-विलास करतेर उसके लक्ष्मीके समान रूपवती समस्तजनोंकर प्रार्थना करने योग्य एक अतिशय मनोहर कन्या उत्पन्न हुई ॥१४॥ वह कन्या ज्यों ज्यों बढ़ती गई त्यों त्यों ब्रह्मा विष्णु महेश और इन्द्रादिक देवोंके अनिवार्य कामदेवको बढ़ाने लगी ॥१५॥

वह कन्या तापे स्वर्णकी कान्तिके समान कांतिवाली, विद्वानोंको प्रिय ऐसे गुण कलाओंकी घर, 'छाया' नामको धारण करती हुई ॥१६॥ अपनी कांतिरूपी सम्पदासे समस्त स्त्रियोंको जीतकर तिष्ठी। जिसके समान उसकी छाया ही आदर्श रूप होती हुई. अन्य कोई भी स्त्री उसकी सदृशता धारण करनेवाली नहीं थी ॥१७॥ जिस प्रकार कृपणके घरमें परोपकारिणी लक्ष्मी होती है, उसी प्रकार

× 'पत्यौ प्रव्रजिते क्लीबे प्रणष्टे पतिते मृते। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते' ॥ १२ ॥

सुन्दर कन्या उस मंडपकौशिकके घर आठ वर्षकी हो गई ॥१८॥ एक दिन मंडपकौशिकने अपनी स्त्रीसे कहा—हे प्रिये ! मेरी इच्छा है कि समस्त पापोंको नाश करनेवाली तीर्थयात्रा करें परन्तु—। १९॥

सुवर्णके समान है कांति जिसकी शुभ लक्षणोंकी धारक, नवीन यौवनावस्थाको धारण करनेवाली इस छायाको किस देवके हाथ सौंप जावें ? क्योंकि जिसके सुपुर्द यह कन्या की जायगी, वही अपनी कर बैठेगा। क्योंकि इस लोकमें ऐसा कोई भी नहीं दीखता जो रामारूपी रत्नसे पराङ्मुख हो ॥२०–२१॥ जो रुद्र (महादेव) है सो ता सर्वकाल कामरूपी अग्निसे तप्तायमान होकर अपने आधे शरीरमें पार्वतीको रखता है, सर्पोंसे वेष्टित और विषमेक्षण है। तथा अपनी देहमें रहनेवाली प्रिय पार्वतीको छोड़कर गंगाको सेवन करता है, सो ऐसी उत्तम लक्षणोंवाली कन्याको कैसे छोड़ेगा ? ॥२२-२३॥ जिसके दुर्निवार हृदयमें अहोरात्र समुद्रके बड़वानलके समान महा तापकारक कामाग्नि प्रज्वलित हो रही है, उस महा कामी महादेवके हाथ यह कन्या किस प्रकार सौंपी जावे ? क्योंकि पंडितजन हैं, वे रक्षाके लिये मार्जारको (बिल्लीको) दूध कदापि नहीं सौंपते ॥२४-२५॥

तथा जो विष्णु नदियों द्वारा सेवन किये हुये समुद्रकी सदृश निरन्तर सोलह हजार गोपियोंको सेवन करता हुआ भी तृप्तिको प्राप्त नहीं होता और हृदय स्थित लक्ष्मीको छोड़कर गोपियोंमें रमता है, वह माधव इस सुन्दर कन्याको पाकर कैसे छोड़ेगा ? ॥२६–२७॥ सो हे प्रिये ! ऐसे विष्णुको यह कन्या किस प्रकार सौंपू ? 'क्या कोई रक्षा करनेके लिये चोरके ही हाथमें रत्न देता है' ॥२८॥ जिस ब्रह्माने देवांगनाके नृत्य मात्र देखनेके लिये अपनी उत्तम तपस्याको छोड़ दी, वह ब्रह्मा सुन्दर कामिनीको पाकर क्या नहीं

कौन सा ? ॥२९॥ वह कथा इस प्रकार है—

एक समय अचानक ही इन्द्रका आसन कम्पायमान होने पर इन्द्रने बृहस्पतिसे पूछा—हे साधो ! मेरा आसन किसने कम्पायमान किया ? ॥३०॥ तब बृहस्पतिने कहा—हे देव ! आपका राज्य लेनेकी इच्छासे ब्रह्माको तप करते हुये आज ४ हजार वर्ष बीत गये हैं। सो हे प्रभो ! उस तपके महाप्रभावसे ही आपका आसन कम्पित हो गया है। सो उचित ही है—'तपके प्रभावसे क्या साध्य नहीं है' ॥ ३१-३२ ॥ इस कारण हे हरे ! अब किसी उत्तम स्त्रीको भेजकर उसके तपको नष्ट कर। स्त्रीके सिवाय तप हरण करनेका अन्य कोई भी उत्कृष्ट उपाय नहीं है ॥३३॥

तब इन्द्रने मनोहर२ समस्त स्त्रियोंका (अप्सराओंका) तिल२ भर रूप (सौन्दर्य) ले ले कर एक बहुत सुन्दर स्त्री (अप्सरा) बनाई, जिसका नाम 'तिलोत्तमा' रक्खा और "तू ब्रह्माके पास जाकर उसको तपसे भ्रष्ट कर" इस प्रकार आज्ञा देकर उस तिलोत्तमाको ब्रह्माके पास भेज दिया ॥३४-३५॥ तत्पश्चात् तिलोत्तमाने उसी वक्त ब्रह्माजीके सन्मुख पहुँचकर पुराने मद्य (शराब) के समान मनको मोहित करनेमें तत्पर ऐसा रसपूरित सुन्दर नृत्य करना शुरू किया ॥३६॥ तथा उस चतुर तिलोत्तमाने ब्रह्माके कामरूपी वृक्षको बढ़ानेके लिये मेघके समान शरीरके गुप्त अवयव दिखाये, जिनके देखनेसे ब्रह्माकी चञ्चलदृष्टि उस तिलोत्तमाके शरीरमें—कभी पावोंमें कभी उसकी जंघा व ऊरुस्थलमें, कभी विस्तीर्ण जघनस्थलमें' कभी नाभिपर तो कभी दोनों स्तनों पर, स्तनों परसे हटी तो गर्दन तथा मुखरूपी कमलपर जा टीकी। इस प्रकार बहुत कालतक इधर उधर दौड़ती२ तथा विश्राम करती२ क्रीड़ा करने लगी ॥३७-३८-३९॥

वह मंदगामिनी तिलोत्तमा विलास विभ्रमकी आधारभूत विन्ध्याचलकी नर्मदाके समान ब्रह्माके हृदयको भेदती हुई ॥ ४० ॥ तत्पश्चात् उसने ब्रह्माको तल्लीन जानकर अनुक्रमसे दक्षिण उत्तर और पीठ पीछे नृत्य करके उसके मनको चारों तरफ घुमाया, परन्तु ॥ ४१ ॥

ब्रह्माजीने लज्जाके वशीभूत होकर नाच देखनेके लिये अपनी गर्दनको इधर उधर घुमाकर नहीं देखा। सो उचित ही है— "लज्जा मान और मायासे कोई भी उत्तम काम नहीं होता" ॥४२॥ जब लज्जा और मानके वश अपनी गर्दनको घुमाकर तिलोत्तमाके रूपको नहीं देख सका तो लाचार होकर उस नष्ट बुद्धि ब्रह्माने एक एक हजार वर्षकी तपस्याका फल व्यय करके प्रत्येक दिशामें एक एक नया मुँह बनाकर उसके रूपको निरखने लगा ॥४३॥ जब उस तिलोत्तमाने ब्रह्माको अतिशय आसक्त दृष्टिवाला देखा तो वह फिर आकाशमें उठकर नृत्य करने लगी। सो ठीक ही है, 'स्त्रियें किञ्चित्त पुरुषोंको क्या क्या नाच नहीं नचातीं' ॥४४॥ लाचार, ब्रह्माने पांचसौ वर्षकी तपस्याका फल व्यय करके पांचवां गधेका मुंह बनाया और उस तिलोत्तमाको आकाशमें देखने लगा, परन्तु न तो उस तिलोत्तमाके नृत्यको ही देखने पाया और न तप ही पूरा हुआ। रागके वशीभूत होकर वह ब्रह्मा दोनों ही तरह नष्टभ्रष्ट हुआ ॥४५-४६॥

इस प्रकार वह तिलोत्तमा ब्रह्माको तपसे रहित (भ्रष्ट) करके स्वर्गमें चली गई। सो ठीक ही है, स्त्री समस्त रागियोंको मोहित करके ठग लेती है ॥४७॥ जब उस नष्टबुद्धि ब्रह्माने तिलोत्तमाको नहीं देखा तो बहुत ही उदास और खिसियाना

होकर दर्शनार्थ आये हुये देवों पर क्रोध करने लगा और अपने गधेके मुखसे उन देवोंको खानेके लिये तत्पर हुवा। सो उचित ही है,—'खिसियाना होनेवाले मनुष्य स्वभावसे ही हरएक पर क्रोध किया करते हैं' ॥ ४८–४९ ॥ तत्पश्चात् वे देवता घबराकर महादेवजीके पास पहुँचे और उनसे उन सबने ब्रह्माजीके पागल होनेके सब समाचार कहे, सो ठीक ही है 'अपने दुःखको नष्ट करनेके लिये सभी जने उपाय करते हैं' ॥५०॥

देवोंकी प्रार्थना सुनकर महादेवजी उसी वक्त ब्रह्माके पास पहुँचे और उन्होंने गधेका पांचवां शिर काट लिया। सो ठीक ही है,—'परके अपकार करनेवालोंका मस्तक काटा जावे तो इसमें सन्देह ही क्या है,'—॥५१॥ तत्पश्चात् ब्रह्माने भी अतिशय क्रोध करके महादेवजीको श्राप दी कि 'तूने जा यह ब्रह्महत्या की है, इसके कारण तेरे हाथसे यह शिर कभी नहीं पड़ेगा' ॥५२॥ तब महादेवजीने लाचार होकर प्रार्थना की कि हे साधो! बेशक मैंने ब्रह्महत्या की, परन्तु अब आप मुझपर दया करके इस श्रापसे छुटाइये। तब ब्रह्माने पार्वतीके पतिसे (महादेवजीसे) कहा—हे शम्भो! इस मेरे मस्तकको जब विष्णु भगवान् अपने रक्तसे सिंचन करेंगे तो उसी समय यह मेरा शिर तेरे हाथमेंसे गिर पड़ेगा! ॥५३–५४॥ तब महादेवजीने ब्रह्माकी आज्ञा शिरोधारण कर कपाल व्रत अंगीकार किया। सो खेद है कि सर्वव्यापी प्रपंच देवोंसे भी नहीं छोड़ा जाता ॥५५॥

तत्पश्चात् उस ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये महादेवजी हरिके (विष्णुके) पास गये। सो ठीक ही है—'अपनेको पवित्र करनेके लिये ये जगतजन किसका आश्रय नहीं करते?' ॥५६॥ इधर ब्रह्माजीने मृगोंसे भरे हुये एक वनमें प्रवेश किया। सो ठीक ही है

तीव्र कामरूपी अग्निसे सन्तप्त पुरुष चेतना रहित होकर क्या नहीं करता ?' ॥५७॥ उस वनमें एक रीछनीको ऋतुमती देखकर ब्रह्माजी उसके साथ ही रमने लगे। सो उचित ही है, कि—'कामाग्निसे पीड़ितजनोंको गधी भी अप्सरा दीखती है' ॥५८॥ उस रीछनीने गर्भ धारण कर पूरे दिन होने पर तीन भवनमें प्रसिद्ध जांबव नामक पुत्र जना ॥५९॥ इस प्रकार जो ब्रह्मा कामार्तचित्त होकर तिर्यंच-नीको भी सेवन करता है वह मूढधी इस सुन्दर कन्याको कैसे छोड़ेगा ? ॥६०॥

तथा गौतमऋषिकी वल्लभा (स्त्री) अहल्याको कामकी वेला समान सुनकर जिस समय पारकी लम्पट इन्द्र विकल हो गया ॥६१॥ तब गौतमऋषिने क्रुद्ध होकर श्राप दी तो वह इन्द्र सहस्रभग हो गया। सो ठीक ही है,—'मन्मथके आज्ञाकारी ऐसे कौन पुरुष हैं' जो दुःखको प्राप्त नहीं होते ? ॥६२॥ जब देवोंने बहुत प्रार्थना की कि हे मुने ! कृपा करो (माफ करो) तब उस अनुग्रहकारी मुनिने इन्द्रको सहस्राक्ष (हजार नेत्रवाला) बना दिया ॥६३॥ इस प्रकार काम या मोह तथा मृत्यु द्वारा पीड़ित नहीं हो, ऐसा दोषरहित देव इस लोकमें कोई भी नहीं दिखता। परन्तु एक यमराज देव है, सो वास्तवमें सत्यता और पवित्रतामें परायण, अपने विपक्षको मर्दन करनेमें धीर और समवर्त्ती है ॥६४–६५॥

सो उसीके पास इस कन्याको रखकर जाना चाहिये, ऐसा विचार कर उस छाया नामक अपनी कन्या यमराजके पास रखकर वह मण्डपकौशिक अपनी स्त्री सहित तीर्थयात्राको चला गया। सो ठीक ही है—'पंडितजन निराकुल होने पर ही धर्मकार्योंमें प्रवृत्ति करते हैं' ॥६६–६७॥ उसके चले जानेके पश्चात् यमराजने उस छायाको

कामरूपी वृक्षके लिये पृथ्वीके समान देखकर उसी वक्त अपनी स्त्री बना ली। क्योंकि 'दुनियामें ऐसा कोई भी नहीं होगा, जो स्त्रियोंमें निस्पृह हो' ॥६८॥ यमराजने उस छायाको हरी जानेके भयसे अपने पेटमें रख (छिपा) लिया। सो उचित ही है,–कुबुद्धि कामीजन अपनी प्रिय स्त्रीको कहां नहीं रखते' ॥६९॥ तत्पश्चात् वह यमराज उसको पेटसे निकाल२कर उसके साथ बारंबार रमने लगा। और रमण करनेके पश्चात् हरी जानेके भयसे फिर अपने पेटमें रख लेने लगा ॥७०॥

इसप्रकार यमराज उसके साथ रतामृत भोगते२ अपना समय सुखसे व्यतीत करता हुवा अपनेको इन्द्रसे भी अधिक मानने लगा ॥७१॥ यह नीति है कि, लेखनी पुस्तक और स्त्री पराये हाथ गई हुई वापिस नहीं आती। यदि आती है तो टूटी फटी मर्दन की हुई मिलती है ॥७२॥ एक समय पवनदेवने अग्निदेवसे कहा–हे भद्र ! देवोंमें तो आजकल एक यमराज ही अपना काल सुखसे बिताता है। क्योंकि उसने सुरतामृतकी नदीके समान एक मनोहर स्त्री पाई है। सो उसको दृढालिंगन कर सुखरूपी सागरमें मग्न होकर सोता है ! !॥७३–७४॥ उस नितम्बिनीके दिये हुये पवित्र सुखमें गंगाके जलसे समुद्रके समान यमराज कभी तृप्त ही नहीं होता ॥७५॥

यह सुनकर अग्निदेवने कहा—उसके साथ मेरा समागम किस प्रकार हो ? तब पवनदेवने कहा–॥७६॥ यमराजसे रक्षा की हुई स्त्री देखनेको भी नहीं मिलती तो उसका मिलाप किस प्रकार हो सकता है ? ॥७७॥ क्योंकि वह स्त्री अपनी शोभासे समस्त देवताओंको मोहनेवाली है। सो यमराज रतामृत भोगनेके पश्चात् अपने पेटमें रख लेता है ॥७८॥ परन्तु जिस समय यमराज नित्यकर्म करता

है उस समय उसको एक प्रहर तक उदरसे बाहर निकालकर रखता है, सो उस समय बेशक वह अकेली ही स्पष्टतया देखनेमें आती है ॥७९॥ तब अग्निदेवने कहा—हे वायु ! एक पहरमें तो मैं तीन लोकमेंसे किसी भी स्त्रीको ग्रहण कर सकता हूँ, सो एकान्तमें बैठी हुईकी तो बात ही क्या है ? ॥८०॥

आचार्य कहते हैं—यौवनसे भूषित है अंग जिसका और कामसे व्यापित है शरीररूपी यष्टि जिसकी, ऐसी एकान्तमें बैठी हुई अकेली स्त्रीको युवा पुरुष तुरन्त ही अपने वशमें कर लें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ! ॥८१॥ तीक्ष्ण कामरूपी बाणसे भिद गया है शरीर जिसका ऐसा वह अग्निदेव वायुको इस प्रकार कहकर जहांपर यमराज उस तन्वीको उदरसे निकालकर अघमर्षण (नित्यकर्म) किया करता था, वहींपर जा पहुँचा ॥८२॥ यमराजने आकर छायाको बाहर निकालकर पापरूपी मैलसे विशुद्ध होनेके लिये गंगाजीमें प्रवेश किया, उसी वक्त अग्निदेव अपना अत्यन्त मनोहर रूप बनाकर और छायाको ग्रहण करके उसके साथ रमने लगा ॥८३॥ जिस प्रकार हरे पत्तोंके समूहको देखकर मूर्ख बकरी उन पत्तोंको खाने लग जाती है, उसी प्रकार रक्षा नहीं की हुई निरंकुश स्त्री मनसे प्रसन्न हो अपने मन चाहे इष्ट पुरुषको ग्रहण कर लेती है। और रोकनेपर प्राय: कोप किया करती है ॥८४॥ उस अग्निदेवके साथ रमण करनेके पश्चात् छायाने कहा—तू यहांसे शीघ्र ही चला जा; क्योंकि मेरे पति विरुद्धवृत्ति यमराजके आनेका समय हो गया है ॥८५॥

वह यदि मुझे तेरे साथ देखेगा तो गुस्से होकर मेरी नाशिका काट लेगा और तुझे भी जानसे मार डालेगा। क्योंकि—'अपनी

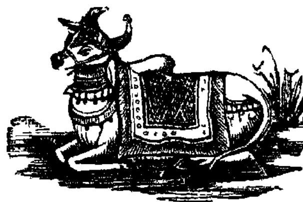
स्त्रीके जारको देखकर कोई भी क्षमा नहीं करता' ॥८६॥ तब उस पीनस्तनसे पीडित अंगवाली छायाको आलिंगन देकर अग्निदेवने कहा—हे प्रिये ! तुझे छोड़कर मैं चला जाऊं, तो मुझे दुष्टचित्त-वाला वियोगरूपी हस्ती मार डालेगा ॥८७॥ इस कारण हे प्रिये ! तेरे सन्मुख दुष्ट यमराजके हाथसे मारा जाऊँ तो बहुत ही श्रेष्ठ है, परन्तु दुःखसे है अंत-जिसका ऐसी कामरूपी अग्निसे तेरे विना निरन्तर जलते रहना श्रेष्ठ नहीं ॥८८॥ इसप्रकार कहते हुये अग्नि-देवको उस छायाने उसी समय निगलकर अपने पेटमें रख लिया। सो अपने प्रिय पुरुषको स्त्रीने हृदयमें रख लिया तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है ॥८९॥ तत्पश्चात् यमराज अपना नित्य कर्म करके इस बातको कुछ भी नहीं जानकर छायाको अपने पेटमें रखकर चल दिया। सो उचित ही है-'स्त्रियोंका प्रपंच विद्वानोंको भी अगम्य है' ॥९०॥

उधर अग्निदेव तो छाया और यमराजके पेटमें अटक गये, इधर उनके (अग्निके) विना संसार भरमें रसोई बनाना, होम करना, प्रदीप जलाना आदि समस्त काम बन्द हो गये। तब मनुष्य और देव सबके सब अग्निके बिना अपना नाश समझके घबरा गये ॥९१॥ फिर लाचार होकर इन्द्रने वायुदेवसे कहा—हे सखे ! तू सर्वत्र फिरता है और तेरी समस्त देवोंके यहां गति है। अग्निदेव कहां है, सो तुम ढून्ढकर पता लगावो ॥९२॥ वायुने कहा—हे देव ! मैंने अग्निदेवको सर्वत्र ढूंढ लिया, परन्तु कहीं भी पता नहीं लगा। हां एक जगह मैंने नहीं ढूंढा है, सो हे देवेश ! उस जगह भी ढूंढता हूं ॥९३॥

इस प्रकार कहकर वायुदेवने उत्तमोत्तम भोजन बनाकर समस्त

देवोंको निमन्त्रण किया, जब उसके सब देव आ गये, तब उसने हरएक देवके लिये तो एक एक आसन दिया, परन्तु यमराजके लिए तीन आसन दिये ॥९४॥ जब समस्त देव बैठ गये तो अपरिमाण है गति जिसकी ऐसे वायुदेवने हरएक देवको तो एक२ भाग परोसा परन्तु यमराजको तीन भाग (पत्तल या थालीमें) भोजन परोसा, सो ठीक ही है, प्रपंच किये बिना किसीका भी कार्य सिद्ध नहीं होता ॥९५॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें ग्यारहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ ११ ॥



बारहवाँ परिच्छेद

अथानन्तर—जब अपने सन्मुख भोजनके तीन भाग परोसे हुये देखे तो यमराजने वायुदेवसे कहा—हे पवन ! तूने मेरे सामने तीन भाग क्यों रक्खे ? ॥ १ ॥ यदि मेरे पेटमें एक स्त्री है तो दो भाग परोसने थे, तूने तीन भाग किस कारण परोसे ? ॥२॥ यह सुनकर पवनदेवने कहा—हे भद्र ! अपनी मनकी प्यारी स्त्रीको पेटसे निकाल, तो अपने आप ही तीन भाग परोसनेका कारण मालूम हो जायगा ॥३॥ जब प्रेतभर्त्ताने (यमराजने) अपने पेटमेंसे छायाको निकाला तब तत्काल ही वायुदेवने छायाको कहा—हे भद्रे ! अपने उदरस्थित अग्निदेवको शीघ्र ही निकाल ॥४॥ जब छायाने अपने पेटमेंसे प्रकाशमान अग्निदेवको निकाल दिया तो यह कौतुक देख समस्त देव आश्चर्यान्वित हो गये। सो उचित ही है 'अदृष्टपूर्व (जो पहिले नहीं देखनेमें आई ऐसी) वस्तुके देखनेसे किसको आश्चर्य नहीं होता' ॥५॥

जो स्त्री कामातुर होकर जलती हुई अग्निको निगल जाती है उस स्त्रीको कोई भी वस्तु प्राप्त करना दुर्गम व दुष्कर नहीं है ॥६॥ यमराज अग्निको देखकर बड़ा क्रोधित हुआ और दण्ड लेकर मारनेके लिये तत्पर हो गया, सो नीति ही है—'प्रत्यक्षमें अपनी स्त्रीके जारको देखकर ऐसा कौन है जो उसपर क्षमा कर दे' ॥७॥ यमराजको दण्ड लिये हुए देखकर अग्निदेव भागे। सो उचित ही है—'नीच, जार व चोरोंको धीरता कहां' ॥८॥ भागतेर थक गया तो अग्निदेव वृक्ष पाषाण वगैरहमें छिपकर बैठ गया। सो ठीक ही है 'व्यभिचारी व चोर छिपकर ही रहते हैं' ॥९॥ जो अग्नि उस समय

यमराजके भयसे वृक्ष पत्थरोंमें छिपी थी, सो अभीतक बुद्धिमानोंके प्रयोग विना प्रगट नहीं होती है ॥१०॥

इस प्रकार कहकर मनोवेगने पूछा—हे विप्रो ! आपके पुराणोंमें यह कथा इसी प्रकार है कि नहीं ? ब्राह्मणोंने कहा—निस्संदेह ऐसी ही कथा है। तब मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणों ! जो यमराज सबके शुभाशुभका ज्ञाता है और हमेशा शिष्टोंपर अनुग्रह और दुष्टों पर दण्ड करनेवाला है उसने यदि अपने पेटमें स्थित प्रियाके पेटमें अग्निदेवको रहते हुये भी नहीं जाना, सो उसका देवपणा व अग्निका देवपणा क्यों नहीं चला गया ? ॥११-१२-१३॥ जिस प्रकार इस छोटेसे दोषसे उनका देवपणा नहीं गया उसी प्रकार मूर्खोंके द्वारा मेरे मार्जारके कान काटे जानेसे अन्य जो बड़ेर गुण हैं वे कैसे जा सकते हैं ॥१४॥

यह सुनकर ब्राह्मणोंने प्रशंसापूर्वक कहा—हे भद्र ! तुमने बहुत ठीक कहा। सो नीति ही है—'जो समझदार सत्पुरुष होते हैं, वे न्यायरहित पक्षका समर्थन कदापि नहीं करते' ॥१५॥ हे भद्र ! हम अपने पुराणोंका ज्यों ज्यों विचार करते हैं त्यों त्यों उनके जीर्ण वस्त्रोंके समान सैकडों खण्ड होते हैं, सो क्या किया जाये, उनका हम किसी प्रकार भी समर्थन नहीं कर सकते ॥१६॥ इसप्रकार ब्राह्मणोंके वचन सुनकर विद्याधरपुत्र मनोवेगने कहा—हे विप्रो ! संसाररूपी वृक्षको अग्निके समान जो देव है उसका स्वरूप सुनो ॥१७॥ जिसका चित्त, लावण्यरूपी जलकी लहर, कामदेवके रहनेकी वस्ती, गुण और सुन्दरताकी खानि, कटाक्षरूपी बाणोंके द्वारा समस्त जनोंको घायल करनेवाली, त्रिलोकीमें सबसे श्रेष्ठ ऐसी स्त्रियोंके द्वारा नहीं भिदता, उसी देवको मन वचन कायकी शुद्धि-

पूर्वक नमस्कार करो और उसीकी शरण ग्रहण करो ॥१८-१९॥

भो विप्रो ! जिस कामके वशीभूत हो शंकरने अपना पवित्र और मोक्षका कारण योग छोड़कर पार्वतीको अपने आधे अंगमें स्थापन किया और—॥२०॥ जिस कामदेवकी आज्ञासे सुखकी इच्छा रखनेवाला विष्णु गोपियोंके नखच्छदोंसे शोभित अपने हृदयमें लक्ष्मीको रखता हुआ तथा—॥२१॥ जिसके बाणोंसे पीड़ित होकर ब्रह्माजीने तृणके समान तपश्चरणको छोड़ दिव्य तिलोत्तमाके नृत्यको देखनेके लिये चतुर्मुख बनाये तथा—॥२२॥ जिसने अपने दुर्वार तीक्ष्ण बाणोंसे घायल कर इन्द्रको दुष्कर्मोंका घर और सहस्र भग बना दिया तथा—॥२३॥ जिस कामदेवकी आज्ञासे समस्त देवोंको आज्ञामें चलानेवाले सबसे बलवान् यमराजने चोरी जानेके भयसे छाया नामकी लड़कीको पेटमें रखकर प्रिया बनाया तथा—॥२४॥ जिस कामदेवने त्रिलोकीमें रहनेवाले समस्त देवोंमें प्रधान अग्निदेवको पत्थर और वृक्षोंमें प्रवेश करा दिया, ऐसे दुर्जय कामदेवको जिस देवने जीत लिया, उसी परमेष्ठीके प्रसादसे ही सबका कल्याण हो सकता है ॥२५-२६॥

इस प्रकार ब्राह्मणोंके सन्मुख परमात्माका विचार करके उस मनोवेगने उसी बागमें उपस्थित हो, अपने मित्र पवनवेगसे कहा—॥२७॥ हे मित्र ! तूने अन्य मतावलम्बियोंके माने हुये देवोंका विशेष सुना ? विचार करनेमें चतुर है आशय जिनका ऐसे पुरुषोंको चाहिये कि—अपने विचारके बलसे ऐसे रागी द्वेषी कामी देवोंको छोड़ दें ॥२८॥ हे मित्र ! समस्त देवोंमें अणिमा महिमादि अष्ट रिद्धियां प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे लघिमा (नीचपना) नामकी ऋद्धि ही इन देवोंमें विशेषता देखनेमें आती है, क्योंकि—॥२९॥ ब्रह्मा तो

महादेवके विवाहमें पुरोहित (विवाह करानेवाला) बनकर गया था, जो पाणिग्रहण कराते समय पार्वतीके स्पर्श मात्रसे कामसे पीड़ित हो गया था और—॥२०॥

महादेवने नृत्य करते समय ऋषियोंकी कन्याओंको कष्ट दिया, जिससे वह उन ऋषियोंके द्वारा शिश्नच्छेदनकी दुःसह पीड़ा भोगता हुवा और—॥२१॥ अहिल्याने इन्द्रको, छायाने यमराज और अग्निको, कुन्तीने सूर्यको अखंडित नीचपनेके कार्यमें प्रवर्त्ताया ॥३२॥ इस प्रकार लोकमें अनेक देव हैं परन्तु जिसने कामदेवको नष्ट कर दिया ऐसा लोक सम्मत निर्दोष देव एक भी नहीं है ॥३३॥ हे साधु! अब जैन मतमें गधेके शिर छेदनका जो सच्चा इतिहास है, वह कहता हूं सो सुन—॥३४॥ जिस मतमें ११ रुद्र माने गये हैं, उनमेंसे अन्तका रुद्र सात्यकी नामक मुनिके अंगसे ज्येष्ठा नामकी अर्जिका (जैन साध्वी) के गर्भसे उत्पन्न हुआ था। सो वह बड़ा होनेपर मुनि दीक्षा ग्रहण करके दुष्कर तपश्चरणके प्रभावसे अनेक प्रकारकी विद्याओंका स्वामी हो गया ॥३५॥

जिस प्रकार समुद्रमें नदियोंका मिलाप (प्रवेश) होता है, उसी प्रकार इस वीर मुनिको पांचसौ तो बड़ी २ विद्यायें और सातसौ छोटी २ विद्यायें प्राप्त हुयीं ॥३६॥ सो वह ग्यारहवां रुद्र जिनमतके ग्यारह अंग चौदह पूर्वमेंसे दशमें पूर्वतकका पाठी था। उस दशमें पूर्वमें विद्याओंका (देवांगनाओंका) अपरिमाण विभव देखकर मुनिके व्रतसे चलायमान हो गया। सो ठीक ही है,—'अनेक प्रकारके भोगाभिलाष करनेवाली स्त्रियोंके द्वारा ऐसा कौन पुरुष है जो व्रतसे चलायमान न हो! ॥३७॥ तब उस मुनिने एक जगह विद्याधरोंकी आठ कन्याओंको देखकर उसी समय मुनिपनेको छोड़ उन कन्याओंके

विद्याओंसे याचना की, और उन्होंने आठों कन्या इस रुद्रको परणा दीं। परन्तु— ॥३८॥ उस रुद्रके साथ रतिकर्म करनेमें असमर्थ हो, वे आठों ही विद्याधरकी पुत्रियां मर गयीं, सो नीति ही है—'जो विपरीत कार्य (बे जोड़के विवाह वगैरह) होते हैं, वे सब सत्यनाशके लिये ही होते हैं' ॥३९॥

तत्पश्चात् उस महादेवने (रुद्रने) अपनी विद्याओंके द्वारा पर्वत-राजकी बेटी पार्वतीको अपने रतिप्रभावको सहनेवाली समझकर उसके साथ विवाह किया। सो ठीक ही है, जो मनवांछित कार्य करनेवाले हैं, वे सब योग्य उपायोंमें ही यत्न करके अपना इच्छित कार्य सिद्ध करते हैं ॥४०॥ एक दिन वह रुद्र पार्वतीके साथ रमण करके त्रिशूल विद्याको ग्रहण करता था, सो परभर्तारसे पतिव्रताके समान शीघ्र ही वह त्रिशूल विद्या नष्ट हो गई ॥४१॥ उस त्रिशूल विद्याके नष्ट होनेपर स्वाभिमानमें तत्पर वह रुद्र ब्राह्मणी नामकी एक दूसरी विद्याको साधने लगा ॥४२॥ सो उस ब्राह्मणी विद्याकी प्रतिमा बनाकर उसके सन्मुख मंत्रका जाप करने लगा। तब ब्राह्मणी विद्याने इसको ध्यानसे डिगानेके लिये विक्रिया करना प्रारम्भ किया ॥४३॥ सो उसने आकाशमें बाजे बजाना गीत गाना नृत्य करना आदि विघ्न शुरू किये। जब यह रुद्र ऊपरको देखने लगा तो उसने एक सर्वोत्तम स्त्रीको देखा ॥४४।

जब उस रुद्रने नीची दृष्टि करके उस प्रतिमाकी जगह पर एक दिव्य चतुर्मुखी मनुष्यको देखा। तथा—॥४५॥ उसके शिरपर एक गधेका मुख बढ़ता हुवा देखा, सो उस रुद्रने उस बढ़ते हुये शिरको उदय होते हुये कमल पत्रके समान उसी वक्त काट लिया। परन्तु वह शिर सुख सौभाग्यादिको नष्ट करनेवाले पापके समान उसके हाथमें लगा ही रह गया। नीचे नहीं गिरा ॥४६-४७॥

इस प्रकार वह ब्राह्मणी विद्या उसकी विद्या साधनेरूप जपादि क्रियाको व्यर्थ (नष्ट) करके अपनी विक्रियाको संकोच कर चली गई। सो ठीक ही है—'निरर्थक (निकम्मे) पुरुषके निकट कोई भी स्त्री नहीं रहती' ॥४८॥ तत्पश्चात् उस रुद्रने रात्रिके समय वर्द्धमान भगवानको श्मशान भूमिमें पद्मासनसे ध्यानारूढ देखकर उनको विद्यारूपी मनुष्य समक्ष बड़ा उपद्रव किया ॥४९॥ जब प्रातःकाल होनेपर मालूम हुआ कि ये ता वर्द्धमान भगवान् हैं, तब उसने उदास होकर नमस्कार पूर्वक बड़ा पश्चात्ताप किया और शीघ्र ही उनके चरणोंका स्पर्शन किया ॥५०॥

सो जिनेन्द्र भगवानके स्पर्शन मात्रसे ही उसके हाथमेंसे विनयवानके मनसे पापके समान वह गधेका शिर गिर पड़ा ॥५१॥ हे मित्र! खरमस्तकके कटनेका तो यह प्रक्रम (सच्चा इतिहास) है, परन्तु मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे अंधे हुये पुरुषोंने और ही प्रकारसे प्रसिद्ध करके जगत्के भोले भाले जीवोंको बहका दिया है ॥५२॥ हे मित्र! तुझे मैं फिर भी बड़ा कौतुक दिखाता हूं, ऐसा कहकर मनोवेगने नग्नमुद्रा युक्त जैनके मुनिका रूप धारण किया और मित्र पवनवेगको साथ लेकर उस चतुर धर्मात्मा मनोवेगने पश्चिमकी तरफसे उस पुष्पनगरमें (पटनेमें) प्रवेश किया और—॥५३-५४॥ तीसरी वादशालामें जाकर वह ब्राह्मणोंके मनमें वादीके आनेकी सूचना करनेके लिये वादसूचक भेरीको बजाकर सोनेके सिंहासन पर जा बैठा ॥५५॥

जिस प्रकार मेघकी गर्जना सुनकर अपनी गुफामेंसे केशरीसिंह निकलते हैं, उसी प्रकार उस भेरीके शब्दको सुनते ही पक्षपातमें तत्पर सबके सब ब्राह्मण पंडित अपनेरे घरसे निकल पड़े ॥५६॥

उन ब्राह्मणोंने आकर पूछा—हे भद्र। तुम हमारे साथ कौनसा वाद करना चाहते हो? तब मनोवेगने कहा—हे विप्रो! 'वाद' किस चीजको कहते हैं, सो मैं नहीं जानता ॥५७॥ तब ब्राह्मणोंने कहा—जब वादका नाम ही नहीं जानता तो वादसूचक भेरी किस-लिये बजाई? तब मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणों! मैंने यों ही कौतुकसे बजा दी और-॥५८॥ जन्मसे आजतक मैंने ऐसा मनोहर आसन नहीं देखा था, इस कारण मै इसपर बठ गया, न कि वादके गर्वसे। इसलिये क्रोध न करो, लो मैं उतर जाता हूँ ॥५०॥ तत्पश्चात् ब्राह्मणोंने कहा—तेरा गुरु कौन है सो कह। मनोवेगने कहा—मेरा गुरु कोई भी नहीं है, मैंने अपने आप ही तपग्रहण कर लिया है ॥६०॥

तब ब्राह्मणोंने कहा—हे सुबुद्धे! तुमने विना गुरुके अपने आप ही तपग्रहण किया सो इसका क्या कारण है? ॥६१॥ तब मनोवेगने कहा—हे द्विजो! मैं इसका कारण कहते डरता हूं। परन्तु तो भी एक बात कहता हूं सो सुनो ॥६२॥

चम्पानगरीमें गुरुधर्म राजाके मन्त्री हरि नामक द्विजने एक दिन पानीमें एक शिला तरती हुई देखी, उस समय उसके पास दूसरा कोई नहीं था ॥६३॥ उसने राजसभामें आकर यह प्रत्यक्ष देखा हुआ आश्चर्य राजाके सन्मुख प्रगट किया तो राजाने इसपर कुछ भी विश्वास नहीं किया। किन्तु उल्टा क्रोधित होकर इस असत्य कथनके अपराधमें मन्त्रीको बन्धवा दिया और कहा—इस ब्राह्मणको अवश्य ही कोई पिशाच (भूत) लग गया है। यदि ऐसा नहीं होता तो यह ऐसी असंभव बात कदापि नहीं कहता ॥६४-६५॥

तत्पश्चात् उस मन्त्रीने कहा—हे देव! मैंने यह बात झूठ

ही कह दी थी, सो अपराध क्षमा करो। इस प्रकार प्रार्थना करनेपर राजाने मन्त्रीको छोड़ दिया ॥६६॥ फिर मन्त्रीने इसका बदला लेनेकी इच्छासे अनेक बंदरोंको बाजा बजाना और नाचना सिखाकर तैयार किये फिर—॥६७॥ एक दिन वनमें राजाको अकेला देख उन बंदरोंका मनोहर संगीत कराया जिसको देखकर राजा मोहित हो गया ॥६८॥ जब राजाने तुरन्त ही अपने मन्त्री और भट्टोंको वह संगीत दिखानेके लिये बुलाया, इतनेमें वे सब बन्दर अपना संगीत बंद करके इधर उधर भाग गये ॥६९॥ तब मन्त्रीने कहा—हे भट्टगणों! राजाको अवश्य ही कोई भूत लग गया है, सो इनको बांध लो, यद्धाओंने उसी वक्त राजाको बांध लिया। तत्पश्चात् उस तुष्ट-चित्त मन्त्रीने हँसकर राजाको छोड़ दिया और कहा—हे राजन्! जिस प्रकार आपने वनमें बंदरोंका नृत्य देखा, उसी प्रकार मैंने जलमें तरती हुई शिला देखी थी ॥७०-७१-७२॥ राजा और मन्त्रीके वृत्तान्तको जाननेवाले विद्वनोंको चाहिये कि प्रत्यक्ष देखा हुआ भी अश्रद्धेय वचन कदापि नहीं कहे ॥७३॥

इसी प्रकार हे ब्राह्मणो! साक्षी विना मुझ अकेलेके कहे हुये वाक्यका आप विश्वास नहीं करेंगे। इस कारण मैं पूछनेपर भी अपना हाल नहीं कह सकता ॥७४॥ तब ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र! क्या हम ऐसे मूर्ख हैं जो युक्तिसे घटते हुये वाक्यको भी नहीं पहचाने? ॥७५॥ तब मनोवेगने कहा—यदि आप सत्यासत्यका विचार करने-वाले हैं तो मैं स्पष्टतया कहता हूँ सो एक चित्त होकर सुनो ॥७६॥

श्रीपुरमें मुनिदत्त नामका श्रावक मेरा पिता है। उसने मुझे एक ऋषिके पास पढ़नेके लिये भेज दिया ॥७७॥ एक दिन उस ऋषिने अपना कमंडलु देकर मुझे जल लानेके लिये भेजा। मैं मार्गमें

लड़कोंके साथ बहुत देर तक खेलनेमें लग गया ॥७८॥ तब कई विद्यार्थियोंने आकर कहा—तेरेपर गुरुजी बड़े क्रोधित हो गये हैं, सो हे मित्र ! भाग जा नहीं तो गुरुजी आकर तुझे मारेंगे ॥७९॥ तब मैंने अन्य नगरोंमें भी पढ़ानेवाले साधु अनेक हैं, उनसे पढ़ लूँगा, ऐसा विचार कर मैं वहांसे भागा हुआ दूसरे नगरको चल दिया ॥८०॥

तत्पश्चात् एक नगरके निकट पहुँचा तो जलके निर्झरने सहित चलते हुये पर्वतके समान मदरूपी जलसे पृथ्वीको सींचते हुये एक बहुत बड़े हाथीको अपने सन्मुख आता हुआ देखा ॥८१॥ सो शरीर सहित अनिवार्य मृत्युके समान तथा मुझे देख क्रोधित होकर महावतके अँकुशको न माननेवाला वह महा भयंकर हाथी पूंछ और कानोंको चलायमान करता हुआ अपनी विस्तीर्ण सूँड उठाकर मेरे पीछे भागने लगा ॥८२॥ तत्पश्चात् कोई शरण न पाकर भागनेमें असमर्थ हो मैंने वह कमंडलु तो भिडीके एक वृक्षपर रख दिया और मारे डरके मैं कांपने लगा ॥८३॥ दैवयोगसे उसी समय मेरे चित्तमें एक बुद्धि उपजी। मैं उस हाथीके भयसे झटपट उस कमंडलुकी नाल (टोंटी) से कमंडलुमें प्रवेश कर छिप गया और 'इस कष्टसे मैं मुक्त हो गया' इस प्रकार क्षणभर प्रसन्न चित्त हो विचार कर ही रहा था कि इतनेमें ही—॥८४॥

वह विरुद्ध-चित्त गजराज भी शीघ्र ही उस कमंडलुमें प्रवेश करके क्रोधित हो मेरे रोते हुयेके वस्त्र खींचकर अपनी सूँडसे मेरी धोतीको फाड़ने लगा ॥८५॥ तत्पश्चात् उसे वस्त्रके फाड़नेमें लगा हुआ देखा, मैं तो व्याकुलतासे नंगा होकर शीघ्र ही कमंडलुके ऊर्ध्वभागसे (मुखके छिद्रसे) बाहर निकल आया। सो ठीक ही है—

जीते रहते कोई न कोई बचनेका उपाय निकल ही आता है' ॥८६॥ तत्पश्चात् वह हाथी भी उसी रस्तेसे निकल आया, परन्तु उस कमंडलुके मुखमें हाथीकी पूँछका एक बाल अटक गया, जिसको निकालनेमें असमर्थ होकर वह हाथी दुःखित व विषण्णचित्त हो वहीं पर गिर पड़ा ॥८७॥ उस हाथीको जमीनपर पड़ा हुआ देखकर मैंने कहा—रे दुर्मते ! रे शत्रु ! तू अब यहीं पर मर' इस प्रकार कहकर मैं तो भय और कांपनेसे रहित प्रसन्नचित्त होकर निकटके नगरमें पहुँचा ॥८८॥

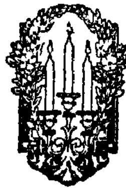
उस नगरमें मैंने एक अतिशय मनोहर जिन मन्दिर देखा। तत्काल ही उस मन्दिरमें जाकर जिनेन्द्र भगवानके दर्शन करके मार्गके परिश्रमसे थका हुआ नंगा ही जमीनपर शयन कर रात्रि बिताई ॥८९॥ मुझे पहरनेको कपड़ा कौन देगा ? और नग्न शरीर रहते मांग ही कैसे सकता हूं ? इस कारण अपने कुल आम्नायसे चला आया। तत्पश्चरण करना ही श्रेष्ठ है, इस प्रकार बहुत समय तक विचार करके मैं वैसाका वैसा ही दिगम्बर मुनि हो गया ॥९०॥

तत्पश्चात् अनेक पुर नगर ग्रामोंमें सैर करता करता आज आपके इस विद्वज्जनोंसे भरे हुये पत्तनमें आ निकला ॥९१॥ इस प्रकार मैंने अपने आप ही व्रत ग्रहण करनेका कारण संक्षेपमें ही आपको कह सुनाया। विद्याधरके ये वचन सुनते ही वे सबके सब ब्राह्मण हँसीसे विकसित मुख हो बोले ॥९२॥ हे—दुर्मते ! हमने असत्य भाषण करनेमें चतुर अनेक प्रकारके मनुष्य देखे हैं परन्तु तेरे समान असत्य कहनेवाला कोई भी नहीं देखा, जो मुनिव्रत धारण करके भी झूठ बोलता है ? ॥९३॥ भिंडीके वृक्षकी शाखापर (डालीपर) कमंडलुका रखा जाना और उसमें हाथीका प्रवेश करना,

फिरना और निकलना आज तक इस तीन लोकमें क्या किसीने भी देखा या सुना है ? ॥९४॥ हे दुर्मते ? कदाचित् अग्निमें जल, शिलापर कमल, गधेके सींग, सूर्यमें अन्धकार और अचल पर्वतमें चलपना हो जाय परन्तु तेरे वचनकी सत्यता तो कदापि नहीं हो सकती ॥९५॥

यह सुनकर विद्याधरने कहा—हे ब्राह्मणो ! बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे असत्य भाषी केवल हम ही हैं ? तुम्हारे मतमें ऐसे अनिवार्य असत्य वचन नहीं है ? ॥९६॥ इस लोकमें प्रायः सब जने परके ही दोष देखते हैं अथवा अपने असत्य मतकी पोषणा करनेवाले ही दीखते हैं किन्तु परके गुणोंकी शुद्धिको और अमित ज्ञानके धारक पुरुषोंके विचारको विस्तार करनेवाला पक्षपात रहित कोई विरला ही होता है ॥९७॥

इतिश्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें बारहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥१२॥



तेरहवाँ परिच्छेद

अथानन्तर सूत्रकठोने (ब्राह्मणोंने) कहा—हे भद्र! यदि तुमने ऐसी असम्भव बात हमारे वेद या पुराणोंमें देखी हो तो कहु ॥१॥ यदि पुराणोंमें ऐसी असम्भवता निकल आवेगी तो हम पुराणोंका कथन कदापि ग्रहण नहीं करेंगे क्योंकि न्यायनिपुण पुरुष कहीं भी न्याय रहित वचनको ग्रहण नहीं करते ॥२॥ यह सुनकर ऋषिरूपके धारक मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो! बेशक मैं जानता हूँ और कहूँगा परन्तु कहते हुये डरता हू क्योंकि जब—मैंने अपना वृत्तान्त कहा, तब तो तुम रुष्ट हो गये और तुम्हारे वेद पुराणोंके विषयमें कहूँगा तो न मालूम तुम क्या कर बैठो? ॥३-४॥

ब्राह्मणोंने कहा—तुम निर्भय होकर कहो। यदि तुम्हारे वचनोंके सदृश कहनेवाला कोई शास्त्र होगा तो हम उस शास्त्रको अवश्य ही छोड़ देंगे ॥५॥ तब मनोवेगने कहा—यदि तुम विचार-वान हो तो लो, मैं कहता हूं, एक चित्त होकर सुनो ६॥

एक समय युधिष्ठिरने सभामें कहा था—कोई ऐसा पुरुष है जो पातालमेंसे फणीन्द्रको ले आवे? ॥७॥ तब अर्जुनने कहा—हे देव! आपकी आज्ञा हो तो पातालमें जाकर सप्त ऋषि सहित फणीश्वरको मैं ला सकता हूं ॥८॥ तत्पश्चात् अर्जुनने गांडीव धनुष्यके द्वारा तीक्ष्ण मुखवाले शरोंसे कामसे वियोगिनी स्त्रीके समान पृथ्वीको भेदकर छिद्र किया ॥९॥ तत्पश्चात् रसातलमें जाकर दश करोड सेना सहित शेषनाग और सप्त ऋषियोंको ले आया ॥१०॥

मनोवेगने कहा—क्यों विप्रो! आपके शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि नहीं? तब ब्राह्मणोंने कहा—बेशक ऐसा ही लिखा है ॥११॥

तब मनोवेगने कहा—जब आपके द्वारा किये हुवे सूक्ष्म छिद्रमें दश करोड़ सेना सहित शेषनाग आता है तो हे विप्रो! कमंडलुके छिद्रमेंसे हस्ती कैसे नहीं निकलैगा? सो पक्षपात छोड़कर शीघ्र ही कहो ॥१२–१३॥ आपका शास्त्र तो सच्चा और मेरा वचन झूंठा है सो इसमें सिवाय पक्षपातके दूसरा कोई कारण प्रतीत नहीं होता ॥१४॥

तब ब्राह्मणोंने कहा—कमंडलुके छिद्रमेंसे हाथीका और तेरा निकलना तो हमने शेषनागके आने जानेके समान प्रमाण किया परन्तु इतना बड़ा हाथी उस कमंडलुमें कैसे समाया? तथा हाथीके भारसे भिंडीका वृक्ष कैसे नहीं टूटा? तथा कमंडलुके मुखसे जब हाथीका पुष्ट शरीर निकल गया तो पूंछका बाल कसे अटक रहा? सो हे भद्र! यह वचन तो तेरा हम कदापि नहीं मान सकते। तब मनोवेगने कहा—यह वचन मेरा प्रत्यक्षतया सत्य है क्योंकि—आपके आगममें सुना गया है कि—एक बार अंगुष्ठके बराबर अगस्त्य मुनिने समुद्रका समस्त जल तीन चुल्लूमें भरकर पी लिया था जब—॥१५–१६–१७–१८॥ अगस्त्य मुनिके उदरमें समस्त समुद्रका जल समा गया तो हे विप्रो! मेरे कमंडलुमें हाथी कैसे नहीं समाये? ॥१९॥ तथा एकसमय यह समस्त सृष्टि समुद्रमें बहकर नष्ट हो गई, ऐसा समझकर ब्रह्माजी व्याकुल चित्त हो इधर उधर ढूंढ़ते फिरे ॥२०॥

तब भिंडीके पेड़की शाखा पर सरसों बराबर कमंडलुको रखकर उसके नीचे बैठे हुये अगस्त्य मुनिको देखा ॥२१॥ अगस्त्य मुनिने कहा—हे विरंचि! तू व्याकुलचित्त होकर क्यों भ्रमण करता फिरता है? ॥२२॥ तब ब्रह्माजीने कहा—हे साधो! मेरी सृष्टि कहीं चली

भी भाग गई, अतः मैं पागलसा होकर सबको ढूँढ़ता हुआ फिरता हूं ॥२३॥ अगस्त्य मुनिने कहा—हे विधे ! तू मेरे कमंडलुमें प्रवेश करके देख, अन्यत्र कहीं मत जा ॥२४॥ तब ब्रह्माने कमंडलुमें प्रवेश कर देखा तो वहां पर एक वटका वृक्ष है । उसके पत्ते पर पेट फुलाये हुये श्रीपति (विष्णुभगवान) सो रहे हैं ॥२५॥

तब ब्रह्माने विष्णुभगवानको कहा—हे कमलापते ! निश्चल शरीर हो पेट फुलाये कैसे सो रहे हो ! ॥२६॥ तब विष्णुने कहा—तेरी सृष्टि एक समुद्रमें बही जाती थी, सो मैंने अपने पेटमें रख ली है ॥२७॥ सो शाखाओंकर व्याप्त महान् वटवृक्षके विस्तीर्ण पत्र पर सोते हुये विष्णुका पेट इसी कारणसे फूल गया दीखे है ऐसा विचार कर ब्रह्माने कहा—हे श्रीपते ! तुमने बहुत अच्छा किया जो प्रलयमें नष्ट होती हुई पृथ्वीकी रक्षा की । परन्तु—॥२८–२९॥ हे श्रीपते ! उस सृष्टिके देखनेको मेरा चित्त बड़ा ही उत्कंठित हो रहा है । सो ठीक ही है,–बालबच्चोंका विरह सबको ही असह्य होता है' ॥३०॥

तब विष्णुने कहा—तू वृथा ही क्यों दुःखी होता है ? मेरे उदरमें प्रवेश करके आनन्दके साथ अपनी समस्त सृष्टिको देख ले ॥३१॥ तत्पश्चात् ब्रह्मा विष्णु भगवानके उदरमें प्रविष्ट हो अपनी सृष्टिको देखकर बहुत ही हर्षित हुआ। सो उचित ही है, कि 'सन्तानके देखनेसे किसका चित्त हर्षित नहीं होता' ॥३२॥ विष्णुके उदरमें बहुत कालपर्यंत अपनी समस्त सृष्टिको देखकर ब्रह्माजी विष्णुकी नाभिकमलके छिद्रसे निकले परन्तु निकलते समय वृषणके बालका एक अग्रभाग अटक गया। तब लज्जित होनेकी आशंकासे उसको निकालनेमें असमर्थ हो उसी बालाग्रको

कमल बनाकर वहीं अपना आसन जमाकर बैठ गये। सो ठीक ही है, 'विश्वव्यापिनी माया देवोंको भी नहीं छोड़ती' ॥३३—३४॥ ॥३५॥

तभी दिनसे ब्रह्माजीका पद्मासन वा कमलासन नाम जगतमें प्रसिद्ध हुआ। सो ठीक ही है,—'महत्पुरुषोंका किया हुवा प्रपंच (कपट) ही जगत्प्रसिद्ध होता है' ॥३६॥ हे विप्रो! आपके पुराणोंमें ऐसा कथन है कि नहीं? सो निर्मत्सरभावसे कहो, क्योंकि सत्पुरुष होते हैं, वे कदापि असत्यवादी नहीं होते ॥३७॥ तब अवनीदेव (ब्राह्मण) बोले—निःसंदेह इस प्रकारका कथन हमारे पुराणोंमें प्रसिद्ध है। हे भद्र! ऐसा कौन है जो प्रकाशमान सूर्यको छिपा सके? ॥३८॥ तब मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो! जब ब्रह्माका केश नाभिके छिद्रमें अटक गया तो हाथीकी पूंछका बाल कमण्डलुके छिद्रमें कैसे नहीं अटके? ॥३९॥ जब समस्त सृष्टि सहित कमण्डलुके भारसे अलसीके वृक्षकी शाखा नहीं टूटी तो एक हस्तीके भारसे मेरा भिंडीका वृक्ष कैसे टूट सकता है ॥४०॥

जब अगस्त्यके सरसों बराबर कमण्डलुमें समस्त सृष्टि समा गई तो हे ब्राह्मणो? मेरे बड़े कमण्डलुमें मुझ सहित हस्ती कैसे नहीं समावेगा? ॥४१॥ कुछ विचार तो करो कि विष्णुने जगतको पेटमें रखकर वह बिना जगतके कहां बैठा? और अगस्त्य मुनि ही कहां पर बैठा था? और अलसीका वृक्ष ही काहे पर रहा? और ब्रह्माजी पृथ्वीके बिना ही सृष्टिको ढूंढते हुये कहां फिरे? ॥४२॥ बड़ा आश्चर्य है कि पृथ्वीके रहते भिंडीके वृक्ष पर हाथी सहित मेरे कमण्डलुका रहना असत्य और आपका वे शिरपांवका कथन सत्य, यह कैसा न्याय है? ॥४३॥ जो ब्रह्मा सर्वज्ञ है व्यापक है चराचर

पदार्थोंको जाननेवाला है तो ऐसा ब्रह्मा 'सृष्टि कहां है' सो कैसे नहीं जाना? जो ढूँढता फिरा? ॥४४॥ जो ब्रह्मा क्षीण ही नरकसे प्राणियोंको खेंचकर ला सका है, वह ब्रह्मा अपने वृषणके केशको कैसे नहीं छुटा सका ॥४५॥

जो विष्णु समस्त पृथ्वीको प्रलय होता जानकर रक्षा करता है, उसने सीताके हरणको कैसे नहीं जाना? और क्यों नहीं रक्षा की? ॥४६॥ जो लक्ष्मण समस्त जगतको मोहित कर सकता है, वह श्रीपति लक्ष्मण इन्द्रजीतके द्वारा मोहित होकर नागपाशमें कैसे बांधा गया? ॥४७॥ जिस विष्णुके स्मरण मात्रसे समस्त जीवोंकी आपदा नष्ट होना मानते हो, ऐसे विष्णु भगवानको सीताका वियोग होना वगैरह दुःख कैसे प्राप्त हुआ? और जो अपनी आपदा ही दूर नहीं कर सकता, वह दूसरोंकी आपदा किस प्रकार दूर कर सकता है? ॥४८ जिस रामचन्द्रने नारदको अपने दश जन्मकी वार्ता कही, वह राम फणिपतिसे अपनी कान्ता सीताका हाल क्यों पूछे? कि—॥४९॥

"हे फणिराज! जिसके कमल समान हाथ पांव और मुख था, रूपलावण्यकी नदी, गुणोंकी खानि ऐसी मेरी स्त्री तुमने कहीं देखी?" ॥५०॥ जो लोग अनादिकालसे मिथ्यात्व रूपी हवासे टेढे किये गये हैं, उनको सैकड़ों जन्ममें भी सरल करनेको कौन समर्थ है? ॥५१॥ क्षुधा १ तृषा २ भय ३ द्वेष ४ राग ५ मोह ६ मद (गर्व) ७ रोग ८ चिन्ता ९ जन्म १० जरा ११ मृत्यु १२ विषाद १३ विस्मय १४ रति १५ स्वेद १६ खेद १७ निद्रा १८ ये अठारह दोष सर्वसाधारणके मुख्यतया दुःखके कारण हैं। सो ही भिन्न२ कहते हैं ॥५२-५३॥ क्षुधारूपी अग्निसे तप्तायमान होकर

मनुष्यका शरीर तुरंत ही सूख जाता है, तथा पांचों इन्द्रियां भी अपने२ विषयोंमें प्रवृत्ति नहीं करती और–॥५४॥ तृष्णासे पीड़ित होनेवालेका विलास विभ्रम (कटाक्ष), हास्य संभ्रम (विनय), कौतुक आदि समस्त शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥५५॥

पवनसे हणे हुवे सूखे पत्तेके समान भयसे समस्त शरीर कंपित होकर वचनशक्ति नष्ट हो जाती है और समस्त विषय विपरीत दीखते हैं और–॥५६॥ जो पुरुष द्वेषी है, वह विना कारण ही सबके दोषोंको ग्रहण करता है। और विना ही कारणके रुष्ट हो जाता है तब वह नष्ट बुद्धि क्रोधी हो जाता है और किसीकी भी नहीं मानता ॥५७॥ जो कामातुर होता है, वह पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त हो अन्य प्राणीको पीड़ा करता है तथा युक्त अयुक्तको कुछ भी नहीं देखता ॥५८॥ जिसके पीछे मोहरूपी पिशाच लग जाता है, वह पुरुष मेरी स्त्री, मेरी पुत्री, मेरा धन, मेरा घर और बांधव भी मेरे हैं, इस प्रकार करता हुवा मोहित (अज्ञान) हो जाता है ॥५९॥ जो पुरुष मदसहित है, वह दुराचारी, ज्ञान (विद्या) जाति कुल ऐश्वर्य तप रूप बल आदिके गर्वसे सबका अनादर करने लग जाता है ॥६०॥

जो मनुष्य वातपित्त कफजनित रोगरूपी अग्निसे तप्तायमान होता है; वह शरीरके द्वारा पराधीन होकर कदापि सुखको प्राप्त नहीं होता ॥६१॥ जो नर चिन्तातुर होता है, वह मित्र कैसे होगा, धन कैसे होगा, पुत्र कैसे होंगे, प्रिया कैसे होगी, मेरी प्रसिद्धता कैसे होगी, अमुकसे प्रीति कैसे होगी? इस प्रकार अहोरात्रि आर्त-ध्यानमें मग्न हो दुःखी ही रहता है ॥६२॥ नरकसे भी अधिक है असाता कर्मका उदय जिसमें ऐसे कृमिकुल सहित गर्भमें प्राणीगण वारम्वार जन्म दुःख भोगते हैं ॥६३॥ बुढ़ापेमें अपना शरीर ही

नहीं रहता तो अन्य कुटुम्बीजन तो उस चेतना रहित मुर्देके वशमें कैसे होंगे ? ।६४॥

जिसका नाम सुनते ही चित्तमें कँपकँपी छूटती है, ऐसा मृत्यु साक्षात् आनेपर किसको भय वा दुःख नहीं होता ! ॥ ६५ ॥ उपसर्ग महारोग पुत्र मित्र और धनके क्षय होने पर अल्पज्ञ जीवोंके ही प्राणहारी विषाद होता है ॥ ६६ ॥ अपने पास होना असम्भव है, ऐसी परकी सम्पत्तिको देखनेसे ज्ञान शून्य पुरुषोंके दुःखदायक आश्चर्य होता है ॥६७॥ समस्त अशुचियोंका घर त्यागने योग्य ग्लानिकारक कुत्सित शरीरमें कुत्तोंके समान नीच पुरुष ही रत होते हैं ॥६८॥ व्यापार करनेसे देहको नष्ट करनेवाला, खेद (कष्ट) बल रहित जीवोंके होता है ॥६९॥ जिस प्रकार अग्निसे घृतका घड़ा पिघल जाता है, उसी प्रकार व्यापार सम्बन्धी असह्य परिश्रमके कारण शीघ्र ही मनुष्यका शरीर खेदमयी हो जाता है ॥७०॥

जो पुरुष निद्राके वशीभूत होता है, वह मदिरासे उन्मत्तकी तरह समस्त व्यापार रहित हो अपने हिताहितको नहीं जानता ॥७१॥ इस प्रकार अठारह दोष महा दुःखके कारण हैं सो महादेव तो कपाल रोगसे दुःखी है। विष्णुके शिरो रोग, सूर्यको कुष्ठी (कोढी) और अग्निदेवको पाण्डु रोगी कहा है ॥७२॥ तथा विष्णु निद्रासे व्याप्त है। अग्नि क्षुधासे, शंकर रतिसे और ब्रह्मा रागसे व्याप्त है ॥७३॥ स्त्रीका होना तो रागको प्रगट करता है, वैरीको मारना द्वेषको प्रगट करता है। अपने विघ्नका न जानना अज्ञानपनेको सूचन करता है, और आयुधका रखना सो भयको प्रगट करता है ॥७४॥

जो ब्रह्मा विष्णु महादेवादि इन दोषोंके द्वारा पीड़ित किये जाते हैं, वे दूसरोंको किस प्रकार दुःखोंसे छुटा सकते हैं ? क्योंकि— हाथियोंको मारनेवाले सिंहोंको हिरनोंके मारनेमें कुछ भी परिश्रम नहीं है। किन्तु जो हिरणोंको ही मारनेमें असमर्थ हैं, वे भला हस्तियोंका क्षय कैसे कर सकते हैं ? ॥७५॥ जिस प्रकार रूपी पुद्गलमें स्पर्श रस गंधादिक गुण नियमसे पाये जाते हैं, उसी प्रकार रागी पुरुषमें क्षुधादिक अष्टादश दोष भी अवश्य होते हैं ॥७६॥ इसके सिवाय आपके पुराणोंमें ब्रह्मा विष्णु महेशको एकमूर्ति ही कहा है। यदि ऐसा है तो ये तीनों परस्पर मस्तक छेदनादि क्रिया कैसे करते हैं ? ॥७७॥ इस कारण अंधकारके समूहको सूर्यके समान जिस देवने उपर्युक्त अठारह दोषोंको नष्ट कर दिया, वही समस्त देवोंका अधिपति संसारी जीवोंके पापोंको नष्ट करनेमें समर्थ है ॥७८॥

तथा और भी सुनो—तुम्हारे पुराणोंमें कहा है—ब्रह्माजीने जलके भीतर अपना वीर्यक्षेपण किया। उससे एक बुदबुदा उठकर उससे एक जगदंड (जगतको पैदा करनेवाले एक अंडा) पैदा हुवा ॥७९॥ उस अण्डेका दो खण्ड करनेपर तीन लोककी (सृष्टिकी) उत्पत्ति हो गई। सो यदि ऐसा आपके आगममें (शास्त्रोंमें) कहा है तो यह बताइये कि— सृष्टि होनेसे पहिले जल किसके ऊपर था ? ॥८०॥

नदी पर्वत पृथ्वी वृक्षादिकोंकी उत्पत्तिके उपादान कारणोंके अभाव स्वरूप आकाशमें पृथिवी नदी पर्वतादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति कारक सामग्री कहांपर मिली ? ॥८१॥ क्योंकि जिस आकाशमें (सृष्टिसे पहिले) एक शरीरको उत्पन्न करनेकी सामग्रीका मिलना भी दुर्लभ है, उसमें तीन लोकके कारणभूत मूर्तिक पुद्गल द्रव्यकी प्राप्ति

किस प्रकार हो सकती है? ॥८२॥ शरीर-रहित ब्रह्माने सृष्टिको किस प्रकार बनाया? क्योंकि जो स्वयं शरीर रहित (अमूर्तीक) है, वह अन्य शरीरको (मूर्तिक पदार्थको) कदापि नहीं बना सकता ॥८३॥

दूसरे सृष्टिको उत्पन्न करके वही ब्रह्मा नाश करता है सो उसको जो लोककी हत्याका (अपनी सन्तानके मारनेका) महापाप होता है, वह किस प्रकार दूर किया जा सकता है? ॥८४॥ जो परमात्मा (ब्रह्मा) कृतकृत्य, शुद्धचित्त, नित्य, अमूर्तीक, सर्वज्ञ है सो उसको सृष्टि रचनेसे क्या लाभ है? ॥८५॥ जो सृष्टि, विनाश करने योग्य है तो उसका उत्पन्न करना ही व्यर्थ है। क्योंकि पुनः पुनः विनाश करके विनाशनीय जगतके उत्पन्न करनेमें कोई फल नहीं है ॥८६॥

इसप्रकार तुम्हारे समस्त पुराण पूर्वापर विरोधसे भरे हुये हैं। सो हे विप्रो! न्यायनिष्ठ विद्वज्जन उनपर कैसे विश्वास करते हैं ॥८७॥ इसप्रकार मनोवेगके कहनेपर ब्राह्मणोंको कोई उत्तर नहीं आया, तब वह मनोवेग वहांसे निकलकर बागमें आया और अपने मित्र पवनवेगसे कहने लगा—॥८८॥ हे मित्र! तूने वेदोंका विशेष तथा पुराणोंका अर्थ सुना कि—कैसे हैं? जो विचारवान् हैं, उनको तो इन पुराणों व वेदोंमें कुछ भी सार नहीं दिखता ॥८९॥ ऐसा कौन पुरुष है जो नारायण चतुर्भुज ब्रह्माको चतुर्मुख व महादेवको त्रिनेत्री विश्वास करे? या प्रतिपादन करे? ॥९०॥ जगतमें सबके एक मुख दो हाथ और दो नेत्र ही दिखते हैं। परन्तु मिथ्यात्वसे आकुलित लोक कुछके कुछ बक देते हैं ॥९१॥

हे मित्र! यह लोक अनादिनिधन आकाशमें स्थिर और अकृत्रिम है। आकाशके समान इसका भी कोई कर्ता हर्ता नहीं

है ॥९२॥ इस लोकमें अपने २ कर्मोंसे प्रेरे हुये प्राणीमात्र सदा सर्वदा पवनसे सूके पत्तोंके सदृश सुख—दुःख भोगते हुये नरकादिक चारों गतियोंमें परिभ्रमण करते हैं ॥९३॥ जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र अपने दुःख भी नष्ट करनेमें असमर्थ हैं, इस बातको बुद्धिमान किस प्रकार विश्वास कर सकते हैं ? क्योंकि—॥९४॥ जो आलसी अपने ही जलते हुये घरको नहीं बुझाता, वह अन्यके घरको बुझावेगा। इस बातको शुभमति पुरुष किसी प्रकार भी अपने हृदयमें श्रद्धान नहीं कर सकते ॥९५॥

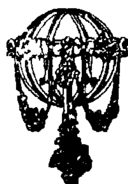
जो देव (आप्त) रागद्वेष भय मोहादिकसे मोहित होकर अपने सुखदायक पदार्थोंको नहीं जानते, वे नष्टबुद्धि दूसरोंको शाश्वत सुखका कारणभूत मोक्षमार्गका उपदेश कैसे करेंगे ? ॥९६॥ आश्चर्य है कि इस लोककी स्थिति तो और ही प्रकार है। और कामभोगके वशीभूत नष्टबुद्धि खलपुरुषोंने औरका और ही कह दिया है। सो उन्होंने दुःखदायक नरकवासको नहीं देखा। यदि देखते व जानते तो नरकमें ले जानेवाले ऐसे महा पापरूप असत्य वचन कदापि नहीं कहते ॥९७॥ भवसमुद्रमें पटकनेवाले कुमार्गियोंके द्वारा सत्यार्थ मोक्षमार्ग आच्छादन किया जाता है, उसको जो कोई नष्टबुद्धि नहीं विचारता, वह मोक्षरूपी मंदिरको किस प्रकार जायगा ? ॥९८॥

जो निर्मलबुद्धिके धारक हैं, वे छेदकर तपाकर घिसकर और कूटकर सोनेकी परीक्षा किया करते हैं, उसी प्रकार शील संयम तप दया आदिके गुणोंसे अमूल्य धर्मरूपी रत्नकी भी परीक्षा करके ग्रहण करते हैं ॥९९॥ जो पुरुष देव धर्म गुरु और शास्त्रकी परीक्षा करके निर्दोष देव शास्त्र गुरु आदिकी उपासना करते हैं, वे ही कर्मरूपी

महा बेड़ीको काटकर अविनाशी पवित्र पदको (मोक्षपदको) प्राप्त होते हैं ॥१००॥ जो पूजनीय ज्ञानी पुरुष अपने हितकी वांछा करते हैं, उनको चाहिये कि अपने घमंडको छोड़कर देवसे देवकी, शास्त्रसे शास्त्रकी, धर्मसे धर्मकी और गुरुसे गुरुकी परीक्षा करें ॥१०१॥

देव तो वह है कि जो समस्त कर्मरहित, सर्वज्ञ और इन्द्र धरणींद्र नरेन्द्रोंकर पूजित हो। धर्म वही है जो कि रागादि दोषोंको नष्ट करनेमें कुशल व दयाप्रधान हो। शास्त्र वही इष्ट है जो कि हेय उपादेय और युक्तिपूर्वक वस्तुका सत्यार्थ स्वरूप प्रगट करनेमें निपुण हो और यति कहिये गुरु वही है जो कि अपरिमाण ज्ञानका धारक और परिग्रह रहित होकर निर्दोष हो ॥१०२॥

इतिश्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें तेरहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥१३॥



चोदहवाँ परिच्छेद

अथानन्तर वह मनोवेग "हे मित्र ! तुझे और भी कौतूहल दिखाऊंगा।" ऐसा कहकर ऋषिका भेष जो किया था वह छोड़ता हुवा। तत्पश्चात्—॥१॥ उन दोनोंने तपस्वीका भेष बनाकर उस पटने नगरीमें उत्तरकी तरफसे प्रवेश किया और ॥२॥ एक अन्य वाद-शालामें जाकर घण्टेकी भेरी बजाकर मनोवेग सुवर्णके सिंहासन पर बैठ गया। भेरीके सुनते ही समस्त ब्राह्मण आकर बोले—हे तापस ! तू कहांसे आया ? ॥३॥ तू व्याकरण जानता है कि विस्ताररूप तर्कशास्त्र जानता है ? शास्त्रोंके पारगामी इन ब्राह्मणोंके साथ कौनसा वाद करेगा ? ॥४॥

तब तापसरूप मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणों ! मैं तो इस अगले ग्रामसे आया हूं, व्याकरण तर्कवाद मैं कुछ नहीं जानता ॥५॥ तब ब्राह्मणोंने कहा—हे तपस्वी ! तू हंसी ठठ्ठा छोड़कर यथार्थ है सो कह। स्वरूप पूछनेवालोंके साथ हंसी ठठ्ठा करना योग्य नहीं ॥६॥ तब तापसाकारधारक मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो ! मैं तुमसे यथार्थ कहूंगा परन्तु कहते हुए डरता हूं ? क्योंकि जो निर्विचार दुष्ट पुरुष होते हैं, वे युक्तवचन कहते भी अयुक्त समझकर तुरत ही महाउपद्रव कर बैठते हैं ॥७-८॥ तब ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र ! जो कुछ कहने योग्य हो सो कह। यहां पर सब ब्राह्मण विवेकी और युक्तपक्षके अनुरागी हैं ॥९॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर मनोवेगने कहा—यदि आप सब जने विचारी हैं तो मैं अपना यथेच्छ वृत्तान्त कहता हूं ॥१०॥

साकेतनगरमें वृहत्कुमारिका नामक मेरी माताको मेरे नानाने

मेरे पिताको दी गई ॥११॥ उन दोनोंके पाणिग्रहणके समय बाजोंका शब्द सुनकर यमराजके सदृश एक मदोन्मत्त हस्ती जिसमें वह बंधा हुआ था उस स्तम्भको तोड़कर चला आया ॥१२॥ उसके भयसे विवाहका आनन्द छोड़कर सबके सब लोक दशों दिशामें भाग गये। सो ठीक ही है 'ऐसे महाभयमें स्थिरता कैसे रहे' ॥१३॥ ऐसे समयमें व्याकुलचित्त हो वरने भी भागनेकी चेष्टा की तो उसके धक्केसे वह वधू बेहोश हो पृथ्वीपर पड़ गई। यह कौतुक देखकर लोगोंने कहा—"देखो देखो, वर भी वधूको पटककर भागा जाता है" लोकोंके इस प्रकार वचन सुनकर लज्जाके वशीभूत हो मेरा पिता कहींको भाग गया सो फिर नहीं आया ॥१४-१५॥

तत्पश्चात् डेढ़ महीनेके अनन्तर मेरी माताके गर्भका लक्षण प्रगट हुवा और उदरसहित वह गर्भ नव मासपर्यन्त बढ़ता रहा ॥१६॥ मेरी मातामहीने (नानीने) पूछा—हे पुत्रि! यह पेट किसने बढ़ाया? तब उसने कहा—हस्तीके भयसे भागते समय वरके अंगस्पर्शके सिवाय आजतक मैंने किसी पुरुषको नहीं छुआ। मैं कुछ भी नहीं जानती कि यह क्या हुवा ॥१७॥ एक दिन मेरे नानाके घर पर कितने ही तपस्वी आये थे उनको विधिपूर्वक आहारदान करके मेरे नानाने पूछा—आप लोग कहां जाते हैं? ॥१८॥ उन तपस्वियोंने कहा—इस देशमें बारह वर्षका दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ेगा इस कारण हम बारह वर्षके लिये जहांपर सुभिक्ष है, वहां जाते हैं ॥१९॥ तापसियोंने किंचित् उपकारके साथ यह भी कहा—'यहां किस कारण भूखों मरता है तू भी हमारे साथ चल। इस प्रकार कहकर वे तपस्वी तो चले गये ॥२०॥

मैंने माताके गर्भमें रहते ही उनके व माताके समस्त वचन

सुनकर चकित चित्त होकर अपने चित्तमें विचारने लगा—यदि यह तो बारह वर्षका दुष्काल पड़ेगा, तब गर्भसे निकलकर क्षुधासे पीड़ित हो क्या मरूँगा ? ॥२१–२२॥ इस प्रकार विचार कर मैं बारह वर्ष पर्यन्त गर्भमें ही रहा, सो ठीक ही है—क्षुधाके भयसे मनुष्य क्या क्या नहीं करता' ॥२३॥ जब दुर्भिक्ष दूर हो गया तो वे ही तपस्वी मेरे गर्भमें रहते ही मेरे नानाके घर पर आये ॥२४॥

मेरे नानाने तपस्वियोंसे नमस्कार करके पूछा तो उन्होंने कहा—'अब दुर्भिक्ष दूर हो गया, सो हम अपने देशको जाते हैं' ॥२५॥ उनके ये वचन सुनकर मैं भी गर्भसे निकलने लगा। उस समय मेरी माता चूलेके पास बैठी थी, सो मेरे प्रसवकी वेदनासे वहीं ओढनेको डालकर अचेत हो गयीं। मैं उसी वक्त गर्भसे निकल कर चूलेकी राखमें गिर गया, मैं बारह वर्षका भूखा था सो उठते ही मैंने एक पात्र लेकर अपनी मातासे कहा—हे माता, मैं बहुत ही भूखा हूँ सो मुझे भोजन दे ! ॥२६–२७–२८॥

उस समय मेरे नानाने कहा—हे तपस्वियो ! तुमने कहीं ऐसा बालक भी देखा है ? जो पैदा होते ही भोजन मांगे ? ॥२९॥ उन्होंने कहा—यह कोई उत्पात है, इसको घरसे निकाल दो, नहीं तो हे भद्र ! तेरे घरमें निरन्तर विघ्न होते रहेंगे ॥३०॥ तब मेरी माताने कहा—मुझे बड़ा दुःखदायक है तू, अब यमके द्वारे जा ! वही तुझे भिक्षा देगा ॥३१॥ तब मैंने कहा—हे माता ! यदि तू आज्ञा दें तो मैं चला जाता हूँ। माताने कहा—बेशक, तू मेरे घरसे निकल जा ॥३२॥ तत्पश्चात् मैं अपने देहमें भस्म लगाकर मस्तक मुण्डा घरसे निकल तपस्वियोंके साथ ही चल दिया ॥३३॥ तपस्वियोंमें रहकर मैंने दुष्कर तप किया। क्योंकि सो सत्य है कि

कल्याणकारी कार्यको प्रारम्भ करके कदापि प्रमादी नहीं होते॥३४

एक दिन मैं स्मरण करके साकेतपुर नगरमें गया तो अपनी माताको अन्य वरसे व्याही हुई देखी तब ॥ ३५ ॥ मैंने अपना पूर्व सम्बंध निवेदन करके तपस्वियोंसे पूछा तो इन्होंने कहा— एकसे विवाह हुये पीछे अन्य वरसे विवाह करनेमें कोई दोष नहीं है। क्योंकि 'द्रोपदीके पांचों पांडव भर्त्तार थे, तो तेरी माताके दो भर्त्तार होनेमें क्या दोष है' ॥ ३६–३७॥ 'एकबार विवाह करने पर दैवयोगसे पति मर गया हो तो अक्षतयोनि स्त्रीका फिरसे विवाह संस्कार होना चाहिये ॥३८॥ यदि पति परदेशमें चला गया हो तो प्रसूता स्त्री आठ वर्ष तक और अप्रसूता चार वर्ष तक अपने पतिके आनेकी राह (वाट) देखकर दूसरा पति करले। बलके– ॥३९॥ विशेष कारण होनेपर पांच पति तक करनेमें भी स्त्रियोंको कोई भी दोष नहीं है। इस प्रकार व्यासादि ऋषियोंके वचन हैं ॥४०॥

तब मैंने ऋषियोंके वचन सुनकर अपनी माताको निर्दोष जान तापसाश्रमके एकांतमें रहकर एक वर्ष तक तप किया ॥४१॥ तत्पश्चात् हे ब्राह्मणों! तीर्थयात्राके लिए पृथ्वीमें भ्रमण करता२ आज आपके इस पत्तनमें आया हूं ॥४२॥ इस प्रकार सुनकर क्रोधके साथ होटोंको चबाते हुये ब्राह्मण बोले—अरे दुष्ट! तूने इस प्रकार असत्य बोलना कहां सीखा? ॥४३॥ मालूम होता है कि ब्रह्माजीने जगतकी समस्त असत्यता इकट्ठी करके ही तुझे बनाया है, नहीं तो इस प्रकार असम्भव कार्योंको वृथा ही क्यों कहता? ॥४४॥ तब मनोवेगने कहा—हे विप्रो! आप इस प्रकार क्यों कहते हो? आपके पुराणोंमें क्या ऐसे कार्य नहीं हैं? ॥४५॥

तब ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र ! तूने हमारे वेद या पुराणोंमें ऐसा असम्भव देखा हो तो बता ? ॥४६॥ तब मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणों ! मैं कहूँगा परन्तु तुम लोग बिना विचारे ही मेरे समस्त वचन ग्रहण करो तो तुमसे कहते हुये डरता हूँ॥४७॥ क्योंकि आपके वेद और पुराणोंमें पद पद पर ब्रह्महत्या है तो तुम सुभाषित कहे हुयेको किस प्रकार ग्रहण करगे ? ॥४८॥ जैसे आपके आगममें कहा है कि पुराण, मानवधर्म (मनुस्मृतिमें कहा हुआ धर्म) अंगसहित वेद और चिकित्सा ये चार आज्ञासिद्ध हैं, इनको हेतुसे खण्डन नहीं करना चाहिये तथा—। ४९॥ मनु व्यास वशिष्ठके वचन वेदानुकूल ही हैं, इनके वचनोंको जो अप्रमाण करते हैं, उनको बड़ी भारी ब्रह्महत्या लगती है ॥५०॥ जो सदोष वचन होते हैं, तो उनमें हेतु लगानेका निषेध किया जाता है ' क्योंकि निर्दोष सुवर्णकी परीक्षा करानेमें कोई भी नहीं डरता ॥५१॥

तब उन वेदावलम्बियोंने कहा—हे भद्र ! केवलमात्र वचन कहनेमें ही पाप नहीं लगता क्योंकि ' तीक्ष्ण खड्ग ' इस प्रकार उच्चारण करने मात्रमें जिह्वा नहीं कटती ॥ ५२ ॥ यदि वचनके उच्चारण मात्रसे ही पाप होता है तो ' उष्ण अग्नि ' कहते हुये मुख क्यों नहीं जलता ? ॥ ५३ ॥ इस कारण तुम निर्भय होकर पुराणोंका अर्थ कहो, हम सब नैयायिक हैं, सो न्यायपूर्वक कहे हुये वचनको अवश्य ही ग्रहण करेंगे ॥५४॥ तत्पश्चात् स्वपरशास्त्रके जानकार मनोवेग विद्याधरने कहा—यदि ऐसा है तो हे विप्रो ! मैं अपने मनोगत विचारको प्रकाश करता हूँ ॥५५॥

भागीरथी नामकी दो स्त्रियां एकत्र सूती थीं सो उन दोनोंके

स्पर्शसे एकके गर्भस्थिति होकर जगत्प्रसिद्ध भगीरथ नामका पुत्र उत्पन्न हुवा ।। ५६ ।। यदि स्त्रीके स्पर्शमात्रसे स्त्रीके गर्भ होता है तो पुरुषके स्पर्शसे मेरी माताके गर्भ कैसे नहीं हो ? ।।५७।। तथा गांधारी नामकी लड़की धृतराष्ट्रको देना निश्चय किया था, उस वाक्‌सम्प्रदानसे दो मास पहिले ही वह रजस्वला हो गई ।।५८।। चौथे दिन स्नान करके उसने फनस वृक्षसे आलिंगन किया, सो उसी दिनसे गांधारीके बड़े भार सहित गर्भस्थिति होकर पेटको बढ़ाने लगी ।।५९।।

तब उसके पिताने गांधारीके गर्भ हुवा देखा तो तुरंत ही धृतराष्ट्रको विवाह दी । क्योंकि 'लोकापवादको दूर करनेके लिये सभी जने यत्न किया करते हैं' ।।६०।। फिर उस गांधारीके पेटमें फनसका बहुत बड़ा फल हुवा उसीसे एकसौ पुत्र उत्पन्न हुये ।।६१।। मनोवेगने कहा—कहो तुमारे पुराणमें ऐसा है कि नहीं ? ब्राह्मणोंने कहा—बेशक है इसका कौन निषेध कर सकता है ? ।।६२।। यदि फनसके आलिंगनसे ही पुत्रोंका होना अवश्य कैसे है ? ।।६३।। इस प्रकार मनोवेगके वचन सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—तू माताके स्पर्शमात्रसे उत्पन्न हुवा सो तो सत्य है परन्तु तपस्वियोंके वचनको सुनकर तू बारह वर्ष पर्यन्त माताके गर्भमें ही रहा, यह बात हम प्रमाण नहीं कर सकते ।।६४–६५।।

तब मनोवेगने कहा—पूर्वकालमें श्रीकृष्णने सुभद्राको चक्र-व्यूहकी रचनाका व्योरा कहा था, तब उसके गर्भमें स्थित अभि-मन्युने सुना था । ऐसा तुमारे पुराणमें कहा है तो मैंने तपस्वियोंके वचन कैसे नहीं सुने ! ।।६६–६७।। एक समय यम नामा मुनिने किसी तालाबमें अपनी कोपीन धोई । उस कोपीनके जला हुवा

वीर्य जलमें गिरानेपर एक मेंडकीने (मंडूकीने) पी लिया। उसके पीनेसे मेंडकीके गर्भ रह गया। गर्भके दिन पूरे होनेपर उस मेंडकीके एक बहुत ही सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। किन्तु मेंडकीने जाना कि—यह शुभलक्षणा तो हमारी जातिकी नहीं है। ऐसा समझकर उसने एक कमलके पत्तेपर रख दिया। ६८–६९–७०॥

फिर किसी समय वहां उस नामा मुनि आया तो उस सुन्दरीको देखते ही पहचान लिया कि—यह तो मेरे वीर्य बलसे उत्पन्न हुई है। ऐसा समझ स्नेहके साथ उस पुत्रीको ग्रहण किया और अनेक प्रकारके उपायोंसे प्रतिपालना करके बड़ी की सो ठीक ही है 'अपनी सन्तानको पालनेमें स्वभावसे ही सबजन यत्न किया करते हैं' ॥७१–७२॥ उस छोकरीने तरुण होनेपर रजस्वलावस्थामें अपने पिताके वीर्यसे मैली कोपीनको पहनकर स्नान किया। स्नान करते समय उस कोपीनमें लगे हुये वीर्यका कोई बिन्दु उस छोकरीके पेटमें चला गया। उसके संयोगसे वह छोकरी गर्भवती हो गई—तब उस मुनिने अपने वीर्यसे गर्भोत्पत्ति जान कन्याका दूषण प्रगट होनेके भयसे अपने तपोबलसे उस गर्भका स्थंभन कर दिया अर्थात् गर्भका बढ़ना व संततिका उत्पन्न होना बंद कर दिया ॥७३–७४॥ सो निश्चल किया हुवा वह गर्भ सातहजार वर्ष पर्यन्त उस कन्याको कष्ट देता हुआ रुका रहा है! ॥७५॥

तत्पश्चात् वह सुन्दरी मुनिकर प्रदान की हुई लंकाधिपति रावण महात्माने परणी। तब उसके उस गर्भसे इन्द्रजीतनामा पुत्र उत्पन्न हुआ ॥७६॥ सो इन्द्रजीत सातहजार वर्ष पहिले ही गर्भमें आया और उसका पिता रावण सातहजार वर्ष पीछे उत्पन्न भया ॥७७॥ यदि इन्द्रजीत अपनी माताके गर्भमें सातहजार वर्ष तक रहा, यह बात सच है

तो मैं अपनी माताके गर्भमें बारह वर्ष कैसे नहिं रहा ? ॥७८॥ तब ब्राह्मणोंने लाचार होकर स्वीकार किया कि तेरा कहना सत्य है परन्तु तूने उत्पन्न होते ही तप ग्रहण कैसे किया ? । ७९॥ तथा तेरी माता परणी हुई कन्या कैसे हुई ? यह सब होना दुर्घट है सो हमारे सन्देहरूपी अंधकारको दूर कर ॥८०॥

तब उस मनोवेग वक्ताने कहा—ध्यान देकर सुनो । पूर्व-कालमें अनेक तपस्वियोंमें पूजनीय पाराशर नामा एक तपस्वी था ॥८१॥ सो वह पाराशर एक दिन तरुणावस्थाकी धारक योजनगंधा नामक धीवरकी कन्याके द्वारा चलाई हुई नावसे गंगाजीसे पार होता था ॥८२॥ उस समय धीवरकी कन्याको अतिशय तरुण देख कर वह पाराशर उसके साथ रमने लगा । सो नीति ही है कि—'कामबाणसे भिदे हुये पुरुष योग्य अयोग्य स्थानको नहीं देखते' ॥८३॥ उस बिचारी बालिकाने भी ऋषिके शापके भयसे वह नीच कृत्य करना स्वीकार किया । क्योंकि संसारी जीव अकृत्य करके भी अपने जीवनकी रक्षा करते हैं परन्तु ॥८४॥

इस नीचकृत्यको करते हुये कोई देखेगा तो मुझे कैसा शर्मिंदा होना पड़ेगा इत्यादि निन्दाके भयसे पाराशरने तपोबलके प्रभावसे दिनमें ही अंधकारमय रात्रि कर डाली । सो ठीक ही है 'सामग्रीके विना किसीका भी कोई कार्य भले प्रकार सिद्ध नहीं होता' ८५॥ फिर क्या था उस नीच कर्मके करते ही तत्काल उस धीवरीके उदरसे अष्टादशपुराणके कर्ता जगत्प्रसिद्ध वेदव्यासजो उत्पन्न हो गये । व्यासजीने भक्तिपूर्वक अपने पिता पाराशरजीसे कहा—'हे पिता ! मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूं ?' ॥८६॥ पाराशरने कहा—'हे पुत्र ! तू यहीं पर तप करता हुआ तिष्ठ' ऐसा कह कर

पाराशरजीने प्रसन्नताके साथ व्यासको दीक्षा देकर योगी (तपस्वी) कर दिया ॥८७॥ तत्पश्चात् उस योजनगन्धा धीवरकी कन्याको भी पाराशरने अपने तपके प्रभावसे ऐसी सुगन्धित शरीरवाली कर दी कि 'जिसकी सुगन्धसे दशोंदिशा महकने लगी। फिर वे पाराशरजी अपने आश्रममें चले गये ॥८८॥

अब जरा विचार तो करो कि जब व्यासजीने जन्म लेते ही पिताकी आज्ञासे तप ग्रहण कर लिया तो मैं अपनी माताकी आज्ञासे क्यों नहीं पतस्वी होउँ ? और ॥८९॥ व्यासजीको पैदा करने पर भी वह धीवरी कन्या ही रही तो मेरी माताके कन्या रहनेमें उजर करना सिवाय पक्षपातके और क्या है ? तथा ॥९०॥

यह बात भी महत्पुरुषोंको विचारना चाहिए कि सूर्यके प्रसंगसे कुन्तीने कर्णनामा पुत्रको पैदा करके भी वह कन्या रही तो मेरी माता कन्या क्यों नहीं रहे ? ॥९१॥ तथा पूर्वकालमें एक जगत्प्रसिद्ध उद्दालक नामा महातपस्वी था। उसका स्वप्नावस्थामें वीर्य स्खलित हो गया, सो उसको ग्रहण करके गंगाजीमें कमलपत्र पर स्थापन कर दिया ॥९२॥ उस दिन अनेक देवांगनाओं सहित इन्द्राणीके सदृश गुणोंकी राजधानी अतिशय सुन्दर रघुराजाकी चन्द्रमती नामा कन्या अपनी सखियों सहित चतुर्थस्नानको आई ॥९३॥ सो स्नान करते समय उस वीर्यसहित कमलको सूंघनेपर वह वीर्य उस चन्द्रमतीके उदरमें चला गया सो जलसे सीपके समान उस चन्द्रमतीके समस्त देहयष्टिको बढ़ाता हुआ गर्भाधान हो गया ॥९४॥ उस कुमारी कन्याको गर्भवती देखकर उसकी माताने यह वृत्तांत रघुराजाको निवेदन किया। राजाने तुरन्त ही उस चन्द्रमती कन्याको वनमें छुड़वा दिया। सो ठीक ही है, सत्पुरुष अपने गृहकलंकसे डरते ही रहते हैं ॥९५॥

तत्पश्चात् उस कुमारीने तृणबिंदु नामा मुनिके आश्रममें यशको नाश करनेवाली दुर्नीतिके सदृश निर्मलकीर्तिके नष्ट करनेका कारण नागकेतु नामा पुत्रको जना ॥९६॥ उस बालाने उद्विग्नचित्त हो उसी वक्त अपने पुत्रसे कहा—"जा तू अपने पिताको अन्वेषण कर" ऐसा कहकर उसीवक्त सदूकमें रखकर गंगाजीमें छोड़ दिया ॥९७॥ तत्पश्चात् उसी विशुद्धज्ञानी उद्दालक ऋषिने गंगाजीमें सन्तारण करके बहती हुई संदूकमेंसे अपने वीर्यसे उत्पन्न हुये पुत्रको देखकर ग्रहण किया ॥९८॥ फिर वह चन्द्रमती भी अपने पुत्रको ढूंढती हुई उस ऋषिके पास आई। ऋषिने प्रसन्नताके साथ उस बालकको दिखाकर कहा—"मैं तेरा हूं, अब तू मेरी प्रिया हो जा" ॥९९॥

उस कुमारीने कहा—हे मुने! यदि मेरा पिता तुमको प्रदान करेगा तो निःसंदेह मैं तुमारी प्रिया हो सकती हूँ। इसकारण तू जाकर मेरे पितासे याचना कर क्योंकि कुलीन कन्यायें पिताकी आज्ञाके विना अपने आप पतिको ग्रहण नहीं करतीं ॥१००॥

तत्पश्चात् वह उद्दालक ऋषि शीघ्र ही राजाके पास जाकर प्रार्थनापूर्वक उस महा गुणवती यौवनवती चन्द्रमतीको पुनः कुमारी कन्या करके आनन्दके साथ विवाह किया और अपनी प्राणप्रिया सी बनाली सो नीति ही है कि—'कामके पांचों बाणोंसे पीड़ित होकर प्राणी जन क्या क्या अनर्थ नहीं करते' ॥१०१॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें चौदहवां परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥



पंद्रहवाँ परिच्छेद

अथानंतर मनोवेगने कहा—यदि पुत्रके होते संते भी सत्यवती कन्या ही रही तो मेरे होनेसे मेरी माता कन्या कैसे नहीं होय! ॥१॥ इस प्रकार उन वैदिक ब्राह्मणोंको निरुत्तर करके वह विद्याधर बागमें जाकर और तापसीके भेषको छोड़कर अपने मित्रसे कहा—हे मित्र! कैसा आश्चर्य है कि—लोगोंके पुराण परस्पर विरुद्ध होने पर भी मिथ्यात्वके वशीभूत हो उनके सत्यासत्यका कुछ भी विचार नहीं करते ॥२-३॥ कहींपर पनसवृक्षके आलिंगनसे भी स्त्रीके पुत्र होता है? यदि ऐसा हो सकता है तो मनुष्यके स्पर्शसे वल्ली अर्थात् बेलें क्यों नहीं फलतीं ॥४॥

स्त्रीके स्पर्शमात्रसे स्त्री गर्भवती कैसे हो सकती है? गौके संगसे गौको गर्भवती होना हमने तो कहीं भी नहीं देखा। ॥५॥ जरासी मंडूकी (मेंडकी) मनुष्यको पैदा करती है ऐसा कोई विश्वास करेगा? कहीं शालिसे कोदों भी पैदा हुये देखा है? ॥६॥ यदि शुक्रके भक्षणमात्रसे ही सन्तान हो जाय तो स्त्रियोंको सन्तानके लिए पतिके संग करनेसे क्या प्रयोजन है? ॥७॥ शुक्रके स्पर्शनमात्रसे ही पुत्रोत्पत्ति हो जाय तो फिर बीजके पड़ते ही पृथ्वी क्यों नहीं धान्य देती? ॥८॥

यदि शुक्र सहित कमलके सूँघने मात्रसे ही स्त्रीको गर्भाधान हो जाता है तो भोजन सहित पात्रके (थालके) निकट होते ही तृप्ति क्यों न हो जाती? ॥९॥ मंडूकीने कन्या समझकर उसने कमलपत्र पर कैसे रख दी? क्या मेंडूक जातिमें ऐसा ज्ञान कभी किसीने देखा या सुना है? ॥१०॥ सूर्य धर्म पवन और इन्द्रके संगसे

कुन्तीके कर्ण युधिष्ठिर भीम अर्जुन ये पुत्र हुये, ऐसा किस बुद्धि-मानके हृदयमें विश्वास हो सकता है ? ॥११॥ यदि देवोंके साथ मनुष्यनीका संगम होता है तो मनुष्योंका देवांगनाओंके साथ संगम होना क्यों नहीं देखनेमें आता ? ॥१२॥ समस्त अशुचियोंका घर ऐसे महामलीन मनुष्यके शरीरमें धातु और मलरहित देव किस प्रकार रमे ? ॥१३॥

हे मित्र ! अन्य मतके शास्त्र हैं, वे सब अविचारियोंको ही रमणीक भासते हैं परन्तु विवेकी पुरुष उनका जितना २ विचार करते हैं उतने ही खण्डित हो जाते हैं ॥१४॥ महाप्रभाव सम्पन्न देवता और तपस्वीगण कन्याको भोगकर सती करते हैं, यह बात विद्वज्जन कदापि विश्वास नहीं कर सकते। क्योंकि—॥१५॥ जो परस्त्री लम्पट होकर परस्त्रियोंको सेवन करते हैं ऐसे व्यभिचारियोंको प्रभावशाली देव कैसे कह सकते हैं ? ॥१६॥

हे मित्र ! असत्य प्रलाप करनेसे क्या लाभ ? तुझे मैं जैन मतानुसार कर्णराजाकी उत्पत्तिकी सच्ची कथा कहता हूँ सो सुन ॥१७

हस्तिनापुर नगरके व्यास नामा राजाके गुणोंके घर ऐसे धृत-राष्ट्र, पांडु और विदुर नामके जगत्प्रसिद्ध तीन पुत्र हुये ॥१८॥ एक दिन किसी मनोहर उपवनमें (बागमें) क्रीड़ा करते हुये पांडुने लता-मंडपमें पड़ी हुई एक विद्याधरकी काममुद्रिका (अँगूठी) देखी ॥१९॥ पांडु उस मुद्रिकाको अँगुलीमें डालकर देखता था, इतनेमें ही उस काममुद्रिकाका मालिक चित्रांगद नामा विद्याधर अपनी मुद्रि-काको ढूँढता हुआ आ पहुँचा ॥२०॥

उस निस्पृही पांडुने उसी वक्त वह अँगूठी उस विद्याधरको सुपुर्द कर दी। सो नीति ही है—"महापुरुष परद्रव्यमें निस्पृही

होते हैं' ।।२१।। वह विद्याधर पांडुकी इस प्रकार अलोभताको देख उसको अपना परम मित्र समझने लगा। क्योंकि 'जो अन्य द्रव्यसे पराङ्मुख हैं वे जगतभरके मित्र होते हैं' ।।२२।। सो उस विद्याधरने पांडुसे कहा—हे साधु ! तू ही मेरा मित्र है। जो परद्रव्यको कूड़े कचरेके समान देखता है ।।२३।। हे मित्र ! तू उदासीन दीखता है, इसका कारण क्या है ? क्योंकि 'चतुर पुरुष अपने मित्रसे कुछ भी नहीं छिपाते' ।।२४।।

तब पांडुने कहा—हे मित्र ! सूर्यपुरमें अन्धकवृष्टि नामा राजा स्वर्गके इन्द्रके समान राज्य करता हुआ तिष्ठै है, उस राजाके त्रिलोकीका जीतनेवाले कामदेवकर ऊँची की हुई पताकाके समान एक कुन्ती नामा अतिशय सुन्दर कन्या है।।२५-२६।। सो वह कामदेवको बढ़ानेवाली कन्या उसके पिताने पहिले तो मुझे देनी की थी, परन्तु मुझे पांडुरोगी देखकर अब नहीं देता है ।।२७।। इसी कारण हे मित्र ! मेरे चित्तमें काष्ठोंको कुठारके समान मेरे मर्मोंको काटनेवाला विषाद उत्पन्न हो गया है ।।२८।। तब चित्रांगदने कहा—हे मित्र ! इस विषण्णताको छोड़, मैं तेरे उद्वेगको दूर कर दूंगा। तू मेरा कहा कर ।।२९।।

हे मित्र ! इस मेरी काममुद्रिकाको लेकर पहर ले, जिससे तू कामदेवके समान सुन्दर होकर उस अपने मनकी प्यारीको सेवन कर। जब वह गर्भवती हो जायगी तो वह राजा अपने आप तुझे ही दे देगा। क्योंकि–दूषित कन्याको अपने घरमें कोई भी नहीं रखता ।।३०-३१।। तत्पश्चात् वह पांडु उस मुद्रिकाको पहरकर उस कुन्तीके महलमें गया। सो प्रथम तो 'संसारी जीव अपने आप ही विषयलम्पटी होते हैं, जब सुगम उपाय मिल जाय तो कहना ही क्या' ।।३२।।

इस प्रकार कामाकारका बालक वह पांडु उस कुन्तीको प्राप्त होकर स्वेच्छापूर्वक सेवने लगा। सो ऐसा कौन पुरुष है जो—'अपने मनकी प्यारी स्त्रीको एकान्तमें प्राप्त होकर अपनी इच्छाको पूर्ण न करे' ॥३३। उस कुमारीको सात दिन तक उस युवा पुरुषने सेवन करके उसके गर्भारोपण कर दिया ॥३४॥ तत्पश्चात् वह पांडु वहांसे निवृत्त हो कुन्तीको वहीं छोड़कर अपने घर आ गया सो ठीक ही है। मनवाञ्छित कार्यकी सिद्धि होनेपर किसको निवृत्ति नहीं होती ? ॥३५॥

कुन्तीकी माताने उसको गर्भवती जानकर पूरे दिन होनेपर गुप्तभावसे प्रसूति करवाई। सो ठीक ही है अपने घरकी निंदाके भयसे सभी जने गुप्त बातको छिपाते हैं ॥३६॥ फिर कुन्तीकी माताने गृहकलंकके भयसे उसके पुत्रको एक संदूकमें बंद करके गंगाजीमें बहा दिया ॥३७॥ सम्पत्तिकी दुर्नीतिके सदृश उस संदूकको गंगाजी बहाकर ले जाती थी, सो चम्पापुरीके आदित्य राजाने ग्रहण किया ॥३८॥ संदूकको उघाड़कर देखा तो उसमें राजाने पवित्र लक्षणों सहित विद्वानोंकर पूजनीय सरस्वती (जिनवाणी) के अनिन्द्य अर्थके समान सुन्दर बालक देखा ॥३९॥ बालकको अपने कान पकड़े हुये देखकर राजाने उसका प्रीतिपूर्वक 'कर्ण' नाम रख दिया ॥४०॥

जिस प्रकार दरिद्री द्रव्यराशिको पाकर रक्षा करता है, उसी प्रकार वह निपुत्र राजा उसको पुत्र समझ बड़े यत्नसे रक्षा करके बढ़ाता हुआ ॥४१॥ तत्पश्चात् उस महोदयरूप आदित्य राजाके मर जानेपर वह कर्ण आकाशको चन्द्रमाकी समान त्रिभुवनको आनन्द करनेवाला चम्पावती नगरीका राजा हो गया ॥४२॥

आदित्य नामा राजाने पालनपोषण कर बढ़ाया इस कारण वह कर्ण 'आदित्यज' कहलाया है। ज्योतिष्क जातिके सूर्यका पुत्र कदापि नहीं है ॥४३॥ यदि धातुरहित देवोंके द्वारा स्त्रियें नरको उत्पन्न करती हैं तो पाषाणके द्वारा पृथ्वीमें धान्यादिक उत्पन्न होने चाहिये ॥४४॥

तत्पश्चात् दोष छिपानेके लिये अन्धकवृष्टि राजाने ये सब वृतांत जानकर वह कुन्ती पांडुको ही परणा दी—और धृतराष्ट्रको गांधारी नामकी दूसरी कन्या परणाई ॥४५॥ पुराणोंकी सत्य २ कथा तो उक्त प्रकार है और व्यासजीने और ही प्रकार कही है। सो रागद्वेष और आग्रहके ग्रसे हुये मनुष्य पाप कार्यसे नहीं डरते क्योंकि—॥४६॥ धर्मात्मा पुरुष होते हैं, वे युक्तिसे सिद्ध नहीं हो, ऐसे वचन कदापि नहीं कहते। पापीजन ही युक्तिसे अघटित वचन कहते हैं ॥४७॥

इस संसारमें सबके सर्वप्रकारके सम्बन्ध देखनेमें आते हैं परंतु ऐसा कहीं भी देखने सुनेनेमें नहीं आया कि—पांच भाइयोंके एक ही स्त्री हो ॥४८॥ यद्यपि संसारी जीव सर्वप्रकारकी धनसम्पत्तिका विभाग करते हैं। परन्तु स्त्रीका संविभाग तो नीच पुरुषोंके यहां भी निंदनीय है। ४९॥ हे मित्र! योजनगंधा नामकी धीवरीका जना व्यास कोई दूसरा ही होगा। और यह सम्यवादनीय सत्यवती राज-कन्याका व्यासपुत्र (व्यासनामा) राजा अन्य है ॥५०॥

पाराशर राजा दूसरा है। पाराशर तापसी दूसरा ही है परन्तु मूढ़ लोक नाममात्रको सुनकर कहींका कहीं सम्बन्ध लगाते हैं ॥५१॥ दुर्योधनादिक सौ पुत्र तो गांधारी और धृतराष्ट्रसे उत्पन्न हुये और जगत्प्रसिद्ध पांच पांडव हैं वे कुन्ती तथा माद्री पुत्रके

हैं ॥५२ ॥ गांधारीके सौ पुत्र तो कर्णराजासहित जरासिन्धु मामा राजाके अनुयायी सेवक थे। और पांच पांडव श्रीकृष्ण नवमें नारायणकी सेवामें रहते थे ॥५२॥ वह महाबली श्रीकृष्ण जरासिंधु प्रतिनारायणको मारकर समस्त पृथ्वीका (तीन खण्डका) राजा होता हुआ और—॥५४॥ कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिर भीम और अर्जुन तो तपस्या करके मोक्षपदको गये और माद्रीके भव्य पुत्र नकुल और सहदेव सर्वार्थसिद्धिको गये और—॥५५॥

दुर्योधनादिक भी जिनशासनकी सेवा करके अपने२ कर्मानुसार स्वर्गादिकमें जाते हुये ॥५६॥ हे मित्र! पुराणोंका अभिप्राय तो ऐसा है, व्यासजीने औरका और ही कहा है—सो नीति ही है—मिथ्यात्वसे आकुलित है चित्त जिसका, ऐसे पुरुषोंकी वाणी सत्य कैसे होय? ॥५७॥ महाभारतमें अतिशय निंदाकी कारणरूप पूर्वापरविरुद्ध कथाको देख व्यासजीने अपने मनमें इसप्रकार विचारा कि—॥५८॥ यदि इस लोकमें निरर्थक कार्य भी प्रसिद्धिको प्राप्त हो जाय तो निश्चय करके विरुद्धार्थका प्रतिपादन करनेवाला मेरा बनाया असंबद्ध यह शास्त्र (महाभारत) भी प्रसिद्ध हो जायगा ॥५९॥

इसप्रकार विचार करते २ व्यासजीने गंगाके किनारेपर अपना ताम्रपत्र बालूरेतमें गाडकर उसके उपरि एक बालूका पुंज बनाकर स्नानार्थ गंगाजीमें प्रवेश किया ॥६०॥ व्यासजीको बालुका पुंज करके स्नान करनेको जाते देख मूर्ख लोगोंने "इसप्रकार बालुकाका पुंज करके गंगास्नानार्थ जानेमें कोई भी विशेष पुण्य (धर्म) होगा" ऐसा समझकर व्यासजीकी देखादेखी सबजने बालुका पुंज बना २ कर गंगास्नान करने लगे ॥६१॥ व्यासजी स्नान करके अपने ताम्रभाजनको देखनेके लिये आये तो असंख्यात बालुके पुँजोंके समूहमें

उस स्थानका भी पता नहीं लगा सके। इस प्रकार बालुके पुँजसे गंगा तटको भरा हुवा देख समस्त लोकको मूढ़ समझकर यह श्लोक पढ़ा कि—॥६२॥

"दृष्ट्वानुसारिभिर्लोकैः परमार्थाविचारिभिः।
तथा स्वं हार्यते कार्यं यथा मे ताम्रभाजनम्" ॥ ६३ ॥

"अर्थात्—जो लोग परमार्थका विचार नहीं करके दूसरोंकी देखादेखी करते हैं, वे मेरे ताम्रभाजनकी सदृश अपना कार्य नष्ट करते हैं" ॥६४॥ इन मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकारके विस्तारसे भरे हुये लोकमें यदि कोई विचारवान पुरुष हो तो लाखोंमें कोई एक ही होगा ॥६५॥

इस कारण निश्चय है कि मेरा यह विरुद्ध शास्त्र (महाभारत) भी लोकमें बहुमान्य होगा। इस प्रकार लोकमूढ़ता विचार करके व्यासजी अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुये ॥६६॥ इस प्रकारके लौकिक पुराणोंको अपने शत्रुके वचनोंकी समान जानकर बुद्धिमानोंको प्रमाण करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है ॥६७॥ 'हे मित्र! तुझे मैं और भी पुराणोंके गपोड़े दिखाता हूं' ऐसा कहकर मनोवेगने रक्ताम्बर भेष धारण किया ॥६८॥

तत्पश्चात् अपने मित्रको साथ ले पांचवे द्वारसे पटने नगरमें प्रवेश किया और वादशालामें जाकर भेरी बजाकर सुवर्ण सिंहासन पर बैठ गया ॥६९॥ भेरीका शब्द सुनते ही समस्त ब्राह्मण एकत्र होकर आये और मनोवेगसे कहा कि—तू विचक्षण पुरुष दीखता है, सो हमारे साथ किस विषयमें वाद करैगा? कुछ जानता भी है कि नहीं? ॥७०॥ रक्तपटधारी मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो! मैं कुछ

भी शास्त्र नहीं जानता। सहज ही यह अपूर्व भेरी बजाकर इस सुवर्ण सिंहासन पर बैठ गया हूं ॥७१॥

ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र! हंसीको छोड़कर सत्य सत्य ही स्पष्टताके साथ कहो। समीचीन कहनेवालोंके साथ हंसी करनेवालोंकी निंदा की जाती है ॥७२॥ मनोवेगने कहा—मैं अपने देखे हुये आश्चर्यको अवश्य कहूंगा परन्तु आप विना विचारे कुछका कुछ न समझ लें ॥७३॥ ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र! तू किसी प्रकार भी मत डर, जो कुछ कहना हो सो कह। हम सब न्यायवासीन मनवाले विवेकी हैं ॥७४॥ तब रक्तपटधारी मनोवेगने कहा—यदि आप सब विवेकी और नैयायिक हैं, तो मैं कहता हूं सो सुनो। हम दोनों उपासकोंके पुत्र हैं। सो बौद्धगुरुकी सेवा किया करते हैं ॥७५॥

एक समय उन बौद्धोंने अपने कपड़े सुखानेके लिये बिछा दिये थे और हम दोनों थमें ठी लेकर उन कपड़ोंकी रक्षा करने लगे ॥७६॥ उससमय हम दोनों बड़े यत्नसे उन कपड़ोंकी रक्षा करते थे। इतनेमें ही बड़े भयंकर मोटे२ दो गृध्र (गीदड़) आये ॥७७॥ उनके भयसे हम दोनों एक मट्टीके टीलेपर जा चढ़े परन्तु उन दोनों गीधोंने उस टीलेको उठाकर आकाशमार्गसे चलना प्रारंभ किया ॥७८॥ हमारा चिल्लाना सुनते ही बौद्ध भिक्षुक हमारी रक्षाके लिये आये परन्तु इतनेमें तो वे शीघ्रगामी गीध बारह योजन दूर चले आये तत्पश्चात्—॥७९॥ वे दोनों गृध्र उस स्तूपको (टीलेको) जमीन पर रखके हम दोनोंको भक्षण करनेमें उद्यमी हुये किंतु उसी समय उन्होंने अनेक प्रकारके शस्त्रधारी शिकारियोंको (कसाइयोंको) देखा ॥८०॥

उनको देखते ही वे दोनों गीध भयभीत होकर हम दोनोंको खाना छोड़ भाग गये। सो ठीक ही है, प्राण जानेकी शङ्कामें ऐसा कौन है जो भोजन करना प्रारम्भ करे?' तत्पश्चात्— ८१॥ उन शिकारियोंके साथ शिवनामा देशमें आकर हम दोनोंने अपने मनको निश्चल करके विचार किया कि—॥८२॥ इस परके देशमें तो आये परन्तु रस्ता खर्चके और मार्गके जाने विना दिशाभ्रम होजायगे तो अपने घरको कैसे जाएंगे? ॥८३॥ इससे तो श्रेष्ठ यही है कि अपन दोनों अपने घर कुलसे चले आये बुद्धभाषित तापको ग्रहण करें। जिससे उभय-लोकमें नित्य समीचीन सुखकी प्राप्ति हो ॥८४। रक्तवस्त्र तो है ही केवलमात्र मूँड और मूंडा लेंगे। अनर्थोंका कारण ऐसे घरसे अपन क्या करेंगे? ॥८५॥

इस प्रकार विचार करके हम दोनोंने अपने आप ही बुद्धभाषित व्रतोंको ग्रहण कर लिये। क्योंकि चतुर होते हैं वे स्वयमेव ही धर्म कार्योंमें लग जाते हैं। किसीके उपदेशकी आवश्यकता नहीं रखते तत्पश्चात्—॥८६॥ हम दोनों नगरके समूहोंसे भूषित इस पृथ्वीमें भ्रमण (सैर) करतेर आज ब्राह्मणोंसे भये हुये आपके इस नगरमें आये हैं ॥८७॥ शृगालोंके द्वारा टीलेको उठाना और ले जाना आदिका जो कुछ आश्चर्य हमने प्रत्यक्षतया देखा था, वह आपके सम्मुख निवेदन किया ॥८८॥

इस वचनको सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र! तुम तपस्वी होकर भी इस प्रकार असत्य भाषण कैसे करते हो? ॥८९॥ मालूम होता है कि—सृष्टिकर्त्ताने तीनलोकके असत्यवादियोंको इकट्ठा करके ही तुम्हें बनाया है क्योंकि—ऐसा असत्यवादी दूसरा कोई भी हमारे

देखने या सुननेमें नहीं आया ॥९०॥ ब्राह्मणोंके वचन सुनकर वह विद्याधर राजाका मनीषी पुत्र बोला—हे ब्राह्मणो ! आपके पुराणोंमें क्या ऐसे झूठे वचन नहीं हैं ? अवश्य हैं परन्तु यह समस्त जगत परके दोषोंको ही देखता है। अपने दोषोंको कोई नहीं देखता। जैसे चन्द्रमाका कलङ्क तो सब कोई देखते हैं, परन्तु अपने नेत्रमें डाले हुये कज्जलको (सुरमेको) कोई भी नहीं देखता ॥९१-९२॥

यह सुनकर वेदाभ्यासियोंमें श्रेष्ठ ऐसे ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र ! यदि तूने हमारे पुराणोंमें ऐसा कहीं भी देखा हो तो निःशंक होकर कह। हम विचारकरके ऐसे असत्यको अवश्य छोड़ देंगे ॥९३॥ इस प्रकार सुनकर जिनेन्द्र भगवानके वचनरूपी जलसे धोई गई है बुद्धि जिसकी, ऐसे जितशत्रु राजाके पुत्र मनोवेगने कहा—हे विप्रो ! यदि आप असत्य जानकर छोड़ दोगे तो मैं आपके पुराणार्थको कहता हूँ ॥९४॥

जिस समय वीररसके धारक रामचन्द्रजीने त्रिशिख खरदूषणादि राक्षसोंको मारकर सीता और लक्ष्मण सहित वनमें रहते थे उस समय वहांपर लंकाधिपति रावण आया और उस दुष्टवेशी रावणने सोनेका हिरण बनाकर रामचन्द्रको ठगाया और सीताकी रक्षा करनेवाले जटायुको मारकर सीताको हरण करके ले गया। सो ठीक ही है—'कामी पुरुष किसको उपद्रव नहीं करते' तत्पश्चात्—॥९५-९६॥ रामचन्द्रजी बलवान बलिराजाको मारकर वानरों सहित सुग्रीवको राजा बना दिया और अपनी प्यारी सीताका पता लगानेके लिये हनुमानको भेजा तब—॥९७॥ लङ्कामें सीताको

देखकर उस अमितगति वेगवाले हनुमानके आनेपर रामचन्द्रजीने बन्दरोंको आज्ञा देकर बड़े२ पर्वतोंके द्वारा समुद्रमें शीघ्र ही पुल बन्धवाया सो ठीक ही है, 'स्त्रीकी वांछा करनेवाले क्या क्या आश्चर्य-कारक कार्य नहीं करते' ।९८॥

इतिश्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें पंद्रहवां परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥१५॥



सोलहवाँ परिच्छेद

अथानन्तर एक एक बंदरने लीलामात्रमें पांच पांच पर्वतोंको उठाकर आकाशमें अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते हुये समुद्रका पुल तैयार कर दिया ॥१॥ सो हे ब्राह्मणो ! वाल्मीकी मुनिके बनाये हुये रामचन्द्रका चरित्र रामायण नामके ग्रंथमें इस प्रकार कहा है कि नहीं ? ॥२॥ तब ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र ! इस रामायणके प्रसिद्ध सत्य कथनको कौन अन्यथा कह सकता है ? क्योंकि हाथसे उदयरूप प्रभातको कोई भी नहीं छिपा सकता ॥३॥ तत्पश्चात् रक्तपटधारी मनोवेगने कहा—हे विप्रो ! एक२ बन्दर पांच२ पर्वत खेलके साथ आकाशमार्गमें ले जावें तो दो बड़े२ गृध्र एक छोटेसे टीलेको आकाशमें लेकर चले गये, इस बातको असत्य कैसे कह सकते हो ? ॥४-५॥

आपका कहा हुवा तो सत्य और मेरा वचन असत्य सो यहांपर मुझे विचारशून्यताके सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं दिखता ॥६॥ आपके ऐसे शास्त्रमें देवधर्मका भी स्वरूप ठीक २ नहीं है, सो जिसका कारण ही सदोष है, उसका कार्य निर्दोष कैसे हो ? ॥७॥ ऐसे मिथ्याज्ञान और चारित्रवालोंमें बैठना हम सरीखोंको योग्य नहीं है। इसप्रकार कहकर वे दोनों मित्र वहांसे चले आये ॥ ८ ॥ रक्ताम्बर भेषको छोड़कर मनोवेगने अपने मित्र पवनवेगसे कहा—समस्त प्रकारसे असम्भव अभिप्रायको प्रगट करनेवाले शास्त्र तुमने सुने ? ॥९॥ यह जो रामायणादिकमें धर्म कहा है, उसके अनुष्ठान करनेसे कुछ भी फलकी सिद्धि नहीं है क्योंकि बालूरेतके पीलनेसे कभी तेल नहीं निकलता' ॥१०॥

हे मित्र ! बंदरोंके द्वारा राक्षस (देव) कदापि नहीं मारे जा सकते । क्योंकि कहां तो महा महाऋषिके धारक राक्षस और कहां ज्ञानरहित पशु ? ॥११॥ जरा विचार तो कर कि–बंदर बडेर भारी पर्वतोंको किस प्रकार उठा सकते हैं ? और वे अगाध समुद्रमें डाले हुये किस प्रकार रह सकते हैं और किस प्रकार पुल बन्ध सकता है ? ॥१२॥ जो रावण देवताओंसे भी अवध्य है, ऐसा वर पाया हुवा है; उसको मनुष्य किस प्रकार मार सकता है ? ॥१३॥ तथा देवता ही बन्दर होकर राक्षसोंके अधिपतिको मारा कहो तो यह कहना भी मनोवांछित गतिको प्राप्त नहीं होता ॥१४॥ शंकरने सर्वज्ञ होकर रावणको ऐसा वर क्यों दिया ? जिससे देवताओंके भी बड़ा उपद्रव हुवा ॥१५॥

हे मित्र ! पानीको मथन करनेसे (बिलोनेसे) मक्खन नहीं निकलता उसी प्रकार अन्य मतके पुराणोंका विचार करने पर वे सर्वतया सार रहित दीखते हैं ॥१६॥ हे मित्र ! ये लोगोंपर कल्पना किये गये सुग्रीवादिक बानर और रावणादिक राक्षस नहीं थे ॥१७॥ ये सब विद्याविभवसे सम्पन्न जैनधर्ममें लवलीन पवित्र सदाचारी बडे प्रतापी मनुष्योंके राजा हैं। इनकी सेनामें बन्दरोंके चित्रसे चिह्नित धुजा होनेसे ही वे बानरवंशी कहनेमें आते हैं और बड़ी विद्याओंके धारक रावणादिककी ध्वजामें राक्षसोंकी मूर्तिका चिह्न रहनेसे राक्षसवंशी कहे जाते हैं ॥१८–१९॥ सो हे मित्र ! चन्द्रमाके समान उज्ज्वल दृष्टिके धारक भव्य हैं उनको जिस प्रकार महावीर-स्वामीके गौतम गणधरने श्रेणिक राजासे वर्णन किये, उसी प्रकार श्रद्धान करना चाहिए ॥२०॥

हे भद्र ! अन्यमतके पुराणोंके गपोड़े और भी दिखाता हूं,

इसप्रकार कहकर पवनवेगसहित श्वेताम्बरका भेष धारण किया और—॥२१॥ पटनानगरमें छठ्ठे द्वारसे प्रवेश करके शीघ्र ही वाद सूचनाकी भेरी बजा सोनेके सिंहासनपर बैठ गया ॥२२॥ भेरीका शब्द सुनते ही ब्राह्मणोंने आकर मनोवेगसे पूछा—तू कौनसा शास्त्र जानता है? तेरा गुरु कौन है? हमारे साथ कौनसा वाद कर सकता है? सो कह! विना कहे तो केवल तेरी सुन्दरता ही दिखती है ॥२३॥ मनोवेगने कहा—न तो मैं कुछ जानता हूँ और न मेरा कोई गुरु है। वादका नाम भी नहीं जानता तो वाद करनेकी शक्ति कहांसे होगी? ॥२४॥ मैं तो यहापर पहिले नहीं देखा, ऐसा सुवर्णसिंहासन देखकर बैठ गया और इस भेरीकी आवाज देखनेकी इच्छासे भेरी बजाकर देखी है ॥२५॥ हम तो शास्त्र ज्ञानरहित ग्वालेके मूर्ख लड़के हैं। किसी भयसे अपने आप ही तप ग्रहण करके पृथ्वीमें भ्रमण करते फिरते हैं ॥२६॥

ब्राह्मणोंने कहा—तुमने किस भयसे भयभीत होकर ऐसी युवावस्थामें तप ग्रहण किया सो कृपा करके कहो। हमको सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥२७॥ तब उस श्वेतपटधारी मनोवेगने कहा— हमारा पिता आभीरदेशके वृक्ष नामक गांवमें उरणियोंके (भेड़ोंके) पालनेका रोजगार करता हुवा रहता है ॥२८॥ एक दिन उरणियोंकी रक्षा करनेवाले हमारे नौकरको ज्वर होनेसे हमारे पिताने उरणियोंकी रक्षा करनेके लिये हम दोनों भाइयोंको भेजे। सो हम दोनों वनमें गये ॥२९॥ हमने उस वनमें महा उदयरूप कुटुम्बीके समान शाखा उपशाखादिकर सहित फलोंसे नम्रीभूत एक कवीठका (कैथका) वृक्ष देखा ॥३०॥

उसको देखकर कवीठ खानेकी इच्छासे मैंने इस भाईसे कहा—

हे भाई ! तू छरणियोंकी रक्षा कर, मैं इस पेड़के कवीठ खाकर आता हूँ ॥३१॥ तब छरणियोंकी रक्षार्थ भाईके चले जानेपर मैं उस कवीठके पेड़को दुरारोह (बहुत ऊँचा) देखकर विचार किया कि—॥३२॥ इस वृक्षपर तो मैं किसी प्रकार भी नहीं चढ़ सकता। फिर किस प्रकार कवीठ खाकर अपनी भूख मिटाऊँ ? ॥३३॥ फिर मैंने उस कवीठके नीचे जाकर विचार किया तो कोई उपाय नहीं सूझा, तब लाचार हो शिरको काटकर अपने समस्त प्राणोंसहित कवीठके पेड़पर फेंक दिया ॥३४॥ मेरे मस्तकने ज्यों ज्यों कवीठ खाने शुरू किये, त्यों त्यों महासुखकी करनेवाली तृप्ति आने लगी अर्थात् मेरी भूख मिटने लगी ॥३५॥

जब मेरे मस्तकने नीचे नजर करके मेरा पेट पूर्ण भरा हुवा देखा तो पेड़परसे झट आकर मेरी धड़पर बेजोड़के पूर्ववत् चिपक गया। तत्पश्चात् मैं अपने छरणे देखनेको गया ॥३६॥ जब मैं वहां जाकर देखता हूँ तो मेरा भाई एक जगह सो रहा है। मेषोंका (भेड़ोंका) कहीं पता भी नहीं है ॥३७॥ मैंने अपने भाईको उठाकर पूछा तो उसने कहा—हे भाई ! मेरे सो जानेपर न मालूम कहां चले गये ॥३८॥ तब मैंने अपने भाईसे कहा—अब हम छरणियोंको खोकरके घरपर कैसे जावे ? पिताजी सुनते ही कोप करेंगे और हम दोनोंको बहुत ही मारेंगे और—॥३९॥ बिना भेषके परदेशमें भी जावेंगे तो भूखसे मर जायेंगे। इस कारण हे भद्र ! अपन दोनों कोई भेष धारण करें ॥४०॥

अपने यहां लाठी कम्बलसहित मुंडित मस्तकवाले श्वेतांबरी साधुओंको भोजनादिकका बड़ा सुख है ॥४१॥ अपने कुलसे ऐसे श्वेताम्बरी साधुओंकी ही भक्ति होती आई है सो अपन दोनों तो

श्वेतपटधारी ही बनें। अन्य भेषसे कुछ प्रयोजन नहीं ॥४२॥ इस प्रकार विचार करके हम दोनों अपने आप ही श्वेताम्बरी साधु बन गये और पृथ्वीमें भ्रमण करते २ आज आपके इस नगरमें आये हैं ॥४३॥ ब्राह्मणोंने कहा—यद्यपि तू नरकमें जानेसे नहीं डरता तो व्रती पुरुषको इस प्रकारका असत्य भाषण करना सर्वथा अयोग्य है ॥ ४४ ॥

यह सुनकर श्वेतपटधारी मनोवेगने कहा—आपके वाल्मीकिकृत रामायणमें इस प्रकारके वचन क्या नहीं हैं ? ॥४५॥ तब ब्राह्मणोंने कहा—यदि तूने रामायणमें कहींपर भी ऐसे वचन देखे हैं तो निःसन्देह कह। तब मनोवेगने कहा—॥४६॥ दश मस्तक और बीस भुजावाला अतिशय धीरवीर त्रिभुवनमें प्रसिद्ध राक्षसोंके अधिपति रावणने शिवजीमें अत्यन्त स्थायी भक्ति प्रगट करनेके लिये तलवारसे अपने ९ मस्तक काट डाले और पुष्पके दल समान हैं होट जिनके ऐसे मुखरूपी नव कमलोंके द्वारा शिवजीकी भक्तिपूर्वक पूजा करी। सो ठीक ही है, 'वरकी इच्छा रखनेवाला क्या क्या नहीं करता' ॥४७-४८-४९॥

तत्पश्चात् रावणने बीस हाथोंसे गंधर्वदेवोंको भी मोहित करनेवाला हस्तक नामा संगीत करना प्रारम्भ किया ॥५०॥ महादेवने भी पार्वतीके मुखपरसे अपनी दृष्टिको हटाकर रावणके साहसको देखकर उसको मन चाहा वर दिया ॥५१॥ तत्पश्चात् गर्मर खूनसे जमीनको सिंचन करती हुई उस मस्तकमालाको रावणने जोड़ रहित अपने कन्धों पर चिपकालिया ॥५२॥

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार वाल्मीकिने रामायणमें लिखा है कि नहीं सो आप लोग यदि सत्यवादी हैं तो ठीकर कहो ? ॥५३॥

ब्राह्मणोंने कहा—हे साधु ! यह सब सत्य है। इस प्रकार प्रसिद्ध व प्रत्यक्ष बातको अन्यथा कौन कह सकता है ? ५४॥ तब श्वेतपटधारीने कहा—जब रावणके काटे हुये नौ मस्तक उसकी धड़के लग गये तो मेरा एक मस्तक कैसे नहीं चिपक सकता ? ॥५५॥ आपका तो यह वचन सत्य और मेरा वचन असत्य है, इसमें सिवाय मोहके माहात्म्यके और कुछ कारण नहीं दिखता ॥५६॥

यदि आप कहो कि—रावणके सिर तो महादेवजीने जोड़ दिये, सो कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि महादेवजीमें मस्तक जोड़ देनेकी शक्ति होती तो तपस्वियोंके द्वारा कटाया हुआ अपना ** क्यों न जोड़ लिया ? ॥५७॥ जो महादेव अपना उपकार करनेमें असमर्थ है, वह अन्यका उपकार कदापि नहीं कर सकता। क्योंकि जो वैरीकी मारसे अपनी ही रक्षा नही कर सकता, वह दूसरेकी रक्षा कैसे करेगा ? ॥५८॥ हे विप्रो ! और भी सुनो। श्रीकण्ठा नामकी ब्राह्मणीने जगत्प्रसिद्ध दधिमुख नामा पुत्र (जिसके सिवाय मस्तकके हाथ पांव धड़ पैर कुछ भी नहीं थे) उत्पन्न किया ॥५९॥

सो उस दधिमुखने थोड़े ही दिनोंमें नदियोंको समुद्रकी समान मनुष्यको निर्मल करनेवाले समस्त वेद और स्मृति आदिक कण्ठाग्र कर लिये ॥६०॥ एक दिन उस दधिमुखने (मस्तकने) अगस्त्य मुनिको देखकर भक्तिपूर्वक प्रार्थना करी—हे मुने ! आज तो आप मेरे घरपर ही भोजन करें ॥६१॥ अगस्त्य मुनिने कहा—हे भद्र ! कहां है वह तेरा घर ? जहां कि मुझे आदरपूर्वक भोजन करावैगा ? ॥६२॥ दधिमुखने कहा—हे मुने ! क्या मेरे पिताका घर है सो मेरा घर नहीं है ? मुनिने कहा—तेरा उस

घरसे कुछ भी संबन्ध नहीं है क्योंकि जिसके घरमें दानधर्म क्षमादि गुणविशिष्ट साध्वी गृहिणी (स्त्री) हो वही गृहस्थ (घरवाला) होता है। कुमारावस्थामें दान देने योग्य (दाता) गृहस्थी नहीं हो सकता ॥६३–६४॥

इस प्रकार कहकर अगस्त्य मुनिके चले जानेपर दधिमुखने अपने माता–पितासे कहा–जिस प्रकार हो, मेरा कुमारपणा दूर करो अर्थात् मेरा विवाह करो ॥६५॥ दधिमुखके माता–पिताने कहा—हे पुत्र ! तुझे अपनी पुत्री कौन देगा ? तो भी हम तेरी यह इच्छा पूर्ण करेंगे ॥६६॥ तत्पश्चात् बहुतसा द्रव्य देकर किसी दरिद्रकी पुत्रीके साथ महोत्सव पूर्वक दधिमुखका विवाह कर दिया ॥६७॥ कुछ दिनोंके पश्चात् दधिमुखके माता–पिताने कहा—हे बेटे ! अब हमारे पास द्रव्य नहीं रहा, सो तू अलग होकर अपनी वल्लभाका पालन पोषण कर ॥६८॥

यह सुनकर दधिमुखने अपनी स्त्रीसे कहा—हे वल्लभे ! पिताने अपनेको घरसे निकाल दिया, सो चलो कहींपर भी रहकर जीवन व्यतीत करें ॥६९॥ तत्पश्चात् उस पतिव्रताने अपने पतिको (दधिमुख नामक मस्तकको) छींकेमें रखकर पृथिवीतलमें घर २ दिखलाती हुई फिरने लगी ॥७०॥

इसी प्रकार पूजा प्रतिष्ठा पाती हुई वह पतिव्रता उज्जयिनी नामा नगरीमें आई। उस उज्जयिनी नगरीके चारों तरफ बडे बडे कैरोंका बन (जंगल) था ॥७१॥ इस प्रकार विकल (मस्तकमात्र) पतिको पालती हुई देखनेसे सज्जने उसको भक्तिपूर्वक अन्नवस्त्रादि देने लगे ॥७२॥ उसने अपने पतिसहित छींकेको टिंटाकीलिक कहिये कैरोंकी झाडीमें अथवा कैरकी डालीमें रखकर वह उज्जयिनीमें

भिक्षार्थ चली गई। [यहां टिट शब्दका अर्थ जुवारी और टिंटाकीलिक शब्दका अर्थ जुवारियोंका घर भी होता है। सो वह जुवारीखानेकी खून्टीपर छींका रखकर गई ऐसा भी अर्थ हो सकता है] ॥७३॥ वहांपर परस्पर दो जुवारियोंका युद्ध हो गया। जिसमें एकने दूसरेका माथा तरवारसे काट डाला ॥७४॥

उसी समय एककी तलवारके लगनेसे वह दधिमुखका छींका भी कट गया। तब वह दधिमुख (मस्तक) नीचे गिरते ही उस धडपर लग गया ॥७५॥ निःसंधिरूप (जिसमें जोड़ लगनेका कोइ चिन्ह नहीं दी ऐसा) मस्तकके जुड़ जानेसे वह दधिमुख सर्वाङ्ग-सुन्दर समस्त काम करनेमें समर्थ ऐसा पुरुष होगया ॥७६॥ इस प्रकार कहकर मनोवेगने ब्राह्मणोंसे कहा—हे विप्रो ! अपने मनसे आप विचार करके शीघ्र ही कहैं—यह वाल्मीकिका वचन सत्य है कि—नहीं ? ॥७७॥ ब्राह्मणोंने कहा—बेशक यह सत्य है। ऐसा कौन है जो इस कथनको असत्य कह सके ? क्योंकि—उदयरूप सूर्यको अनुदयरूप कौन कह सकता है ? अर्थात् कहीं दिनकी भी रात हो सकती है ? कदापि नहीं ॥७८॥

तब मनोवेगने कहा—यदि दधिमुखका मस्तक जो कि कटा हुवा नहीं था और वह अन्य मनुष्यकी धड़के संधि रहित लग गया तो मेरा कटा हुवा मस्तक तुरंत ही जुड़ गया इसे क्यों नहीं सत्य कहते ? ॥७९॥ तथा तीक्ष्ण खड्गके द्वारा रावणने अंगदके दो टुकडे कर डाले और फिर हनूमानने कैसे जोड़ दिये ? और भी सुनो ॥८०॥ एक दानवेन्द्रने पुत्रप्राप्तिके अर्थ देवीकी उपासना करी। देवीने प्रसन्न होकर उसकी वांछा पूर्ण करनेके लिये एक पिंड (लड्डू) दिया और कहा—यह पिंड तेरी स्त्री खावैगी तो तेरे पुत्र

होगा । दानवेन्द्रके दो स्त्री थीं । सो उसने एक स्त्रीको वह पिंड दे दिया । दोनोंमें भी परस्पर अनुराग था, इस कारण उसने वह पिंड आधा आधा करके आधा आप खाया और आधा अपनी सौतको खिलाया । इसलिये उससे उन दोनोंके ही गर्भ रह गया ॥८१-८२॥

जब उन दोनोंके गर्भसे दिन पूरे हो गये, तब उन दोनोंके मनुष्यका आधा २ अङ्ग उत्पन्न हुवा । सो उनको निरर्थक समझ घरके बाहर फेंक दिया परन्तु जरा नामकी राक्षसीने उन दोनों खण्डोंको मिलाया तो दोनोंका एक लड़का हो गया । वही लड़का देवमनुष्योंको जीतनेवाला प्रशंसनीय है पराक्रम जिसका, ऐसा जगत्प्रसिद्ध जरासन्ध नामका राजा हुवा ॥८३-८४॥

हे ब्राह्मणो ! जब घावरहित शरीरके दो टुकड़े जुड़कर एक हो गये तो मेरा मस्तक तुरतका कटा हुवा ताजे खून सहित होने पर भी कैसे नहीं जुड़ा ? ॥८५॥ जरासन्ध और अङ्गदादि जुदे २ कलेवर जुड़कर जीवित रहे तो मेरा धड़ और मस्तक कैसे नहीं जुड़ा ? ॥८६॥ तथा और भी सुनो । पार्वतीका पुत्र कार्तिकेय (षडानन) छः टुकड़ोंसे जोड़कर बनाया गया है तो मेरा कटा हुवा देह और मस्तकका जुड़ना क्यों नहीं विश्वास किया जाता ? ॥८७॥ इसके सिवाय षडानन देव है, वह छही मुखोंसे खाता है और मनुष्यनीके उत्पन्न हुवा सो यह भी असंभव है ॥८८॥ तथा देवांगनाके उत्पन्न हुआ कहो सो भी नहीं बनता । क्योंकि रक्तमलादि रहित देवांगनाके गर्भका होना शिलाके (पत्थरके) गर्भ होनेकी समान असम्भव है ॥८९॥

ये सब सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—हे भद्र ! तूने जो कहा सो

सब सत्य हैं—परन्तु तेरे मस्तकने तो वृक्षपर फल खाये और नीचे तेरा पेट भर गया। यह कैसे सत्य हो सकता है? ।।९०।। तब श्वेत वस्त्रधारी मनोवेगने कहा—हे ब्राह्मणो! श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे मरे हुये देहरहित पिता पितामहादिकी तृप्ति होती है तो मेरा शरीर मस्तकके निकट रहते मेरी तृप्ति व उदरपूर्ति क्यों नहीं हो सकती? ।।९१।। बड़ा आश्चर्य है कि—जो जलाकर खाक कर दिये गये और जिनको मरे हुये बहुत काल बीत गया, ऐसे पित्रादिक तो अन्यको भोजन करानेसे तृप्त हो जाते हैं और मेरा शरीर पास रहते भी मेरी तृप्ति नहीं हो? ।।९२।।

इसी प्रकार नर्कके भयसे भयभीत न होकर मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे अन्धे होकर व्यासादिक धर्ममें प्रवीण महान् पूजनीय पुराण पुरुषोंके (श्रेष्ठ पुरुषोंके) विषयमें भी कुछका कुछ बक दिया है।।९३।। जैसे कि—दुर्योधन जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंका भ्रमर धन्य पुरुष चर्मशरीरी कहिये उसी भवसे मोक्षपदको प्राप्त होनेवाला था, सो युद्धमें भीमके द्वारा मारा गया। इस प्रकार व्यासने कहा है सो सर्वथा असत्य है और—।।९४।। मुक्तिरूपी स्त्री के आलिंगन करनेकी है वाञ्छा जिनके, ऐसे मोक्षगामी कुम्भकर्ण इन्द्रजीतादि विद्याधर पुरुषरत्नोंको व्यासने निन्दनीय मांसके भक्षण करनेवाले दुष्ट और मनुष्योंको खानेवाले राक्षस बताया है सो बड़ा अन्याय किया है ।।९५।। जो बालि महात्मा कर्मबन्धोंको नष्ट करके सिद्धि-वधूके वरपनेको प्राप्त हुये अर्थात् मोक्षमें गये, उनको बाल्मीकिने रामसे मारा गया लिखा है सो सर्वथा असत्य है ।।९६।।

एक समय कैलास पर्वतपर बालिमुनिके ध्यानस्थित बैठे रहनेके

कारण कैलाशपरसे जाता हुआ रावणका विमान अटक गया। जिससे रुष्ट होकर रावणने अपने विद्याबलसे शरीरको बड़ा करके कैलाश-पर्वतको उठाकर समुद्रमें डाल देनेको तत्पर हुवा ॥९७॥ कैलाश-पर्वतके जिनमन्दिरोंकी रक्षा करनेके लिये बालमुनिराजने अपने पांवके अँगूठेसे कैलाशको दबा दिया, तब लंकाधिपति रावण पांवोंको संकोचकर बहुत रोया ॥९८॥

इसप्रकार बालिमुनिके द्वारा कैलाशकी रक्षा हुई, सो लोकप्रसिद्ध है। परन्तु व्यासादिक कवि हैं, सो रुद्रके लिये जोड़ते हैं। सो कहां तो मुनिसुव्रत भगवानके तीर्थमें होनेवाला रावण और कहां वर्द्धमान-स्वामीके समयमें होनेवाला रुद्र ! कहींका कहीं जोड़ लगा दिया और—॥९९॥ अहल्याके संयोगसे तो दीनवृत्ति इन्द्र नामा विद्याधर दूषित हुवा था—और मूर्खोंने निर्मलवृत्तिवाले सौधर्मस्वर्गके पति इंद्रको भ्रष्ट हुआ कह दिया। सो ऐसा कदापि नहीं है। क्योंकि देव और मनुष्यनीका संग कदापि नहीं हो सकता और—॥१००॥

सौधर्मस्वर्गका अधिपति महात्मा, सबसे अधिक है लक्ष्मी जिसकी ऐसे इन्द्रको 'रावणने जीत लिया' इसप्रकार नष्ट बुद्धियोंने प्रसिद्ध किया है, सो यह कहना कैसा है जैसे कि कीड़ेने सिंहको जीत लिया ॥१०१॥ इन्द्र नामा विद्याधरकी जगह स्वर्गपति इन्द्रदेवको जीता हुवा कहते हैं। सो ठीक ही है कि—'विचारशून्य दुर्जन होते हैं, वे इसीप्रकार महापुरुषोंको कलंकित करके जगतमें प्रसिद्ध करते हैं' ॥ १०२ ॥ जो विष्णु (कृष्ण नारायण) जगतका पूजनीय जगत्प्रसिद्ध महाबली तीन खण्डका अधिपति था, उसने अपने नौकर अर्जुनका सारथीपना व दूतपना किया कहते हैं सो यह कैसा आश्चर्य और ऐसे महापुरुषको कैसा कलंकित किया है ? ॥१०३॥

सो हे ब्राह्मणो ! ये सब पुराण जगतके जीवोंके चित्तमें भ्रम पैदा करनेवाले और असत्यार्थका प्रकाश करनेवाले हैं। इस प्रकार जानकर इन लौकिक पुराणोंका अमितगति कहिये अपरिमान ज्ञानके धारक निर्मल चित्तवाले पुरुषोंको चाहिये कि—अपने मनमें विश्वास न रक्खे ॥१०४॥

इतिश्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें सोलहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥१६॥



सत्रहवाँ परिच्छेद

जब ब्राह्मणोंको निरुत्तर देखा तो वे दोनों विद्याधर पुत्र वहांसे निकलकर अनेक वृक्षोंसे शोभित उसी उपवनमें (बागमें) आ गये और—॥ १ ॥ श्वेताम्बरके भेष छोड़कर सज्जनका समान नम्रीभूत विचित्र फलवाले एक वृक्षके नीचे बैठे ॥ २ ॥ तब जिनमत प्रश्न करनेकी इच्छासे पवनवेगने कहा—हे मित्र ! ब्राह्मणोंके शास्त्रोंका विशेष और भी सुना—॥३॥ तब मनोवेगने कहा—हे मित्र ! ब्राह्मणोंके यहां धर्मादिकमें प्रमाणभूत एक वेद-शास्त्र है उसको वे लोग अकृत्रिम (अपौरुषेय) और निर्दोष बताते हैं परन्तु उसमें संसाररूपी वृक्षको बढ़ानेवाली हिंसाका प्रतिपादन किया गया है, इस कारण ठगधूर्तोंके अथवा निशाचरोंके शास्त्रकी समान समझकर उत्तम पुरुष उसको प्रमाण नहीं करते क्योंकि—॥५॥

वेदमें कही हुई हिंसा ही यदि धर्मका कारण हो जाय तो फिर वेदमें और ठगोंके शास्त्रमें कुछ भी अन्तर (फर्क) नहीं दीखता ॥६॥ धर्मके प्रतिपादन करनेवाले वेदमें अपौरुषेयताका प्रतिपादन करते हैं परन्तु विचार करनेसे किसी प्रकार भी अपौरुषेयता सिद्ध नहीं होती क्योंकि ॥७॥ तालुकण्ठ ओष्ठादिसे उत्पन्न हुये वेदको अकृत्रिम कैसे कह सकते हैं ? यदि ऐसा कहा जायगा तो सूत्रधारके बनाये हुये महलको भी अकृत्रिम मानना पड़ैगा ॥८॥ यदि कोई कहै कि—ताल्वादिक तो वेदको प्रकाश करनेवाले हैं न कि उत्पन्न करनेवाले। सो यह कहना भी नहीं बनता। क्योंकि—इसमें कोई भी निश्चय-कारक हेतु नहीं दीखता। जैसे दीपक प्रकाशक है, उससे घटपटादि प्रकाशित होते हैं। परन्तु घटपटादिक जिस प्रकार विना दीपकके

भी प्रकाशित हो सकते हैं, उस प्रकार तालुआदिके बिना वैदिक शब्द कदापि प्रकाशित नहीं हो सकते ॥९-१०॥ तथा कृत्रिम शास्त्रोंमें और वेदोंमें कोई विशेषता भी नहीं दीखती फिर वैदीक लोग किस प्रकार उसकी अपौरुषेयता सिद्ध करते हैं? ॥११॥

इसके अतिरिक्त यदि तालुकण्ठ ओष्ठादिक प्रकाशक हैं तो जिस प्रकार दीपक अनेक घटपटादिको एक साथ ही प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार तालु आदिक वेदको एक साथ ही प्रकाशित क्यों नहीं करते? ॥१२॥ सर्वज्ञके बिना वेदोंका अर्थ स्पष्टतया (यथार्थ) किस प्रकार प्रकट हो सकता है? यदि वेद स्वयं ही अर्थ प्रकाशक है तो इसमें अनेक विसंवाद खड़े होते हैं। सो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि—जैन बौद्धादिके सिवाय शैव वैष्णव दयानन्दी आदि समस्त मतवाले अपनेको वेदानुयायी कहते हैं। परन्तु परस्पर एक दूसरेकी निंदा करते और वेदका असत्य अर्थ करनेवाला बताते हैं ॥१३॥

यदि वेद अनादिनिधन (अकृत्रिम) ही है तो वेदमें इस युगमें होनेवाले ऋषियोंके हजारों गोत्र और शाखाओंका वर्णन कैसे लिखा हुवा है? ॥१४॥ यदि कोई कहैं कि—वेदका अर्थ परम्परासे जाना जाता है तो यह कहना भी ठीक नहीं हैं क्योंकि जिसका मूल कारण सर्वज्ञ नहीं है, उसकी परम्परा कहांसे आई? ॥१५॥ यदि कोई कहै कि समस्त असर्वज्ञ मिलकर सर्वज्ञके सदृश वेदार्थको जान सकते हैं। सो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि—सबके सब अन्धे मिलकर अपने इष्ट मार्गको कदापि नहीं जान सकते ॥१६॥ दूसरे सबके सब असर्वज्ञोंके होनेपर अनादि कालको

नष्ट हुये वेदार्थको आदिम लोकव्यवहारकी सदृश कौन प्रकाश कर सकता है ? ॥१७॥

इसके अतिरिक्त सज्जन विद्वज्जनोंमें अपौरुषेयता सर्वत्र समीचीन भी नहीं मानी जाती। क्योंकि जारचोरोंका पथ भी तो अपौरुषेय है। सो ऐसा कौन पुरुष है जो जार चोरोंके पन्थको समीचीन माने ? ॥१८॥ दूसरे जिस प्रकार दुष्ट शिकारी लोग वनमें जाकर अनेक प्राणियोंको पीड़ित करते हैं, उसी प्रकार यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंके द्वारा संसार भ्रमणकी कारण ऐसी जीवहिंसा की जाती है ॥१९॥ दुष्ट व्याधोंकी (भीलोंकी) सदृश यज्ञ करानेवालोंके द्वारा जबरदस्तीसे मारे हुये तथा संक्लेशित व व्याकुलित किये हुये जीव स्वर्गमें जाते हैं सो हे मित्र ! वैदिकोंका इसप्रकार कहना कैसा आश्चर्यकारक है ? क्योंकि स्वर्गकी जिस उत्तम गतिको संसारी जीव धर्माचरण नियम और ध्यानादिक कठिन तपस्यायें करके प्राप्त करते हैं, वह गति जबरदस्तीसे मारे हुये जीवोंको किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ? ॥२०-२१॥

इस कारण महा हिंसाके साधक वेदमतावलम्बियोंके वचन सत्पुरुषोंको कदापि नहीं मानना चाहिए। कहीं हिंसक व्याधोंके (शिकारियोंके) वाक्य भी धर्मात्मा लोग हृदयमें धारण करते हैं ? कदापि नहीं ॥२२॥ बहुतसे मूर्ख सत्य शौच तप शील ध्यान स्वाध्यायादि उत्तम आचरणोंसे रहित होकर भी ब्राह्मणादि उत्तम जातिमें पैदा होने मात्रसे ही अपनेको धर्मात्मा और सबसे उच्च श्रेष्ठ मानते हैं। सो यह भी बड़ा भ्रम है। क्योंकि सदाचार कदाचारके कारण ही जातिभेद होता है। केवल ब्राह्मणकी जाति मात्र ही श्रेष्ठ है, ऐसा नियम नहीं है ॥२३-२४॥

वास्तवमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चारों ही एक मनुष्य जाति हैं परन्तु आचार मात्रसे इनके चार विभाग किये जाते हैं ॥२५॥ कोई कहे कि—ब्राह्मण जातिमें क्षत्रिय (शूरवीर) कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि—चावलोंकी जातिमें कोदों कदापि उत्पन्न हुये नहीं देखे ॥२६॥ तुम पवित्राचारकके धारकको ही ब्राह्मण कहते हो, शुद्ध शीलकी धारक ब्राह्मणीसे उत्पन्न हुयेको ब्राह्मण क्यों नहीं कहते? इसका उत्तर यह है कि—ब्राह्मण और ब्राह्मणीका सदाकाल शुद्ध शीलादिक पवित्राचार नहीं रह सकता। क्योंकि—बहुत काल बीत जानेपर शुद्ध शीलादिक सदाचार छुट जाते और जातिच्युत होते देखिये हैं—॥२७—२८॥

इस कारण जिस जातिमें संयम नियम शील तप दान जितेन्द्रियता और इत्यादि वास्तवमें विद्यमान हो, उसको ही सत्पुरुषोंने पूजनीय जाति कहा है। क्योंकि—॥ २९ ॥ तपादिकमें बुद्धि लगानेसे ही योजनगन्धा धारिणी धीवरी आदिके गर्भमें उत्पन्न हुये व्यासादिककी पूजा होती देखिये है ॥ ३० ॥ तथा शीलसंयमादिके धारक नीच जाति होनेपर भी स्वर्गमें गये और जिन्होंने शीलसंयमादिक छोड़ दिये, ऐसे कुलीन भी नरकमें गये हैं ॥३१॥ उत्तम गुणोंसे ही उत्तम जाति पैदा होती है और उत्तम गुणोंके नाश होनेसे नाश हो जाती हैं। इस कारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि उत्तम गुणोंको आदरपूर्वक धारण करें और नीचताको करनेवाला जाति मात्रका गर्व करना छोडकर जिससे अपनेमें उच्चपना आवे, ऐसे शील संयमादिका आदर किया करें ॥३२—३३॥

बहुतसे मूढ़ शीलसत्यादि सदाचारोंके विना ही गंगास्नानादिकसे अपनेको पवित्र (पापरहित) मानते हैं। सो मेरी समझमें

उनकी समान पापरूपी वृक्षके बढ़ानेवाले और कोई भी नहीं है। क्योंकि शुक्रशोणितसे बने हुये और माताकी उगालसे बढ़े हुये महाअपवित्र शरीरको स्नान करके पवित्र मानते हैं तो इससे अधिक आश्चर्य और क्या होगा? ॥३४–३५॥ जलसे शरीरके बाहरका मैल धुल सकता है किन्तु अन्तरके शुक्र शोणित हाड मांसादिक अथवा पाप धोये जा सकते हैं, यह बात किसके हृदयमें ठहर सकती है? अर्थात् इस बातको कौन बुद्धिमान जान सकता है? ॥३६ ससारी जीव जो पाप मिथ्यात्व असंयम अज्ञानसे उपार्जन करते हैं, वह पाप निश्चय करके सम्यक्त्व संयम और ज्ञानके विना कदापि नष्ट नहीं हो सकता ॥३७॥

क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायोंसे उत्पन्न हुवा पाप गंगा स्नानादिसे धोया जाता है। ऐसे वचन मूढात्मा ही कहते हैं। मीमांसक (परीक्षक) विद्वान् कदापि नहीं कह सकते ॥३८॥ जो जल शरीरको ही शुद्ध करनेमें असमर्थ है, वह शरीरके भीतर रहनेवाले दुष्ट मनको किस प्रकार शुद्ध (निर्मल) कर सकता है? ॥३९॥ जो लोग ऐसा कहते हैं कि–गर्भसे मृत्यु पर्यंत यह जीव पृथ्वी अप तेज वायु इन ४ भूतोंसे (तत्त्वोंसे) ही बना हुवा है। इन ४ तत्त्वोंके (पदार्थोंके) सिवाय अन्य कोई जीव पदार्थ नहीं हैं, वे लोग अपनी आत्माको ठगते हैं ॥४०॥

चित्त (ज्ञान) जो है सो आत्माका (जीवका) स्वभाव है। और चित्तका (ज्ञानका) कार्य जानना वा विचार करना है। यह जानने वा विचारनेकी शक्ति प्रत्येक देहधारीमें प्रतिक्षण पाई जाती है। जो प्रतिक्षणके ज्ञानको (विचारको) पूर्व क्षणका ज्ञान (विचार)

कारण होता है अर्थात् आदिके ज्ञानसे (विचारसे) मध्यका ज्ञान और मध्यके ज्ञानसे अन्तका ज्ञान और अन्तके ज्ञानसे आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है। जब इस प्रकार प्रत्येक क्षणके ज्ञानको पूर्व पूर्वके ज्ञान कारण हैं तो उसका अभाव कदापि नहीं हो सकता। जब ज्ञानगुणका अभाव नहीं है तब उसके स्वामीका (गुणीका) अर्थात् जीवका अस्तित्व मानना ही पड़ैगा ॥४१-४२॥ यद्यपि शरीर दीखने पर भी चैतन्य (जीव) देखनेमें नहीं आता, परन्तु शरीर है सो चैतन्य नहीं है, जड है, रूपी है, इस कारण शरीरमें जो चैतन्यभाव दीखता है वह, इसका विरुद्धधर्मी अरूपी चैतन्य ही (जीव) है सो जिस प्रकार जड़रूप शरीर जड़रूप नेत्रोंसे दीखता है, उसी प्रकार अरूपी होनेसे चैतन्य (जीव पदार्थ) भी ज्ञानचक्षुसे प्रतीत होता है। यही उनकी ज्ञानजनक सामग्रीमें भेद होनेसे शरीर और चेतनका स्पष्ट भेद है। जड़रूप नेत्रोंसे चैतन्य देखना चाहो, सो कदापि नहीं दीख सकता ॥४३-४४॥

इस प्रकार समस्त भूतवादियोंमें आत्माका अस्तित्व प्रत्यक्ष होनेपर भी मूढलोकोंने किस प्रकार कह दिया कि—परलोक नहीं हैं। आत्मा नहीं है। इत्यादि? ॥४५॥ जैसे मिले हुए दुग्ध और पानीकी भिन्नता किसी विशेष विधिसे की जाती है उसी प्रकार आत्मतत्त्वके जाननेवाले विद्वान पुरुष आत्मा और शरीरका भिन्न २ जानते हैं ॥४६॥ बहुतसे अल्पज्ञानी बंधमोक्षादि तत्त्वोंका अभाव कहते हैं। सो उनके सिवाय अन्य कौन धृष्ट हैं? क्योंकि—॥४७॥ आत्मा यदि सर्वथा और सदाकाल कर्मसे नहीं बंधता है तो इस दुःखमयी घोर संसारमें क्यों भ्रमण करता है? ॥४८॥ यदि आत्मा भिन्न शुद्ध ज्ञानी और परमात्मा है तो उसको इस दुर्गन्धमय अपवित्र

शरीरमें स्थिति क्यों है ? जब यह किसीके वशमें है, तभी यह जेल खानेके समान इस दुर्गन्धमय शरीरमें स्थिति करता है, नहीं तो क्यों करता ? ॥४९॥

यदि सुखदुःखादिका ज्ञान देहको होता है तो फिर निर्जीव मुरदेके सुख दुःखादि होना कौन रोक सकता है अर्थात् मुरदेके भी सुख दुःखादि होना चाहिये ॥ ५० ॥ 'बन्धबुद्धिको नहीं करता जहां तहां परिभ्रमण करता हुआ आत्मा कर्मसे नहीं बन्धता' यह वचन कहना कदापि ठीक नहीं है ॥५१॥ निर्बुद्धि जीव जहां तहां कैसे फिरता है ? कहीं जड़रूप पर्वतोंके भी हलन चलन क्रिया देखी गई है ? ॥५२॥ मरनेकी इच्छा न करके भी यदि कोई महा विष खाता है क्या नहीं मरता है ? अवश्य मरता है ॥५३॥

यदि आत्मा सर्वशुद्ध होता तो फिर ध्यानाभ्यासादि क्यों किये जाते हैं ? कोई निर्मल सुवर्णकी परीक्षार्थ भी प्रवृत्ति करता है ? अर्थात् कोई नहीं करता ॥५४॥ कोई२ केवल मात्र ज्ञानसे ही आत्माकी शुद्धि मानते हैं। सो उनको भी बड़ा भ्रम है, क्योंकि औषधिका स्वरूप जानने मात्रसे ही किसीका रोग दूर नहीं होता। उसके खानेसे ही होता है। इसी प्रकार ज्ञानके साथ श्रद्धा और चारित्र होनेसे ही आत्माकी शुद्धि (मोक्ष) होती है ॥५५॥ कोई२ श्वास रोकने मात्रको ही ध्यानकी सिद्धि (कल्याण) होना मानते हैं। सो वे आकाशके फूलोंसे शेखर (मुकुट) बनानेकी इच्छा करते हैं ॥ ५६ ॥

जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि है, वह विना सुप्रयोगके प्रगट नहीं होती, उसी प्रकार आत्मा भी इस देहमें ही तिष्ठता है परन्तु मूढ़ लोगोंको उसकी प्राप्ति व ज्ञान नहीं होता ॥५७॥ सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके द्वारा आत्माके मल (कर्म) नष्ट होते हैं, क्योंकि यह पूर्वोपार्जित कर्म मल वात पित्त और कफसे उत्पन्न होनेवाली व्याधियोंके सदृश अनेक प्रकारके दुःखोंको देता है। सो इस रत्नत्रयसे ही नष्ट करना चाहिये। क्योंकि–॥५८॥

जीव और कर्मका अनादिकालसे सम्बंध है सो रत्नत्रयके सिवाय अन्य कोई भी इस कर्मोंको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं है ॥५९॥

कोई२ मतवाले दीक्षा मात्रसे ही आत्माकी मुक्ति होना मानते सो यह भी भ्रम है। क्योंकि केवल मात्र राज्य स्थापन होनेसे ही शत्रु नष्ट नहीं हो जाते ॥६०॥ जो मूर्ख लोग दीक्षा मात्रसे ही पापका नष्ट होना मानते हैं, वे आकाशकी तलवारके अग्रभागसे शत्रुका शिरच्छेदन करना चाहते हैं ॥६१॥ जीव, मिथ्यात्व, अव्रत और क्रोधादि कषायोंके द्वारा कर्मबन्ध करता है। सो मिथ्यात्व अव्रत और कषायोंके अभाव किये विना वह कर्मबन्ध किस प्रकार नष्ट हो सकता है? ॥६२॥

जो लोग बिना व्रताचरणके दीक्षामात्रसे ही मोक्षफलकी प्राप्ति होना कहते हैं, वे आकाशकी बेलके पुष्पोंकी सुगन्धिका वर्णन करते है ॥६३॥ कोई २ ऋषियोंके आशीर्वादमात्रसे ही कर्मक्षय होना मानते हैं, सो यदि ऐसा होता तो राजाके मित्रबन्धुओंके आशीर्वचनोंसे राजाके शत्रु नष्ट हो जाते, परन्तु ऐसा कहीं भी देखनेमें नहीं आता ॥६४॥ जिस दीक्षाके लेनेसे जीवोंका राग (संसारसे मोह) ही नष्ट नहीं होता तो वह दीक्षा अनेक जन्मोंके किये हुये प्राचीन कर्मोंको किस प्रकार नष्ट कर सकती है? इसलिये ॥६५॥ "सत्यार्थगुरुओंके वचनोंसे जानकर रत्नत्रयके सेवन

करनेवालोंके ही पाप नष्ट होते हैं।" यह वचन ही सत्य जानना ॥६६॥

हे मित्र ! कषायके वशीभूत होकर आत्माके किये हुए पाप दीक्षा लेनेसे ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, इस बातको कौन विद्वान प्रमाण कर सकता है ? ॥६७॥ यदि कषाय सहित ध्यान करनेसे ही मोक्षपदकी प्राप्ति हो तो वन्ध्याके पुत्रका सौभाग्य वर्णन करनेमें भी द्रव्यकी प्राप्ति होना चाहिये, सो असंभव है ॥६८॥ जिन पुरुषोंके इंद्रियोंका जय और कषायोंका निग्रह नहीं, ऐसे पुरुषोंके वचन धूर्तोंके वचनोंके समान सत्य नहीं है ॥६९॥ ऊर्ध्व और अधोद्वारसे निकलनेसे मेरी निंदा होगी, ऐसा समझकर जो बुद्ध माताके पेटको फाड़कर निकला और मांस भक्षणमें लोलुपी होकर मांस भक्षण करनेमें दोषका अभाव कहता है, उस मूढ बुद्धके कृपा (दया) किस प्रकार हो सकती है ? ॥७०-७१॥

जिस कुधीने कीडोंसे भरे हुये शरीरको जानबूझ कर भी व्याघ्रीके मुख आगे डाल दिया, उस बुद्धके संयम कैसे हो सकता है ? ॥७२॥ जो बुद्ध प्रत्यक्षसे विरुद्ध सर्वशून्यपणा आत्माका अभाव और क्षणभंगुरता कहता है, उसके कौनसा ज्ञान हो सकता है ? ॥७३॥ जो सर्वशून्यताकी कल्पना करता है, वह बुद्ध कैसा ? और उसके मतमें बंधमोक्षादि तत्त्वोंकी व्यवस्था ही क्या हो सकती है ? ॥७४॥ जिसके मतमें स्वर्गमोक्षके सुखको भोगनेवाले आत्माका ही स्पष्टतया अभाव कहा है तो उसके मतमें व्रतादिकका करना सर्वथा व्यर्थ ही है ॥७५॥

जिसके मतमें क्षण२ में नवीन आत्माका आना और पहिलेका चला जाना माना है, उसके मतमें हंता और हननेयोग्य, दाता

और दानादिक समस्त पदार्थ विरोधरूप हो जाते हैं। इसी कारण विद्वज्जन क्षणिक वादीके मतको सर्वथा असत्य मानते हैं ॥७६॥ जिस बुद्धके समस्त पक्ष सर्वथा प्रमाणसे बाधित हैं, उस दुरात्माके सर्वज्ञ-पणा होना भी असम्भव है ॥७७॥ बनारस (काशी) निवासी प्रजापतिका पुत्र तो ब्रह्मा है। और वसुदेवका पुत्र कृष्ण नारायण है। तथा सात्यकी मुनिका पुत्र रुद्र (महादेव) है। सो नष्टबुद्धि लोगोंने इस अनादिनिधन सृष्टिका ब्रह्माको तो कर्ता, विष्णुको रक्षक और महादेवको संहारक (सृष्टिका नाश करनेवाला) कहा है, सो कैसे माना जावे ? ॥७८-७९॥ यदि इन तीनों सर्वज्ञोंकी वास्तवमें एक ही मूर्ति है तो ब्रह्मा और विष्णुने महादेवके लिंगका अंत क्यों नहीं पाया ? ॥८०॥

सर्वज्ञ वीतरागी शुद्ध परमेष्ठीके ये तीनों अवयव (ब्रह्मा विष्णु महेश) अल्पज्ञ रागी और अशुद्ध कैसे हुये ? ॥८१॥ प्रलयकी स्थिति और रचनाका करनेवाला पार्वतीका पति महादेव तपस्वियोंके द्वारा लिङ्गच्छेदनादि शापको किस प्रकार प्राप्त हुवा ? ॥८२॥ जिन तपस्वियोंने महादेवजीको भी महाशाप दिया, वे तपस्वी कामदेवके बाणोंद्वारा किस प्रकार घायल होते रहे ? क्या कामदेवको शाप देकर भस्म नहीं कर सके ? ॥८३॥ जो देव तीन जगतके कर्ता हर्ता विधाता हैं और देवताओंके द्वारा नमस्कार किये जाते हैं, उन तीन महापुरुषोंको (ब्रह्मा विष्णु महेशको) कामने कैसे जीत लिया ? और-॥८४॥

जिस कामने समस्त देवोंको जीतकर अतिशय विडम्बनारूप किया, उस कामको महादेवने अपने तीसरे नेत्रसे किस प्रकार भस्म कर दिया ? ॥८५॥ जो देव स्वयं रागद्वेष मोहादिक अष्टादश दोषोंके

वशीभूत हो दुःख भोगते हैं, वे देव धर्मार्थी पुरुषोंको हितकारी धर्मका उपदेश किस प्रकार कर सकते हैं ! ॥८६॥

हे मित्र ! जिनको सेवन करके संसारी जीव मोक्षपदको प्राप्त हो सके ऐसे निर्दोष देव धर्म गुरु किसी मतमें भी देखनेमें नहीं आते ॥८७॥ रागी देव परिग्रही गुरु और हिंसामय धर्म सेवन किया हुआ जीवोंकी मनोवाछित सिद्धिको अतिशय दुर्लभ करता है ॥८८॥ मूढ जन ही इस प्रकारकी मिथ्यात्वरूप बुद्धि अपनी सुखसमृद्धिके अर्थ करते हैं, सो ठीक ही है । 'क्योंकि नष्ट हो गई बुद्धि जिनकी, ऐसे मूढ़ जन क्या नहीं करते' ॥८९॥ बन्ध्याका पुत्र तो राजा और शिलाका (पत्थरका) पुत्र मन्त्री ये दोनों मृगतृष्णाके जलमें स्नान करके लक्ष्मीको सेवन करते हैं। भावार्थ—जो लोग रागी द्वेषी देव परिग्रहधारी गुरु और हिंसामय धर्मको सेवन कर सुख सम्पत्तिकी इच्छा करते हैं, वे बन्ध्यापुत्र और शिलापुत्रके समान हैं ॥९०॥

जिन रागद्वेष, मद, मोह विद्वेषादिकने समस्त सुरनरेश्वरोंको जीत लिया, ऐसे दोष सूर्यमें अन्धकारके समान जिसके शरीरमें स्थान नहीं पाते और जिसने समस्त पापोंको नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया और जो जगतके समस्त चराचर पदार्थोंकी व्यवस्थाको जानता है, उसी त्रिलोक पूज्य सिद्धि साधक आप्तस्वरूप जिनेन्द्र-भगवानको ही उत्तम पुरुष सेवन करते हैं ॥९१-९२॥ जो समस्त नर सुर विद्याधरको वेधनेवाले कामके बाणोंसे नहीं तोड़े गये, और संसाररूपी वृक्षको काटनेका है आशय जिनका ऐसे जितेन्द्रिय हैं। वे ही यति कहिये गुरु हैं और—॥९३॥ वे ही धर्मरूपी वृक्ष हैं कि जिसकी जीवदया पालनरूपी मजबूत जड़ है, सत्य शौच शम शीला-दिक पत्ते हैं और इष्ट सुखरूप फलोंके समूहको फलता है और—॥९४

सिसके द्वारा पंडितजन सकारण युक्तिसे समस्त बाधारहित, सिद्धि पथ दिखानेमें तत्पर ऐसी बन्ध मोक्षकी विधि जानते हैं, वही यथार्थ शास्त्र है ॥९५॥

यदि मद्य मांस व स्त्रियोंके अङ्गका सेवन करनेवाले रागी पुरुष ही धर्मात्मा हों तो कलाल मद्यपान करनेवाला खठीक व्यभिचारी-गण ही निराकुल होकर स्वर्गको चले जायगे ॥९६॥ जो यति क्रोध लोभ मद मोहादिसे मर्दित है, पुत्र दारा धन मंदिरादिकके चाहने-वाले, धर्म संयम दमादिसे रहित हैं, वे संसारी जीवोंको भवसमुद्रमें डालनेवाले हैं ॥९७॥ हे मित्र! देव तो रागद्वेषादि दोषोंसे दूषित, तपोधन (यति) परिग्रहके संगसे भ्रष्ट व व्याकुल, और धर्म जीव हिंसामयी, ये तीनों सेवन करनेसे शीघ्र ही भवसमुद्रमें डाल देते हैं ॥ ९८ ॥

जन्म मृत्यु रूप अनेक मार्गों (मतों) कर तथा राग द्वेष मद मत्सरादिकर व्याप्त इस लोकमें मोक्षका मार्ग पाना दुर्लभ है। इस कारण हे मित्र! तू सदा परीक्षा-प्रधानी होकर प्रवर्त ॥९९॥ जन्म जरा मरणरहित देवोंकर वंदनीय देव, और दूर किया है परिग्रह काम और इन्द्रियोंका वेग जिसने ऐसा गुरु, और कपटके सकटरहित सकल जीव दयाप्रधान धर्म, ये तीनों ही अप्रमाण हैं, ज्ञानकी गति जिसमें, ऐसी मोक्षलक्ष्मीके करनेवाले हैं, सो निरन्तर मेरे मनमें बसो ॥ १००॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें सतरहमां परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥



अठारहवाँ परिच्छेद

अथानंतर पवनवेगने अन्यमतकी ऐसी दुष्टता सुनकर अपने सन्देहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिये मनोवेगसे पूछा—हे सन्मते ! इन परस्पर विरुद्ध अनेक प्रकारके अन्य मतोंका किस प्रकारसे प्रचार हुआ सो मुझसे कहो ॥१-२॥ तब मनोवेगने पवनवेगका प्रश्न सुनकर कहा—हे मित्र ! अन्यमतोंकी उत्पत्तिका इतिहास कहता हूं सो सुन ॥३॥ इस भरतक्षेत्रमें रात और दिनके समान दुर्निवार है वेग जिनका ऐसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नामके दो काल क्रमसे (एकके पीछे दूसरा) निरन्तर आया करते हैं ॥४॥ जिस प्रकार एक वर्षमें ६ ऋतु होती हैं उसी प्रकार एक एक कालमें एक दूसरेसे विभिन्न सुखमा सुखमा १, सुखमा २, सुखमादुःखमा ३, दुःखमासुखमा ४, दुःखमा ५, दुःखमादुःखमा ६, ये छ भेद (विभाग) होते हैं ॥५॥

एक एक काल दश कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। सो जिस कालमें उपर्युक्त प्रकारसे सुखमासुखमादि ६ काल होते हैं, उसको तो अवसर्पिणी काल कहते हैं और जिस कालमें इनके उलटे अर्थात् दुःखमादुःखमा १, दुःखमा २, दुःखमासुखमा ३, सुखमादुःखमा ४, सुखमा ५, और सुखमासुखमा ६; इस प्रकार उत्तरोत्तर आयुकायादिककी उन्नतिवाले ६ काल होते हैं, उसको उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इस समय जो काल प्रवर्त्त रहा है, सो दश कोड़ाकोड़ी सागरका अवसर्पिणी काल है। इसीके छह खण्डोंकी संक्षिप्त व्यवस्था कहता हूं ॥६॥

इस अवसर्पिणी कालमें आदिका सुखमासुखमा काल चार

कोड़कोड़ी सागरका हुवा और दूसरा सुखमाकाल तीन कोड़ाकोड़ी सागरका हुवा ॥७॥ तीसरा सुखमादुःखमा काल दो कोड़ाकोड़ी सागरका हुवा। इनमेंसे पहिले कालमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है ॥८॥ आयुके समान उनके शरीरकी ऊँचाई भी पहिलेमें तीन कोश, दूसरेमें दो कोश, और तीसरेमें एक कोशकी होती है और पहिलेमें तीन दिनसे दूसरेमें दो कोश, और तीसरेमें एक कोशकी होती है और पहिलेमें तीन दिनसे दूसरेमें दो दिनसे तीसरेमें एक दिनसे आहार होता है ॥९॥ आहारका परिमाण पहिले कालमें बेरसमान दूसरेमें आंवले समान और तीसरेमें बहेड़ेके बराबर सर्वेन्द्रियोंको बलकारी परको दुर्लभ वीर्यवर्द्धक कल्पवृक्षों कर दिया हुवा होता है ॥१०॥

इन तीनों कालोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंमें स्वामीसेवकादिकका व परके घर आने जानेका सम्बन्ध नहीं होता है, वे एक दूसरेसे हीन अधिक नहीं होते हैं, तथा उनके व्रत वा संयम कुछ भी नहीं होता है ॥११॥ इन तीनों कालोंमें एकसाथ चन्द्रमा और चादनीके समान स्वाभाविक कांति और उद्योतसे सर्वांग सुंदर स्त्रीपुरुषोंका जोड़ा ही उत्पन्न होता है और वह जोड़ा ४९ उनपचास दिनोंमें समस्त भोग भोगनेमें समर्थ नवयौवनकर भूषित हो जाता है। नये जोड़ेके उत्पन्न होते ही पहिला जोड़ा अर्थात् उन दोनोंके माता-पिता मर जाते हैं। और नये जोड़ेको अपना अस्तित्व छोड़ जाते हैं। इसी कारण इन तीनों कालोंमें उत्तरकुरु आदि भोगभूमिके सदृश सब मनुष्य गिनतीमें बराबर ही उत्पन्न होते हैं ॥१२-१३॥ उन जोड़ोंमेंसे प्यारी प्रियभाषिणी स्त्री तो अपने पतिको 'हे आर्य' कहकर सम्बोधन करती है और विचित्र प्रकारके चाटुकार (खुशामद)

करनेवाला पुरुष 'हे आर्ये' इस प्रकार कहकर सम्बोधन किया करता है ॥१४॥

इन तीनों कालोंमें रहनेवाले मनुष्य देहसहित धर्मके सदृश निर्मल आकारके धारक मद्यजाति १, तूर्यजाति २, गृहजाति ३, ज्योतिरांगजाति ४, भूषणांगजाति ५, भोजनजाति ६, मालाजाति ७, दीपकजाति ८, वस्त्रजाति ९ और पात्रजाति १० कल्पवृक्षोंके द्वारा दिये हुए नानाप्रकारके भोग (सुख) भोगते हैं। इसी कारण इन तीनों कालकी भूमिको भोगभूमि कहा है ॥१५-१६॥

जब तीसरे कालके अन्तमें एक पल्यका आठवां भाग शेष रह जाता है तब उस कालमें १४ कुलकर अर्थात् उन भोगभूमियोंमें राजाके समान मुखिया उत्पन्न होते हैं। वे उसी समयसे कालकी पलटना अर्थात् कर्मभूमिके होनेकी व्यवस्था समझाते रहते हैं। कल्पवृक्ष नष्ट हो जानेपर सूर्यचन्द्रमा दृष्टिगोचर होते हैं। तब प्रजाको क्षुधादिक वेदनासे पीड़ित होनेपर दुग्धफलादिकका भक्षण करना आदि समस्त प्रकारके उपाय बताकर समस्त प्रजाका भय व दुःख नष्ट करते रहते हैं। इसी कारण इनको १४ कुलकर अथवा १४ मनु भी कहते हैं। सो इस वर्तमान अवसर्पिणीकालके तीसरे समयके अन्तमें पहिला प्रतिश्रुति, दूसरा सन्मति, तीसरा क्षेमकर, चौथा क्षेमधर, पांचवा सीमकर, छठा सीमन्धर, सातवां विमलवाहन, आठवां चक्षुष्मान्, नवमां यशस्वी, दशवां अभिचन्द्र, ग्यारहमां चन्द्राभ, बारहवां मरुदेव, तेरहवा प्रसेनजित और अन्तका नाभिराजा इसप्रकार १४ कुलकर उत्पन्न हुये ॥१७-१८-१९-२०॥

ये सब १४ कुलकर जातिस्मरण (अपने पूर्वजन्मके ज्ञाता) और दिव्यज्ञानवाले होते हैं, सो समस्त प्रजाको कर्मभूमिकी व्यवस्था दिखलाते हैं ॥ २१ ॥ पूर्वदिशासे सूर्यके समान नाभिराजा और

महादेवी मरुदेवीके द्वारा ऋषभनाथ तीर्थंकर स्वर्गसे चलकर मरुदेवी माताके गर्भमें आये, उस समय कुबेरने अयोध्यानगरीको मनोहर कोट खाई और रत्नमय मकानोंसे शोभित की ॥२३॥ इन्द्रने निर्मल नीति और कीर्तिके समान कच्छराजाकी नन्दा सुनन्दा नामकी दो कन्याओंका आदिनाथसे विवाह कराया ॥२४॥ उन दोनों स्त्रियोंसे आदिनाथ भगवानके ब्राह्मी सुन्दरी दो कन्या और मनको आनन्द देनेवाले सौ पुत्र हुये ॥२५॥

कल्पवृक्षके अभाव होनेपर जब व्याकुल प्रजाने भगवानसे जीवनस्थिति रहनेका उपाय पूछा तब भगवानने असि, मषि, कृषि वाणिज्य पशुपालन और शिल्प ये छह उपाय बताये। इसके अतिरिक्त ग्राम पुर नगरोंकी रचना वगैरह चौथे कालकी समस्त व्यवस्था इन्द्रके द्वारा कराई और सुखसे राज्यभोग करने लगे ॥२६॥ एक समय जब भगवान्के सन्मुख देवियोंका मनोहर नृत्य हो रहा था, तब नाचते २ एक नीलजसा नामकी देवीका लय (मृत्यु) हो जाना देखकर उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि—॥२७॥

जिस प्रकार बिजलीके समान देखते२ यह नीलंजसा देवांगना नष्ट हो गई, उसी प्रकार मोहको करनेवाली यह समस्त लक्ष्मी भी नष्ट हो जायगी ॥२८॥ जिस प्रकार मृगतृष्णामें जल और आकाश-पुरीमें महाजनोंकी प्राप्ति नहीं है, उसी प्रकार इस असार संसारमें सुखकी प्राप्ति नहीं है ॥२९॥ जिस इष्ट वस्तुके विना इस संसारमें एक क्षणमात्र भी नहीं रहा जाता, उस वस्तुका अग्निके समान महाताप-कारक वियोग सहना पड़ता है ॥३०॥

यद्यपि चन्द्रमा क्षीण होकर वृद्धिको प्राप्त हो जाता है, और दिन रात भी जाते आते रहते हैं। परन्तु नदीके जलके समान

गया हुआ यौवन कदापि नहीं आता ॥३१॥ भाई बन्धुओंका संयोग तो मार्गमें या सरायमें रास्तागीर मिलनेके समान है, मित्रोंका स्नेह बिजलीकी चमकके समान अस्थिर है और—॥३२॥ पुत्र मित्र गृह द्रव्य धन धान्यादि सम्पदाकी प्राप्ति स्वप्नकीसी माया है, कभी स्थिर नहीं रह सकती ॥३३॥ जिसके लिये महापाप करके द्रव्यादि उपार्जन (सग्रह) किये जाते हैं, वह जीवन शरद ऋतुके बादलके समान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥३४॥

इस दुःखदायक संसारमें ऐसा कोई भी जीव नहीं दीखता कि जो जगतभरमें फिरनेवाले कालके (मृत्युके) सन्मुख न पड़ता हो ॥३५॥ इस ससारमें जीवोंको एकमात्र रत्नत्रयके सिवाय कोई भी आत्मीयकल्याणका कारण नहीं है ॥३६॥ इस प्रकार विचार करके जिनेन्द्र भगवानने घरसे बाहर निकलेका मानस किया। सो ठीक ही है। ससारकी असारता जाननेवाले घरमें कैसे रह सकते हैं? ॥३७॥ तत्पश्चात् वे देवोंकर लाईहुई मुक्ताहार विभूषित पालकीमें बैठकर वनको चल दिये। मानों अपने आप आनेवाली निर्दोष सिद्धभूमिके लानेको ही जाते हैं ॥३८॥ वह पालकी पहिले तो राजाओंने उठाई। और फिर देवताओंने उठाई सो ठीक ही है 'बुद्धिमान पुरुष समस्त प्रकारके धर्म—कार्योंमें शामिल होते हैं' ॥३९॥

तत्पश्चात् शकटामुख वनको प्राप्त होकर भगवानने एक वटवृक्षके नीचे पर्यंकासन बैठकर समस्त भूषण वसन उतारे और सिद्धोंको नमस्कार करके मजबूत पांच मुट्टियोंसे अपने केश उखाड़े ॥४०—४१॥ तत्पश्चात् समस्त जीवोंको कल्याणकारक महापराक्रमी सुरनरकर सेवित वे जिनेन्द्र भगवान् सुमेरके समान कायोत्सर्गसे

(खड़े होकर) छः महीनेका ध्यान धरके स्थिर हो गये ॥४२॥ तत्पश्चात् इन्द्र भगवानके केशोंको रत्नमयी पेटीमें रखकर, अपने मस्तकपर धारण करके, समस्त देवों सहित, आनन्दोत्साह पूर्वक पांचवें क्षीरसमुद्रमें पधराकर अपने२ स्थानको गये ॥४३॥ इसी कारण उस शकटामुख वनका नाम "प्रयोग" (प्रयाग) प्रसिद्ध हुआ है ॥४४॥

भगवानकी देखादेखी चार हजार अन्यान्य राजाओंने भी उसी प्रकार तप ग्रहण कर लिया, सो ठीक ही है। सत्पुरुषोंकर आचरण किये हुये कार्यका सभी लोग आश्रय करते हैं ॥४५॥ वे सब राजा कुछ दिन तो ऋषभनाथ भगवानके सदृश ही विना आहार पानीके रह गये, परन्तु छः महिनेके भीतर२ भ्रष्ट हो गये। सो ठीक ही है क्योंकि दीनचित्तवाले अज्ञानी लोगोंके क्षुधा तृषादि परिषह सहन नहीं हो सकती ॥४६॥ वे सब दिगम्बर फल भक्षण करके अशुद्ध जल पीने लगे, सो ऐसा कौनसा अकार्य है, जो क्षीणशरीर क्षुधातुर नहीं करते ? ॥४७॥

इन दिगम्बर मुनियोंका यह कुत्सिताचरण देखकर उस वनके किसी देवताने कहा—हे नृपतिगणो ! दिगम्बर मुनिका भेष धारण करके ऐसा निन्द्य कार्य करना कदापि उचित नहीं है। क्योंकि दिगम्बर मुनि होकर जो अपने आप ग्रहण करके आहारपानादि करते हैं, वे नीच पुरुष कदापि संसारसमुद्रसे पार नहीं हो सकते ॥४८-४९॥ जो दिगम्बर साधु होते हैं, वे अन्यके घर नवधा भक्तिपूर्वक अन्य कर दिया हुआ प्रासुक भोजन धर्मवृद्धिके लिये हाथोंको ही पात्र बनाकर ग्रहण किया करते हैं। सो तुम इस दिगम्बर भेषसे फलादिकका आहारपानादि करोगे तो ठीक न होगा ॥५०॥

इस प्रकार देवताके वचन सुनकर वे सब राजा व्याकुलचित्त हो कोपीन धारण करके गड्ढे व नदियोंका घोर कालकूट विषके समान पानी पीने लगे ॥५१॥ उनमेंसे कितनेक राजा तो क्षुधा तृष्णासे पीडित हो, लज्जा छोडकर अपने२ घरको चले गये क्योंकि मनुष्य तभीतक लज्जावान रहता है, जबतक कि उसका चित्त दूषित न हो ॥५२॥ कितने ही राजाओंने ऐसा विचार किया कि—यदि अपन भगवानको वनमें छोड़कर घर जावेंगे तो भगवानके पुत्र भरतचक्रवर्ति रुष्ट होकर हमारी वृत्ति छीन लेंगे। तब भी तो भिक्षाटन करना पडेगा, इससे तो भगवानकी सेवा करते हुये इस वनमें रहना ही श्रेष्ट है। इस प्रकार विचार करके वे सब राजा कन्दमूलादि भक्षण करते हुये वहींपर रहने लगे—अपने २ घरको नहीं गये ॥५३-५४॥

तत्पश्चात् कच्छ महाकच्छ राजाने अपने पाण्डित्यके गर्वसे फलमूलादि भक्षण करना ही तापसीय धर्म बताकर प्रचार किया और ॥५५॥ मरीचीकुमारने सांख्य मतकी प्ररूपणा करके अपने कपिलादि शिष्योंको उपदेश किया ॥५६॥ इसी प्रकार अन्यान्य राजाओंने भी अपने पांडित्यके गर्वसे अपनी २ रुचिके अनुसार एकसौ अस्सी प्रकारके, क्रियावादी चौरासी प्रकारके, अक्रियावादी सडसठि प्रकारके अज्ञानी और बत्तीस प्रकारके वैनेयिक ऐसे तीनसे त्रेसठ प्रकारके महामिथ्यात्वको बढ़ानेवाले पाषड मत चलाये ॥५७-५८॥ इनमेंसे शुक्र और बृहस्पति नामक दो राजाओंने मिलकर स्वेच्छापूर्वक अपनी इन्द्रियोंको पोषण करते हुए चार्वाक दर्शनकी प्रवृत्ति की ॥५९॥

इस प्रकार उन राजाओंने अनेक प्रकारकी विडम्बनायें कीं

सो ऐसा कौन पुरुष है जो बड़े पुरुषों कीसी क्रियाओंको करनेकी इच्छा रखते हुये विडम्बना न करे ॥६०॥ जैसे आहारके बिना परिषहसे घबराये हुए ये सब भ्रष्ट हुए इसी प्रकार और लोग भी मिथ्या मार्गमें प्रवर्त्त हो जायंगे इस प्रकार विचार करके आदिनाथ भगवान्‌ने अपना ध्यान पूर्ण करके मुनियोंके करने योग्य शुद्धान्न ग्रहण करनेकी इच्छाकी ॥६१-६२॥ सो हस्तिनापुरके श्रेयांसराजाने उत्तम स्वप्नके द्वारा जातिस्मरण होनेसे पूर्वजन्मकी आहारदानकी विधि जानकर नवधा भक्तिपूर्वक इक्षुरसका भोजन कराया ॥६३॥

उस समय जो उत्तम श्रावक (व्रतधारी) थे, उन सबको भरत-चक्रवर्त्तिने अत्यन्त भक्तिपूर्वक धनधान्यादिसे सत्कार करके चौथा ब्राह्मणवर्ण स्थापन किया, सो चक्रवर्तिसे पूजाप्रतिष्ठा पाकर वे ब्राह्मण बड़े विस्तारको प्राप्त हो अतिशय उद्धत हो गये ॥६४। आदिनाथ भगवानने इक्ष्वाकुवंश नाथवंश भोजवंश और उग्रवंश ये चार वंश चलाये सो जगतमें प्रसिद्ध हुये ॥६५॥ उस समय जो व्रती थे, वे तो ब्राह्मण कहलाये। जो प्रजाकी भयसे रक्षा करते थे, वे क्षत्रिय कहलाये, जो व्यापारमें कुशल थे, उनका नाम वैश्य पड़ा और जो सेवा करनेमें तत्पर थे, वे शूद्र कहलाये। इसप्रकार इन चारों वर्णोंकी व्यवस्था थी ॥६६॥

भरतचक्रवर्तिके तो सबसे बड़ा पुत्र अर्ककीर्ति हुवा और भरतके भाई बाहुबलिके सोम नामका पुत्र प्रसिद्ध हुवा। इन ही दोनोंके वंश सूर्यवंश और सोमवंश (चन्द्रवंश) नामसे प्रसिद्ध हुए ॥६७॥ तत्पश्चात् कालदोषसे पार्श्वनाथ भगवानका जो मौद्गिलायन नामका शिष्य एक तपस्वी था, उसने महावीरस्वामीसे रुष्ट होकर

बौद्धमतका निरूपण किया ॥ ६८ ॥ उसने शुद्धोदन राजाके पुत्रको बुद्ध परमात्मा कह कर प्रकट किया है। सो ठीक ही है। क्रोधरूपी वैरीसे पराजित होकर संसारी जीव क्या क्या नहीं करते ? ॥६९॥

कृष्णके मरने पर उसकी लाशको बलभद्रजी भ्रातृमोहके वशीभूत हो छह महीने तक लिये२ फिरे, उसी दिनसे जगतमें कंकाल नामक व्रत प्रसिद्धिमें आया ॥७०॥

हे मित्र ! मिथ्यादृष्टि पुरुषोंने जो अगण्य पाखण्ड मत चलाये हैं, उनका मैं कहां तक वर्णन करूँ ? ॥७१॥ जो पाखण्ड चौथे कालमें बीजरूपसे स्थित थे, वे सब इस कलिकालरूपी (पंचमकालरूपी) पृथ्वीमें प्रकट होकर विस्तारको प्राप्त हो गये ॥७२॥ जो समस्त देवोंकर वन्दनीक है और जिसने वितरागताके साथ केवलज्ञानरूपी आलोकसे तीनों लोकोंका अवलोकन किया है वही जिनेन्द्र परमेष्ठी सत्यार्थ आप्त वा देव है और ॥७३॥ जिस आगममें संसार और मोक्षको कारणसहित वर्णन किया है, और जो समस्त प्रकारके बाधक प्रमाणोंसे निर्मुक्त (रहित) है, वही सच्चा आगम (शास्त्र) है ॥७४॥ और उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये ही कल्याणकारक दश प्रकारके धर्म हैं और—॥७५॥

जो बाह्य अभ्यंतर २४ परिग्रहरहित, जितेन्द्रिय, निःकषाय, परिषहोंका सहनेवाला और नग्नमुद्राका धारक हो वही सच्चा गुरु है ॥७६॥ इस प्रकार ये चारों (देव शास्त्र गुरु धर्म) मोक्षरूपी नगरके द्वार, संसाररूपी दावानलको जलके समान और मनवांछित सिद्धिके एकमात्र कारण हैं। तथा ॥७७॥ ये ही चारों सम्यक्त्व

ज्ञान, चारित्र और तपरूपी माणिक्यके देनेवाले हैं, इन चारोंके सिवाय और कोई भी मुक्तिका कारण नहीं है। ७८॥ हे मित्र! इस प्रकार संसारमें भ्रमण करते हुये जीवोंने सर्व प्रकारकी लब्धियां प्राप्त कीं, परन्तु इन चारोंमेंसे एकको भी प्राप्त नहीं की ॥७९॥

संसारमें देश, जाति, कुल, रूप, इंद्रियोंकी पूर्णता, नीरोगता, दीर्घ जीवन ये सब एकसे एक अधिक दुर्लभ हैं। इनसे भी अधिक दुर्लभ सच्चे धर्मका उपदेश श्रवण तथा ग्रहण है। परन्तु इन सबके प्राप्त होनेपर भी संसाररूपी वृक्षको काटनेवाली कुल्हाड़ी और सिद्धि-रूपी महलमें प्रवेश करनेवाली बोधिका (अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र) बहुत दुःखसे प्राप्त होती है ॥८०-८१॥ हे मित्र! जिस किसी मतमें जो कुछ समीचीन उपदेश है, वह सब जैनमतका ही समझना। क्योंकि मोती अनेक जगह (जौहरी आदिके घर) मिलते हैं परन्तु वे सब समुद्रसे ही निकले हुये हैं ॥८२॥ जिनेन्द्र-भगवानके वचनोंके सिवाय किसीका भी वचन पापोंको नाश करने-वाला नहीं है। क्योंकि सूर्यके ही प्रभावसे दुर्भेद रात्रिसम्बन्धी अन्धकार नाश होता है ॥८३॥ हे मित्र! जिस प्रकार धान्यको नष्ट करनेवाले सलभ अर्थात् (टिड्डियां) हैं, उसी प्रकार अन्य जितने धर्म हैं, वे सबके सब आदिभूत पूजनीय जिनेन्द्रधर्मको जड़मूलसे नाश करनेवाले हैं ॥८४॥

पवनवेगके चित्तमें जो दुर्भेद्य मिथ्यात्वरूपी गांठ थी, सो मनोवेगने पर्वतको वज्रके समान उपर्युक्त वचनोंसे ढीली करके खोल दी, तब नष्ट हो गया है मिथ्यारूपी पर्वत जिसका, ऐसा वह पवनवेग पश्चात्तापके साथ कहने लगा—'हाय हाय! मुझ नष्ट बुद्धिने अबतक जन्म वृथा ही खो दिया' ॥८५-८६॥

हाय ! मुझ अज्ञानीने तेरे वचनको न सुनकर जिनेन्द्रके वचनरूपी रत्नोंको छोड़कर अन्यमतका वचनरूपी पत्थर ग्रहण किया ॥८७॥ हे मित्र ! मुझे मिथ्यात्वरूपी विषके पीनेवाले और उपर्युक्त सकल विडम्बना देखनेवालेने आपके दिये हुए अभ्रांत जिनेन्द्र वचनरूपी अमृतको नहीं पिया ॥८८॥ हा मित्र ! तेरे सदा निवारण करनेपर भी मैंने निर्दोष सम्यक्त्वरूपी सुधापानको छोड़कर जन्म-जरामृत्युको देनेवाले महाभय रूप कष्टसे है अन्त जिसका ऐसे मिथ्यात्वरूपी विषका सेवन किया ॥८९॥

हे मित्र ! मेरा तू ही तो बन्धु है, तू ही पिता है। और तू ही मेरा कल्याणकारक गुरु है। क्योंकि तूने मुझे संसाररूपी अन्धकूपमें पड़ते हुये अपने उत्तम वाक्यरूपी रस्सीसे बांधकर पकड़ा (रोका) है ॥९०॥ यदि तू जिनेन्द्र भगवानकर भाषित धर्मको दिखाकर मुझे नहीं रोकता तो मैं चिरकालतक महा दुःखदायक वृक्षोंवाले अपार संसाररूपी वनमें भ्रमण करता रहता ॥९१॥ हे मित्र ! मैं मिथ्यात्व मोहिनी, मिश्र मोहिनी, सम्यक्त्व मोहिनी और मिथ्यात्वरूपी अन्धकारसे मोहित होकर कष्टसे है अन्त जिसका ऐसी परवाक्यरूपी रात्रिको प्राप्त होगया था, सो तूने ही मुझे मदरूपी अन्धकारको नाश करनेवाली, जिनेन्द्रसूर्यकी वाक्यरूपी उज्ज्वल किरणोंसे प्रबोधित किया है ॥९२॥ हाय ! मैं निराकुलरूप सिद्धि-पुरीमें प्रवेश करानेवाले जिननाथकर-भाषित निर्दोष मार्गको छोड़कर बहुत कालसे दुष्टोंकर दिखाये हुये नर्कमें ले जानेवाले महा भयंकर मार्गमें लग गया ! ॥९३॥

वास्तवमें जीवोंको उत्तम घर स्त्री पुत्र सेवक बंधु नगर और ग्रामोंसे भरी हुई राज्यसंपदा पैंड पैंडपर प्राप्त हो सकती है, परन्तु पंडितोंकर पूजनीय निर्मल तत्त्व रुचिका मिलना कठिन है ॥९४॥ हे मित्र !

मूढजन जिससे दूषित होकर दिखाये हुये समस्त वस्तु स्वरूपको विपरीत देखते हैं, उस मिथ्यात्वको नष्ट करके तूने ही मुझे अलभ्य निर्मल सम्यक्त्व दिया है ॥९५॥ मैंने जब मिथ्यात्वरूपी विषको त्यागकर मन, वचन, कायसे जिनशासनको ग्रहण किया, सो हे महामते ! अब तेरे प्रसादसे मैं व्रतरूपी रत्नसे भूषित हो जाऊँ, ऐसा उपाय कर ॥९६॥

दूर हो गया है मिथ्यात्व जिसका ऐसे अपने मित्रकी उपर्युक्त वाणी सुनकर मनोवेग अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुवा । सो ठीक ही है, अपने उपायसे मन वांछित कार्यकी सिद्धि होनेपर ऐसा कौन पुरुष है कि जिसको तुरन्त ही हर्ष न हो ? ॥९७॥ तत्पश्चात् मनोवेगने अन्य कुछ भी न सोचकर उसी वक्त जिनेन्द्र वचनोंसे वासित अपने मित्रको लेकर शीघ्र गतिसे उज्जयिनी नगरीको जानेका प्रबंध किया। सो ठीक ही है, ऐसा कौन पुरुष है जो मित्रोंके प्रयोजन साधनेमें प्रमाद करें ? ॥९८॥ जिस प्रकार इन्द्र उपेन्द्र नन्दनवनको जाते है, उसी प्रकार अन्धकारका नाश करनेवाले आभूषणोंसे अलकृत वे दोनों मित्र मनके वेगके समान चलनेवाले विमानपर चढ़कर प्रसन्नताके साथ उजयिनी नगरीके वनको गये ॥९९॥

उस वनमें पहुँचकर वे दोनों मित्र मनरूपी घरमें रहनेवाले अनिवार्य लोकव्याप्त मोहरूपी अन्धकारको वाक्यरूपी किरणोंसे नष्ट करनेमें समर्थ अपरिमाण है ज्ञानकी गति जिनके ऐसे केवलज्ञानी रूप सूर्यको भक्तिपूर्वक नमस्कार व स्तुति करके जिनमति नामा मुनिके चरणोंके निकट बैठ गये ॥१००॥

इतिश्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रंथकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें अठारहवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥१८॥



उन्नीसवाँ परिच्छेद

जब वे दोनों जिनमति नामा मुनिके पास बैठ गये, तब मुनि महाराज मनोवेगकी तरफ दृष्टि करके बोले—हे भद्र! क्या यही तुम्हारा मनका प्यारा पवनवेग मित्र है? जिसको संसार-समुद्रसे तारनेवाले धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे तुमने महाविनयके साथ केवली भगवानसे उपाय पूछा था? ॥१-२॥ यह सुनकर मनोवेगने मस्तकपर दोनों हाथ रखकर (हाथ जोड़कर) कहा—हे साधो! यही है वह पवनवेग। अब यह व्रत ग्रहण करनेकी इच्छासे यहांपर आया है ॥३॥ हे साधो! मैंने इसको पटना नगरमें ले जाकर अनेक प्रकारके दृष्टान्तोंसे समझाकर मुक्तिरूपी घरमें प्रवेश करनेवाला सम्यक्त्व ग्रहण करा दिया है ॥४॥ हे साधो! वमन कर दिया है मिथ्यात्व जिसने ऐसा पवनवेग इस समय जिस प्रकार व्रत-रूपी आभरणसे भूषित हो जावे, ऐसा उपदेश दीजिये ॥५॥

यह सुनकर जिनमति नामा मुनिमहाराजने कहा—हे भद्र! परमात्मा और गुरुकी साक्षीसे सम्यक्त्व पूर्वक श्रावकके व्रत ग्रहण कर, क्योंकि व्यापारीके समान साक्षी पूर्वक व्रत ग्रहण करनेवाला भ्रष्टताको प्राप्त नहीं होता। इस कारण यह व्रत साक्षी पूर्वक ही ग्रहण करने योग्य है ॥ ६ ॥ जिस प्रकार खेतकी क्यारीमें जलके बिना रोपण किया हुआ धान्य फलीभूत नहीं होता, उसी प्रकार सम्यक्त्वके बिना ग्रहण करना भी सफल नहीं होता ॥ ८ ॥ गहरी नींवके देवमंदिरके सदृश सम्यक्त्व सहित जीवोंका ही दुर्धर व्रत निश्चल होता है ॥९॥

जिनेन्द्र भगवानकर भाषित जीव अजीव आस्रव बंध संवर

निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंके श्रद्धान करनेको सत्पुरुषोंने व्रतोंको पोषनेवाला सम्यक्त्व कहा है ॥१०॥ इस पवित्र सम्यग्दर्शनको शंका कांक्षादि आठ दोष रहित और संवेग वैराग्य दया और आस्तिक्यादि गुणोंकर सहित धारण करनेवाले पुरुषका ही व्रत (चारित्र) फलवान् होता है ॥११॥

श्रावकाचारका वर्णन

श्रावकाचारमें पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार द्वादशव्रत कहे गये हैं ॥१२॥

१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य और ५ असंगता (अपरिग्रहत्व) इनके एकदेश धारण करनेको पांच अणुव्रत कहते हैं ॥१३॥ हे वत्स ! व्रतको धारण करना तो सहज है परन्तु उसकी रक्षा करना कष्टकारक है। जैसे बांसका काटना तो सहज है परन्तु छिलना बड़ा कठिन है ॥१४॥

जिस प्रकार मनवांछित सुखको देनेवाले धनको घरमें छिपाकर रक्षा करते हैं, उसी प्रकार अपने चित्तरूपी घरमें ग्रहण किये हुये व्रतरूपी रत्नको रखकर यत्नसे सदा रक्षा करना चाहिये ॥ १५ ॥ क्योंकि जो व्रत प्रमादसे नष्ट हो जाता है वह फिरसे प्राप्त नहीं होता। क्या कोई समुद्रमें डाला हुवा दिव्य रत्न ला देनेको समर्थ है ? कदापि नहीं ॥१६॥

त्रस और स्थावरके भेदसे जीव दो प्रकारके हैं उनमेंसे व्रतकी इच्छा करनेवाले श्रावकको (गृहस्थको) त्रस जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये, त्रस जीवोंकी रक्षा करनेको ही अहिंसाणुव्रत कहा है ॥१७॥ दो इंद्रियवाले तीन इंद्रियवाले चतुरिन्द्रियवाले और पांच इंद्रियवाले इन ४ प्रकारके त्रस जीवोंको जानकर अपने हितकी वांछा

करनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि मन वचन कायसे इनकी रक्षा करें ॥१८॥

हिंसा दो प्रकारकी है—एक आरम्भी, दूसरी अनारम्भी। सो मुनि तो दोनों ही प्रकारकी हिंसाको छोड़ते हैं। परन्तु गृहस्थ अनारम्भी हिंसाको ही छोड़ता है ॥१९॥ जो श्रावक मोक्षकी इच्छा रखनेवाले और करुणाके धारक हैं, उनको चाहिये कि निरर्थक स्थावर जीवोंकी हिंसा भी नहीं करे ॥२०॥ बहुतसे दयाहीन देवता, अतिथि, औषधि, पितृयज्ञ व मंत्रादि साधनेके लिये जीवोंकी हिंसा करते हैं, सो इनके अर्थ कदापि जीवहिंसा नहीं करनी चाहिये ॥२१॥

किसी जीवको बांधना, मारना, नासिकादिका छेदन भेदन करना, बहुत भार लादना, भूखा प्यासा रखना, इत्यादि अतीचारों सहित हिंसाका त्याग करनेसे अहिंसाणुव्रत स्थिर होता है ॥२२॥

जिह्वास्वादके वशीभूत हो मांसभक्षणके लोभसे, भयभीत जीवोंका प्राण हरना कदापि योग्य नहीं ॥२३॥ जो पुरुष अपने मांसकी पुष्टिके लिये परके मांसको खाता है वह निर्दयी हिंसक नरकके अनंत दु:खोंसे नहीं छूट सकता है ॥२४॥

यह तो नियम ही है कि—मांसभक्षीके चित्तमें दया किसीप्रकार भी नहीं हो सकती। जब दया ही नहीं है तो उस निर्दय पुरुषमें धर्मांश कहांसे हो ? और धर्मरहित जीव अनेक दु:खोंके घर सातवें नरकको जाता है ॥२५॥ जिसका चित्त प्राणीघात करते समय देखने व स्पर्श करनेको दौड़ता है, वह भी नरकमें जाता है तो फिर हिंसा करनेवाला नरकमें क्यों नहीं जायगा ? ॥२६॥ जो पुरुष मांसकी लोलुपतासे जन्मभर हिंसा करता है, मैं देखता हूँ कि वह नरकरूपी कूपसे कभी नहीं निकलेगा ॥२७॥ जो मनुष्य मांस-

भक्षण करनेमें रत होता है, उसको नरकमें नारकी जीव लोहेकी शलाकाओंसे छिन्नभिन्न करके जबरदस्ती पकड़कर जाज्वल्यमान वज्राग्निमें डाल देते हैं ॥२८॥

जिस प्रकार मांसभक्षी सिंहका चित्त मृगादिकको देखते ही उनके मारनेको चलित होता है, उसी प्रकार मांसभक्षी मनुष्योंकी बुद्धि भी जीवोंके मारनेमें प्रवर्तती है। इस कारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि मांस भक्षणका त्याग करें ॥२९॥ जो नीच उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थोंको छोड़कर मांस भोजन करते हैं, वे निश्चय करके महादुःखमय नरकोंसे कभी नहीं निकलेंगे ॥३०॥ बहुत तो क्या मांसभक्षी और कुत्तोंमें कुछ भी भेद नहीं है इस कारण हितैषी पुरुषोंको कालकूट विषके समान जानकर मांसको अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥३१॥

जिसके द्वारा दावानलसे लताके समान लोकमर्यादा नष्ट हो जाती है, उस धर्म अर्थको नष्ट करनेवाली शराबको (मदिराके) कदापि नहीं पीना चाहिये ॥३२॥ मदिरासे उन्मत्त होकर मनुष्य अपनी माता बहन और पुत्रीको भी भोगनेकी इच्छा करने लग जाता है, इसलिये मद्यसे अधिक निंद्य और दुःखदायक पदार्थ जगतमें और कोई नहीं है ॥३३॥

जो पुरुष मद्य पीता है, वह पागल होकर रास्तेमें गिर पड़ता है। उसके मुँहमें कुत्ते पेशाब कर जाते हैं और चोर कपड़े चुराकर ले जाते हैं ॥३४॥ जिस प्रकार दावाग्नि वृक्षोंको जला देती है, उसी प्रकार मद्यपान करनेसे मनुष्यके चित्तसे विवेक, संयम, क्षमा, सत्य, शौच (पवित्रता), दया, जितेन्द्रियता आदि समस्त धर्म नष्ट हो जाते हैं ॥३५॥ मद्यके समान न तो कोई कष्टदायक है, न कोई

अज्ञानदायक है, और न कोई निंदनीय और महाविष है ॥३६॥

जो पुरुष मद्य पीकर मतवाला (पागल) हो जाता है, व जिस जिसको देखता है उसीर के आगे निर्लज्ज होकर नमस्कार करता है, रोता है, चक्कर लगाता है, स्तुति करता है, शब्द करता व गाता है, तथा नृत्य करने लग जाता है ॥३७॥ मद्य जो है सो रोगोंको अपथ्यके समान समस्त दोषोंका मूल है अतएव इसका सदैवके लिये त्याग करना चाहिये ॥३८॥

अनेक जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न हुआ, मधुमक्खियोंकी जूठन, और म्लेच्छ भीलोंकी लालोंसे मिला हुआ महापापदायक मधु (शहद) दयालु पुरुषोंको सर्वथा भक्षण करना योग्य नहीं है ॥३९॥ अनेक जीवोंसे भरे हुये सातग्रामोंके जलानेमें जितना पाप होता है, उतना पाप मधुके एक कण भक्षण करनेमें लगता है ॥४० जो धर्मात्मा पुरुष होते हैं, वे मक्खियोंके द्वारा एकर पुष्पसे लाकर वमन किये हुए उच्छिष्ट अपवित्र मधुको कदापि भक्षण नहीं करते ॥४१॥ मद्य मांस और मधुमें प्रत्येकके स्वादानुसार भिन्न २ जातिके जीव होते हैं, वे सबके सब निर्दई जीवोंके द्वारा भक्षण किये जाते हैं ॥४२॥

जो नीच पुरुष प्रत्यक्ष जीवोंके भरे हुये पाच प्रकारके बड़, पीपल, ऊमर (गूलर), पाकर और कठूमर (अंजीर) उदुम्बर फल खाते हैं, उनके चित्तमें दया कहांसे हो सकती है ? ॥४३॥ जो सात्त्विक जिनाज्ञाके पालनेवाले और जीवहिंसाके त्यागी हैं, उनको पांच प्रकारके उदुम्बर फल सर्वथा छोड देना चाहिए ॥४४॥ इनके अतिरिक्त जीवोत्पत्तिके कारण कन्द, मूल, फल, पुष्प, मक्खन

(मनवचन) और कृतादिक भी दयावान् पुरुषोंको छोड़ देने चाहिए ॥४५॥

दूसरे—स्वहितवांछक पुरुषोंको काम क्रोध मद द्वेष लोभ मोहादिके वशीभूत होकर परको पीड़ाकारी वचन बोलना छोड़ देना चाहिए ॥४६। जिनवचनोंके बोलनेसे धर्मकी हानि हो, लोकसे विरोध हो, और विश्वास नष्ट हो जावे, ऐसे वचन क्यों कहना ? ॥४७॥ जिस वचनसे नीचता उत्पन्न हो, जिस असत्य वचनकी म्लेच्छ लोग भी निंदा करें, ऐसा असत्य वचन श्रावकजन कदापि नहीं कहते ॥४८॥

तीसरे—खेतमें, गांवमें, खलियानमें (खलेमें), गोशालामें, पत्तनमें (नगरमें), वनमें, और मार्गमें भूले हुये गिरे हुये हराये हुये गडे हुये रक्खे हुये वा स्थापन किये हुये विना दिये हुये (मालिककी आज्ञाके विना) परद्रव्यको निर्माल्यके समान देखते हुये परतापसे भीत बुद्धिमान् पुरुष कदापि ग्रहण नहीं करते क्योंकि–धनादिक हैं, सो जीवोंके समस्त कार्योंको साधनेवाले बाहरके प्राण हैं, सो उनके नष्ट होनेपर मनुष्य प्रायः शीघ्र ही मर जाते हैं ॥४९–५०–५१॥ जिसने किसीका द्रव्य हरा, उसने उसके समस्त सुखोंके देनेवाले धर्म बन्धु पिता पुत्र कांति कीर्ति बुद्धि स्त्री आदिक सब हरे ॥५२॥

मरण होनेमें तो एक क्षणभरके लिये एक जीवको ही दुःख होता है, परन्तु द्रव्यनाश होनेपर मनुष्यको सकुटुम्ब उमरभर दुःख होता है ॥५३॥ तथा मच्छ व्याध व्याघ्र शिकारी ठग आदिक निरन्तर दुःख देनेवालोंसे भी चोर अधिक पापिष्ठ होता है ।.५४॥ जो नर परद्रव्य हरण करता है, उसको इस लोकमें तो राजादिकसे

सर्वस्व हरणादि घोर दंड मिलता है और परलोकमें नरकके दुःख प्राप्त होते हैं ।।५५।।

चौथे—नरकरूपी कूपका मार्ग, स्वर्गरूपी घरमें जानेसे अटकानेवाली खाई जो परस्त्री, उसके सेवनका त्यागकर व्रती पुरुषको स्वदार सन्तोष व्रत धारण करना चाहिए ।।५६।। जो स्वर्गमोक्षादिके सुख प्राप्तिकी इच्छा रखते हैं, उन पुरुषोंको अपनी स्त्रीके अतिरिक्त समस्त स्त्रियोंको माता बहन बेटी समान देखना चाहिए ।।५७।।

परस्त्री अत्यन्त स्नेहयुक्त होनेपर भी दुःख देनेवाली है। निर्मल (सुन्दर) होनेपर भी पापरूपी मैलकी करनेवाली है, रसकी आधार होनेपर भी तृष्णाको बढ़ानेवाली है, अपना सर्वस्व देनेपर भी द्रव्य हरनेवाली है, इस प्रकार विरुद्धाचारसे प्रवर्तनेवाली जो परस्त्री सो दूरसे ही त्यागने योग्य है ।।५८-५९।।

यद्यपि स्वस्त्री और परस्त्रीके सेवनमें कुछ भी विशेष नहीं है। परन्तु परस्त्री सेवन करनेवाला तो नरकमें जाता है और स्वदार-सन्तोषी स्वर्गको जाता है। कारण इसका यही है कि स्वस्त्रीकी अपेक्षा परस्त्री सेवनमें अनुराग अधिक होता है। और परद्रव्यमें राग करना ही दुःखका मुख्य कारण है ।।६०।।

जो स्त्री अपने पतिको छोड़कर निर्लज्ज हो परपुरुषके साथ रमण करती है, उस परस्त्रीपर किस प्रकार विश्वास किया जाय ? ।।६१।। रमणीय देखनेसे सुख न होकर आकुलता और नरकमें ले जानेवाले घोर पाप होनेके सिवाय कुछ भी प्राप्ति नहीं होती है ।।६२।। जिसके संगमात्रसे उभय लोक सम्बन्धी हानि होती है, ऐसी परस्त्रीको लोग स्वदार सन्तोषता छोड़कर किस कारण सेवन करते हैं ? ।।६३।।

जो पुरुष कामरूप अग्निसे सन्तप्त परस्त्रीको सेवन करता है, वह नरकमें साक्षात् वज्राग्निसे सन्तप्त (लाल) की हुई लोहमयी स्त्रीसे (पुतलीसे) चिपटाया जाता है ॥६४॥ ऐसा जानकर विद्वानोंको चाहिये कि यमराजकी दृष्टिके समान प्राणसंहार करनेवाली परस्त्रीको छोड़ देवें ॥६५॥

पांचवें—जिस प्रकार दुःसह तापकी देनेवाली अग्नि जलसे शमन की जाती है, उसी प्रकार अपना बढ़ा हुवा लोभ सन्तोष करके शमन करना चाहिये ॥६६॥ जो सन्तोष व्रतके धारी हैं, उनको चाहिये कि, धन धान्य गृह क्षेत्र द्विपद चतुष्पद आदिका परिमाण कर लेवे ॥६७॥ जिस प्रकार काष्ठके डालनेसे अग्नि बढ़ती है, उसी प्रकार कषायोंके छोड़नेसे धर्म और स्त्रीके संगसे काम और लोभसे लोभ बढ़ता है ॥६८॥ नहीं जीता हुवा लोभ मनुष्यको भयानक नरकमें ले जाता है सो ठीक ही है—जो बलवान् वैरी होते हैं, वे क्या क्या कष्ट नहीं देते ? ॥ ६९ ॥

उपार्जन की हुयी धनसम्पदाओंके भोगनेवाले बहुत हैं, परन्तु जब यह जीव उस आरम्भसे उपार्जन किये हुये पापका फल नरकमें भोगता है उस वक्त वे धनसम्पदाओंके भोगनेवाले पुत्र कलत्रादि कोई भी सहायक नहीं होते ॥७०॥ जिस मनुष्यके निश्चल सन्तोष है, उसके देव किंकर हैं, कल्पवृक्ष उसके हाथमें हैं, और निधियें उसके घरमें आयी हुयीं हैं, ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि इन सब सुखदायक संपदाओंके होनेपर भी जिसके चित्तमें कल्याण करनेवाला सन्तोष नहीं है, वह सदा दरिद्र और दुःखी ही है ॥७१-७२॥

इन पांच अणुव्रतोंके सिवाय दिशा, देश और अनर्थ दंडसे विरक्त होना ऐसे तीन प्रकारके गुणव्रत हैं। मोक्षकी इच्छा

करनेवाले श्रावकोंको ये तीनों गुणव्रत मन, वचन, कायसे धारण करना चाहिये ॥७३॥

दशों दिशाओंमें विधिपूर्वक जाने आनेका परिणाम करके उससे आगे नहीं जाना सो पहिला दिग्व्रत नामा गुणव्रत है ॥७४॥ इस गुणव्रतके धारण करनेसे मर्यादाके बाहर त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीवोंकी हिंसाका सर्वथा त्याग हो जानेसे उस श्रावकके घरमें रहते भी मर्यादासे बाहर महाव्रत होता है ॥७५॥ जिसने यह दिग्व्रत धारण किया, उसने तीनलोकको उल्लँघन करनेवाली लोभ-रूपी अग्निका स्तंभन किया अर्थात् अपना लोभ घटाया ॥७६॥

दिग्व्रतमें जो दशों दिशाओंका परिमाण किया, उन दशोंदिशा-ओंमें कोई भी प्राणी एक दिनमें नहीं जा सकता इस कारण प्रतिदिन, सात दिन, पन्द्रह दिन अथवा महीनेभर इत्यादि कालकी मर्यादासे क्षेत्रका परिमाण कर लेना, सो दूसरा देशव्रत है। इसका फल उपर्युक्त गुणव्रतके समान त्यक्तक्षेत्रमें महाव्रत पालनेकासा और भी अधिक होता है, सो ठीक ही है—विशेष कारणसे विशेष कार्य क्यों न हो ? ॥७७–७८॥

व्यर्थ हिंसादिके त्यागनेकी इच्छा रखनेवालोंको धर्मकार्योंमें अनुपकारी और पापकार्योंमें सहायक ऐसे पांच प्रकारके अनर्थ-दण्डोंको त्यागना चाहिये ॥७९॥ दयावान श्रावकोंको चाहिये कि हिंसाके कारण मयूर, कुत्ता, बिल्ली, मैना, तोता, कुक्कुटादिकको पकड़कर पालन पोषण न करें ॥८०॥ तथा हिंसाके कारण फांसी, डंडा, विष, शस्त्र, हल, रस्सी, अग्नि, घानी, लाख, लोहा, नील इत्यादि पदार्थ किसीको मांगनेसे न दें ॥ ८१ ॥ इसके अतिरिक्त जिनमें जीवोत्पत्तिकी पूर्ण सम्भावना हो, ऐसे संधान (आचार मुरब्बा),

फूली हुई (पुष्पित) वस्तु, बींधे हुये सड़े हुये पदार्थोंका भक्षण भी कदापि न करें ॥८२॥

३. सामायिक, उपवास, भोगोपभोग परिमाण, और अतिथि संविभाग ये चार प्रकारके शिक्षाव्रत (मुनिव्रतकी शिक्षा देनेवाले) हैं ॥८३॥

प्रथम—जीवन मरण सुखदुःख योग वियोगादिकमें समान भाव रखकर निरालस्य हो नित्य सामायिक करना चाहिये ॥ ८४ ॥ सामायिकके समय परवस्तु तथा अन्यान्य समस्त कार्योंसे विरक्त होकर समभावपूर्वक दो आसन (कायोत्सर्ग वा पद्मासन) द्वादश आवर्त (एक एक दिशामें तीन तीन) और चारों दिशाओंमें चार प्रणति करके त्रिकाल वंदना (सामायिक) करना चाहिये ॥८५॥

दूसरे—पर्व चतुष्टयमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशीके दिन) समस्त प्रकारके आरम्भ और भोगोपभोगादिका त्याग करके भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये ॥८६॥ जिस उपवासमें पांचो इंद्रियां अपने अपने विषयमें निवृत्त होकर आत्मामें ही स्थिर हों, किसी विषयमें भी चलायमान न हों इस प्रकार जितेन्द्रियताके साथ चार प्रकारके आहारका त्याग करके समस्त दिनरात ध्यान स्वाध्यायमें ही बिताया जाय, उसीको भगवानने उपवास करना कहा है ॥८७-८८॥

तीसरे—भोग्य (जो एकबार भोगनेमें आवे), उपभोग्य (जो बारंबार भोगनेमें आवे) का जो परिमाण (गिनती) करना सो भोगोपभोग परिमाणव्रत है। जिसमें पुष्पमाला गन्ध लेपन पक्वान्न ताम्बूल भूषण स्त्री वस्त्र सवारी आदिकका नित्य प्रति परिमाण करके व्रतकी इच्छा रखनेवाले सज्जन पुरुषोंको सेवन करना चाहिये ॥८९-९०॥

चौथे—घर पर आये हुये आरम्भत्यागी, जितेन्द्रिय, उत्तम श्रावक (क्षुल्लक ऐलक). श्राविका मुनि अर्जिकादि अतिथिके लिये भक्तिपूर्वक अन्नपान औषधादिकका विभाग करना अर्थात् दान करके सेवन करना सो अतिथि संविभाग है, सो श्रावक मात्रको करना चाहिये ॥९१॥

जो भक्त पुरुष हैं, उनको चाहिये कि कठिनसे है अन्त जिसका, ऐसे संसारका (भ्रमणका) नाश करनेके अर्थ विनयपूर्वक चार प्रकारका प्राशुक आहार मुनि अर्जिका और श्रावक श्राविकाओंके लिये नित्य प्रति प्रदान किया करें ॥९२॥ मुनिको दान देते समय श्रावकको दाताके श्रद्धादिक सात गुण सहित नवधा भक्ति पूर्वक प्रीतिके साथ प्रवर्तना चाहिये। क्योंकि विना भक्तिके दिया हुआ दान फलदायक नहीं है ॥९३॥

इन १२ व्रतोंके पालनेवाले बुद्धिमान सत्पुरुषोंको चाहिये कि किसी समयमें अनिवार्य मरण काल आ जावे, तो अपने कुटुंबियोंसे पूछकर सल्लेखना (सन्यास पूर्वक मरना) धारण करें। क्योंकि सज्जन पुरुष समयानुसार कार्य करते ही हैं ॥९४॥ प्राणान्तके समय गुरुजनोंके सन्मुख ज्ञान सहित दर्शन और चारित्रका शुद्ध करनेवाला चतुर पुरुष समस्त दोषोंकी आलोचना करके चार प्रकारके आहार और शरीरसे राग भाव छोड दे॥९५॥ जो सुधी पुरुष कषाय निदान और मिथ्यात्व रहित होकर सन्यास विधिको धारण पूर्वक मरण करते हैं, वे मनुष्य और देवलोकके सुखोंको भोगकर २१ भवके भीतर २ मोक्षपदको प्राप्त होते हैं ॥९६॥

इस प्रकार श्रावकके द्वादशव्रत जिनेन्द्र भगवानने कहे हैं सो जो कोई संसारसागरमें पडनेके भयसे डरनेवाला इनको धारण करता है, वह समस्त प्रकारसे कल्याणको प्राप्त होता है ॥९७॥

इसके अतिरिक्त जितेन्द्रियवृत्ति श्रावक है, जो भ्रू नेत्र हुँकार करांगुलि आदिकसे इशारा करनेका और लोलुपताका त्याग करके व्रतोंको बढ़ानेवाला मौन धारण पूर्वक भोजन करता है तथा–॥९८॥ सुर नर करके जिनके चरण पूजित हैं ऐसे निर्दोष पंचपरमेष्ठीकी नैवेद्य गन्ध अक्षत दीप धूप पुष्पादिकसे नित्य पूजा करनी चाहिये॥९९

जो इस पूजनीय श्रावक व्रतको अतिचार रहित पालन करते हैं वे पुरुष मनुष्य और देवोंकी सम्पदा पाकर निष्पाप हो निर्वाणपदको प्राप्त होते हैं ॥१००॥ व्रतकी प्रशंसा करनेवाली समस्त पापोंको चुरानेवाली जिनमती यतिकी वाणी सुनकर तथा देव मनुष्योंकर पूजित केवली भगवानके चरणकमलोंको नमस्कार करके वह निर्मल आशयवाला पवनवेग श्रावकके व्रत रूपी रत्नोंसे भूषित हो गया। सो ठीक ही है–भव्य पुरुष अपरिमित ज्ञानकी गतिवाले साधुओंकी सदुपदेश रूप वाणीको प्राप्त होकर उसे वृथा कैसे कर सकते हैं? अर्थात् ऐसे साधु पुरुषोंकी आज्ञा अवश्यमेव धारण करते हैं॥१०१॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें उन्नीसवां परिच्छेद पूर्ण हुवा ॥ १९ ॥



वीसवाँ परिच्छेद

अथानन्तर फिर भी मुनिमहाराजने विद्याधर पुत्रको कहा—हे भद्र ! उपर्युक्त द्वादशव्रतोंके अतिरिक्त और भी जो कई प्रकारके नियम श्रावकोंको भक्तिपूर्वक पालना चाहिये. सो कहता हूं ॥१॥

जिसमें क्षुद्रकीटादिका संचार रहता है, मुनि लोग चलते फिरते नहीं हैं, भक्ष्यअभक्ष्य वस्तुका भेद मालूम नहीं होता है, आहारपर आये हुये सूक्ष्मजीव दीखते नहीं हैं, ऐसी रात्रिमें दयालु श्रावकोंको कदापि भोजन नहीं करना चाहिये ॥२–३॥ जो पुरुष जिह्वाके वशीभूत होकर रात्रिमें भोजन करता है, उस नीचके अहिंसाणु-व्रत कहां ? ॥४॥ जो पुरुष रात्रिको भोजन करता है, वह समस्त प्रकारकी धर्मक्रियासे हीन है। उसमें और पशुमें सिवाय शृङ्गके (सींगके) कोई भी भेद नहीं है ॥५॥

शूकर सांबर कंक मार्जार तीतर बक कुत्ता सारस बाज कौवा मेंडक सर्प बौना (वामन), दाद खुजलीवाला, गूंगा, अधिक केशवाला, कर्कश, शठ, दरिद्र, दुर्जन, कोढी इत्यादि जो होते हैं, सो रात्रि-भोजनके पापसे ही होते हैं ॥६–७। जो रात्रि भोजनके त्यागी हैं, वे पंडित प्रियवादी निरोगी सज्जन मंदरागी त्यागी भोगी यशस्वी समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके पति, आदरणीय, भाग्यवान वक्ता कामदेवके समान सुन्दर और पूजित होते हैं ॥८–९॥

रात्रि भोजनके प्रभावसे सर्वत्र दुःखकी ही प्राप्ति होती है और दिवसके भोजनसे सुखकी प्राप्ति होती है, इस कारण दिनमें भोजन करना ही हितकारी है ॥१०॥ जो मनुष्य दिवसके अन्तकी दो घड़ीसे पहिले पहिले भोजन कर लेता है, उसीको महाभाग अनस्त-

मितभोजी (रात्रिभोजनका त्यागी) कहा है ॥११॥ जो पुरुष सबेरे और शामके दो दो घटिका समयको छोड़कर भोजन करते हैं, उनके महीनेमें दो उपवास सहजमें ही हो जाते हैं ॥१२॥

जो सुधी शुक्लपंचमीके दिन उपवास करता है, वह मनुष्य भव और स्वर्गके सुखको प्राप्त होकर मोक्षमें जाता है ॥१३॥ यह उपवास आषाढ कार्तिक और फाल्गुन इन तीन महीनोंमेंसे किसी एक महीनेमें गुरुकी साक्षीपूर्वक विधिके साथ ग्रहण करके पांच वर्ष और ५ महीने पर्यंत विधि और भक्तिसहित करना चाहिये॥१४-१५॥

उपवासके करनेसे जिस प्रकार शरीर क्षीण होता है, उसी प्रकार जीवके अनेक भवके संचय किये हुये कर्म निःसंदेह क्षीण हो जाते हैं ॥१६॥ तथा जिस प्रकार सूर्य तड़ागोंके जलको शोषण करता है, उसी प्रकार यह पंचमीका उपवास भी जीवोंके पूर्वकालके संचित किये हुये पापोंको शोषण (नष्ट) करता है ॥१७॥ उपवास किये विना इन्द्रियां और कामदेव जीते नहीं जा सकते। क्योंकि वनके बडे बडे हस्तियोंको सिंह ही मार सकता है ॥१८॥

जिस दिन रोहिणी और चन्द्रमाका योग हो, उस दिन भी उपवास करना चाहिए। सो वह भी पांच वर्ष और पांच महिने तक भक्तिपूर्वक करनेसे समस्त सिद्धि प्राप्त होती है। इन दोनों व्रतोंका फल अधिक क्या कहें तीसरे ही भवमें मोक्ष होता है ॥१९-२०॥

ज्ञानी पुरुष बहुधा प्रधान फलका वर्णन करते हैं। उसके आनुषंगिक छोटे २ फलोंको नहीं कहते—जैसे खेती करनेमें धान्य होनेको फल कहते हैं। पियाल (पयाल) वगैरह भी अनेक फल होते हैं, परन्तु उनको मुख्य नहीं कहते। भावार्थ—उपर्युक्त व्रतका मुख्य

फल तो तीसरे भव मोक्ष जाना है। इसके सिवाय स्वर्ग मनुष्य भवके अनेक प्रकारके सुख सौभाग्यादिकी भी प्राप्ति होती है ॥२१॥

इन दोनों उपवासोंको विधिपूर्वक पूरा होनेपर पूर्ण फलकी वांछा करनेवालोंको अपनी विभूतिके अनुसार उद्यापन भी अवश्य करना चाहिए ॥२२॥ यदि किसीकी विधि पूर्वक उद्यापन करनेकी सामर्थ्य न हो, तो द्विगुण विधि करना चाहिये। अर्थात् १० वर्ष और दश महीने तक उपवास करना चाहिये। क्योंकि इस प्रकार यदि नहीं किया जाय तो व्रतविधि पूरी कैसे हो? ॥२३॥

संसारको (भवभ्रमणको) नष्ट करनेवाले—अभय आहार औषध और शास्त्र इस प्रकार ये चारों दान भी नित्यप्रति देना चाहिये ॥२४॥

जीवोंको सबसे अधिक प्यारे प्राण हैं। इस कारण जीवोंकी रक्षा करना अर्थात् समस्त दानोंमें अभयदान करना ही श्रेष्ठ है। क्योंकि प्राणी मात्र जो कुछ धंदा रोजगारादि आरम्भ करते हैं, सो एकमात्र अपने जीवकी रक्षाके लिये ही करते हैं। इस कारण जीव-रक्षासे अधिक श्रेष्ठ कोई भी दान नहीं हो सकता ॥२५-२६॥

पुरुषके धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका आधार जीवन है। सो जिसने जीवदान दिया, उसने तो क्या नहीं दिया? अर्थात् सब कुछ दिया और जिसने प्राण हर लिये उसने बाकी क्या छोड़ा? सब कुछ हर लिया ॥२७॥ जगतमें अनेक प्रकारके भय हैं। इस कारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि जिस प्रकार बने सदा ही जीवरक्षा करते रहैं ॥२८॥

धर्मध्यान साधनेके लिये मूल कारण शरीर है, और शरीरकी रक्षा अन्नके विना नहीं होती, इस कारण धर्मात्मा पुरुषोंको आहार-

दान भी सदैव देना चाहिये ॥२९॥ जब दुर्भिक्ष पड़ता है तब अनेक जन क्षुधाशांति करनेके लिये अपने अतिशय प्यारे बालकों-तकको बेच देते हैं। इस कारण आहार जो है सो पुत्रादिकोंसे भी अधिक प्यारा है ॥३०॥ संसारी जीवोंके लिये इस सर्वनाशी क्षुधारूपी दुःखसे बड़ा और कोई भी दुःख नहीं है। इस कारण जिसने आहारदान दिया उसने क्या नहीं दिया? और आहारको नष्ट करनेवालेने क्या नहीं हरण किया? ॥३१॥

अन्नदान जो है सो मनुष्यको कांति, कीर्ति, बल, वीर्य, यश, धन, सिद्धि, बुद्धि, शम, संयम, धर्मादिक देता है। इसी कारण जगतमें आहारदानी पुरुष ही सुखी और सुख देनेवाले होते हैं ॥३२॥ जो शरीररक्षा करनेकी शक्ति अन्नभक्षण करनेमें है, वह शक्ति सुवर्ण मणिरत्नोंमें कदापि नहीं है। इस कारण परोपकारी जन मुनियोंके लिये रत्नादिकको छोड़ आहारदान ही दिया करते हैं ॥३३॥

जब मुनिगण तीव्र व्याधिसे पीड़ित हो जाते हैं तब वे तप करनेमें असमर्थ हो जाते हैं, इस कारण दानीगण उन तपस्वियोंकी विघ्नकारक व्याधि दूर करनेके लिये विधिपूर्वक भोजनादिके साथ औषधिका भी दान किया करते हैं ॥३४॥ जैसे जलमग्न पुरुष अग्निसे दुखित नहीं होता है, उसी प्रकारसे जो श्रावक रोगी योगि-योंको भक्तिपूर्वक औषधदान देता है, वह वातपित्त कफजनित रोगोंसे कदापि पीड़ित नहीं होता ॥३५॥

जो शास्त्र द्वेष, राग, मद, मत्सर, मूर्च्छा, क्रोध, लोभ, भया-दिकको नष्ट करनेमें समर्थ है, और मोक्षरूपी घरका मार्ग बतानेवाला है, वह अव्यय (अक्षय) सुखकी प्राप्तिके अर्थ मुनियोंको अवश्य ही देना चाहिये ॥३६॥ शास्त्रका स्वाध्याय करनेसे विवेक होता है।

विवेकसे अशुभ कर्मोंकी हानि होती है। और कर्मोंकी हानिसे मोक्षपदकी प्राप्ति होती है, इस कारण अनर्थोंका नष्ट करनेवाला शास्त्र भी मुनिके लिये अवश्य देना चाहिये ॥३७॥

जिस दानमें जीवोंको पीड़ा न हो, जिसके प्रभावसे यति विषयरूपी वैरीके वश न हो, और पापोंको नाश करनेवाले तपकी वृद्धि हो, वही दान सुखका देनेवाला और श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ३८ ॥

इसके सिवाय रत्नत्रयधर्मका बढ़ानेवाला और भी निर्दोष दान, शील संयम दया–जितेन्द्रियताके घर और परिग्रहरहित उत्तम पात्रको देना योग्य है ॥३९॥ गृह कलत्रादिसे दूषित पात्र, गृहकलत्रादिमें रहनेवाले दानीको वांछित निवृत्ति (सुख) कदापि नहीं दे सकता। सो नीति ही है कि समुद्रमें पत्थर पत्थरको नहीं तार सकता ॥४०॥

चतुर पुरुषोंको चाहिये कि—मुखसे मीठी मीठी बातें बनानेवाली, चित्तमें दुष्टता रखनेवाली, सर्वतया नीच, सैंकड़ों व्यभिचारियों द्वारा मर्दन की हुयी, और अशुभ लेश्यायुक्त वेश्याको कदापि न सेवें ॥४१॥ जो, मनसे एकको चाहती है, वचनसे दूसरेको प्यार बताती है, और तनसे किसी तीसरेको ही सेवन करती है ऐसी नये नये पुरुषोंको चाहनेवाली वेश्या किस प्रकार सुखदायक हो सकती है ? ॥४२॥

नष्ट भया है शम संयम योग जिसका, ऐसा जो पुरुष रतिमें मोहितचित्त होकर मद्य मांस भक्षण करनेवाली वेश्याका मुख चुम्बन करता है, उसके व्रतरूपी रत्न किस प्रकार रह सकता है ? ॥४३॥ जो नीचाचारी मूढ़ सर्वकाल वेश्याके वशीभूत हो पुत्र मित्र बांधव और आचार्योंके (सदुपदेशकोंके) समूहका कहा नहीं मानता,

उसको आप्त पुरुषों द्वारा आराधने योग्य धर्मकी प्राप्ति कहां ? ॥४४॥

यद्यपि निजस्त्री सुखकारी है परन्तु अतिशय आसक्तिसे सेवन की हुयी वह भी महादुःखका कारण है। जिस प्रकार कि—शीत विशिष्ट मनुष्यको अग्नि प्यारी है तथापि अतिशय सेवन की हुयी क्या शरीरको व खूनको जलानेवाली नहीं है ? अवश्य है। इस कारण जो जितेन्द्रिय, तीव्र कामके बाणोंके गर्वको नष्ट करनेवाला महापुरुष अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वोंमें सदैव मैथुनकर्मका त्यागी है, वह समस्त देवताओं द्वारा पूज्य स्वर्गका इन्द्र होता है ॥४५-४६॥

जो पूर्वोपार्जित पुराने धनको क्षणभरमें नष्ट करके घरमें अनिवार्य दरिद्रको भरता है वह जूआ खेलना भी बुद्धिवानोंको अवश्य छोड़ देना चाहिए ॥ ४७ ॥ जुवारीको भाई बन्धु छोड़ देते हैं। पण्डितजन उसकी निंदा करते हैं, दुर्जन पुरुष हंसी करते हैं, सज्जन पुरुष उसकी दुर्दशापर अफसोस करते हैं, और अन्यान्य जुवारी उसको बांधते हैं, लातें मारते हैं, पीड़ा देते हैं और नाना प्रकारकी ताड़नायें करते हैं ॥४८॥

यह द्यूतकर्म धर्म अर्थ कामको नष्ट करनेमें चतुर, समस्त प्रकारके पापकर्मोंको बढ़ानेके लिये तत्पर और शीलसंयमियोंके द्वारा निंदनीय है। इस कारण द्यूतसे अधिक अनिष्टकारक और कोई भी नहीं है ॥४९॥ जो मूढ़ निर्लज्ज होकर अपनी माताके वस्त्रको भी चुरा लेता है, वह नीच जुआरी अन्य समस्त जनोंको कष्टदायक क्या कार्य नहीं करेगा ? ॥५०॥

इस लोकमें मद्य पीना १, मांस भक्षण २, परद्रव्यहरण ३, द्यूत खेलना ४, शिकार करना ५, परस्त्री सेवन ६, वेश्यासंग ७ ये

सातों ही नीच पुरुषोंके आचार हैं, सो श्रेष्ठ पुरुषोंको त्यागना चाहिये ॥५१॥

जो मनुष्य श्रावकके ११ स्थानोंमें (दरजोंमें) रहता है, प्रवर्तता है, वही उत्कृष्ट श्रावक होता है। और वही संसार परिभ्रमणको नष्ट करनेमें समर्थ ऐसा चौदह गुणस्थानवर्ती योगी होनेको समर्थ होता है ॥५२॥

१. जिसके हृदयमें हारयष्टिके सदृश तापको हरनेवाली, और चंद्रमाकी किरणोंके समान उज्वल, निर्मलदृष्टि (समयक्त्व) होती है, वही दर्शन प्रतिमाका धारक निर्दोष द्युतिवाला दर्शनी नामक श्रावक होता है ॥५३॥

२. जो महात्मा दुर्लभ्य धनको घरमें रखनेके समान अपने हृदयरूपी घरमें अतिचार रहित द्वादश व्रत रत्नोंको धारण कर रखता है, उसी सुधीको व्रती पुरुष दूसरी व्रतप्रतिमाका धारक व्रती कहते हैं ॥५४॥

३. जो श्रावक इन्द्रियरूपी घोड़ोंको दमन करके प्रिय अप्रिय और मित्र शत्रुमें समताभाव रखता हुवा त्रिकाल सामायिक करता है, उसको प्रवीण पुरुषोंने तीसरी सामायिक प्रतिमाका धारक सामायिकी श्रावक कहा है ॥५५॥

४. जो नर भोगोपभोग पदार्थोंसे चित्त हटाकर आरम्भ रहित चारों पर्वोंमें (दो अष्टमी दो चतुर्दशीके दिन) हमेशा उपवास किया करता है, वही चौथी प्रोषध प्रतिमाका धारक विद्वानोंका प्यारा प्रोषधी श्रावक है ॥५६॥

५. जो श्रावक समस्त जीवोंकी करुणा करनेमें तत्पर होकर समस्त प्रकारके सचित्त पदार्थोंको छोड़ प्रासुक अन्नजलादिक भोजन-

भक्षण करता है, उसको यतियोंके नाथ गणधर भगवानने पांचवीं सचित्त त्याग प्रतिमाका धारक सचित्तविरती श्रावक कहा है।।५७।।

६. जो मंदरागी धर्मात्मा दिवसमें स्वस्त्री सेवनका त्याग करता है, उसको महत्पुरुषोंने धन्यवादके योग्य दिन मैथुन त्याग प्रतिमाका धारक दिन मैथुन त्यागी श्रावक कहा है।।५८।।

७. जो श्रावक कामदेवरूपी महाशत्रुके गर्वको मर्दन करके देव मनुष्योंको जीतनेवाले स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाणोंसे नहीं जीता जाता, अर्थात् स्वस्त्रीका भी त्यागी होता है उसको सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमाका धारक ब्रह्मचारी श्रावक कहते हैं।।५९।।

८. जो धर्मात्मा श्रावक सर्व प्रकारकी जीव हिंसाके कारणोंको जानकर रागद्वेषादिको मंद करके सर्व प्रकारके आरम्भोंको छोड़ देता है; उसको यथार्थ ज्ञानके धारक पुरुषोंने आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमाका धारक अनारम्भी श्रावक कहा है।।६०।।

९. जो श्रावक उत्कृष्ट कषायरूपी शत्रुओंको मर्दन करके जीव हिंसाके कारणरूप परिग्रहको जानकर तृणके समान त्याग कर देता है, उसको गणधरोंने नववीं परिग्रहत्याग प्रतिमाका धारक अपरिग्रही श्रावक कहा है।।६१।।

१०. जो विविध प्रकारके जीवोंको तापकारक अग्निके समान गृह कार्योंमें सम्मति देनेका त्याग कर देता है, उसको ज्ञानी पुरुष दशमी अनुमति त्याग प्रतिमाका धारक–अनुमति त्यागी श्रावक कहते हैं।।६२।।

११. जो जितेन्द्रिय श्रावक अपने लिये तयार किये हुये भोजनका मन वचन कायसे त्याग करके मुनियोंके समान अनुद्दिष्ट

प्रासुक भोजन करता है, उसको ग्यारहवीं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाका धारक उद्दिष्ट त्यागी श्रावक कहते हैं ॥६३॥

इसप्रकार जो क्रमसे प्रमाद रहित एकादश पदोंको धारण कर श्रावकाचारको पालन करता है, वह पुरुष देव मनुष्यकी सुख-सम्पदासे तृप्तचित्त हो समस्त कर्मोंको नष्ट करके सिद्धपदको (मोक्षको) प्राप्त होता है ॥६४॥

उपर्युक्त समस्त व्रतोंमें तारोंमें चन्द्रमाके समान समस्त प्रकारके तापोंको नष्ट करनेमें समर्थ, तत्वोंका प्रकाशक देदीप्यमान एकमात्र सम्यक्त्व ही मुख्य (प्रधान) है ॥६५॥

संसाररूपी वृक्षको काटनेके लिये शस्त्र और सबको इष्ट रूप यह सम्यक्त्व निसर्गज और अधिगमजके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। परोपदेशके विना ही उत्पन्न होनेवाला सम्यक्त्व तो निसर्गज कहलाता है और जिनागमका अभ्यास करनेसे अर्थात् परोपदेशसे उत्पन्न होनेवाला सम्यक्त्व अधिगमज कहलाता है ॥६६॥ इसके सिवाय ज्ञानचारित्रकी शुद्धि करनेवाला, भव भ्रमणका ध्वंस करने-वाला व मनोवांछित सुखका देनेवाला यह सम्यक्त्व क्षायिक शामिक (औपशमिक) और वेदक (क्षायोपशमिक) भेदसे तीन प्रकारका है ॥ ६७ ॥

इस सम्यक्त्वरूपी रत्नको हरनेवाले अथवा इस धर्मरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुठारके समान प्रथमके चार कषाय (अनंतानुबन्धी क्रोध, अनंतानुबन्धी मान, अनंतानुबन्धी माया और अनंतानुबन्धी लोभ) और मिथ्यात्व सम्यक्त्व और मिश्र ये तीन दर्शन मोहिनीकी प्रकृतियां, इस प्रकार सात प्रकृतियां हैं ॥६८॥

जो जिस समय जीवोंके इन सातों प्रतिबन्धक प्रकृतियोंके नष्ट

होनेसे मेघपटलोंके अभावसे समस्त अन्धकारको नष्ट करनेवाले सूर्य बिम्बके समान जो सम्यक्त्व प्रगट होता है, वह सबसे श्रेष्ठ और शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व है और यह सम्यक्त्व उत्पन्न होनेपर पीछे कभी नष्ट नहीं होता है तथा जो इन सातों प्रकृतियोंके शमन होनेसे उत्पन्न होता है, उसको शामिक सम्यक्त्व कहते हैं। यह सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त ही रह सकता है और जो इन प्रकृतियोंके कुछ क्षय और कुछ शमन होनेसे उत्पन्न होता है उसको वेदक सम्यक्त्व तथा मिश्र वा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ॥६९-७०॥

जो सम्यग्दृष्टि जिनमतके तत्त्वोंमें शँका नहीं करे (१) सांसारिक सुखोंकी वांछा नहीं करे (२) धर्मात्मा रोगी दरिद्र आदिक जैनोंसे ग्लानि नहीं करे (३) कुदेव कुगुरु और कुधर्ममें विशुद्ध चित्त हो मोहको (अज्ञान भावको) प्राप्त न होय (४) संयमी मुनि श्रावकोंके दोषोंको छिपावे (५) अपने तथा परके पवित्र चित्तमें स्थिरता करे (६) धर्मात्माओंसे शल्यरहित वात्सल्य रखे (७) अहिंसा धर्मकी महिमा (प्रभावना) बढ़ावे (८) संवेग (संसारसे भयभीत) होकर (९) वैराग्यरूप (१०) मन्दकषायी रहे (११) अपनी निंदा करे (१२) अपनेको प्राप्त हुये दोषोंकी निंदा करे (१३) पंचपरमेष्ठीमें नित्य प्रति भक्ति करे (१४) दयारूपी स्त्रीसे ही आलिंगन करनेमें अपनी इच्छा रक्खे (१५) समस्त जीवोंमें मैत्री भाव रखे (१६) चारित्रधारियोंको (गुणाधिक्य पुरुषोंको) देखकर प्रमोदित हो (१७) विपरीत चेष्टावालोंसे मध्यस्थ रहे (१८) और सांसारिक कदाचारोंसे विरक्त रहे (१९) वही धीर पुरुष व्रतरूपी धान्यके बीजभूत, दीनोंको दुर्लभ, मनोवाञ्छित सुखोंके देनेवाले विद्वानोंकर

पूजनीय, सम्यक्त्वरूपी रत्नको विशुद्ध (निर्मल) करता है और उसी पुरुषका जन्म प्रशंसा करनेयोग्य है ॥७१-७२-७३-७४-७५॥

इस जगतमें सम्यक्त्वके समान कोई भी हितकारी, आत्मीय, परम पवित्र और उत्तम चारित्र नहीं है ॥७६॥ जिस पुरुषके सम्यक्त्व है, वही पंडित, श्रेष्ठ, कुलीन और दीनता रहित है ॥७७॥ जो सम्यक्त्वधारी उदार पुरुष हैं, वे महाकान्ति ज्ञान कीर्ति और तेजके धारक कल्पवासी देवोंके सिवाय ही विभूतिवाले अन्य देवोंमें कदापि उत्पन्न नहीं होते ॥७८॥

जो सम्यग्दृष्टि भव्य है, सो पहिले नरकसे आगे किसी अन्य नरकमें नहीं जाता—स्त्रीपने और नपुंसकपनेको भी प्राप्त नहीं होता, और न वह पूज्य पुरुष अपूज्य पुरुषोंमें प्राप्त होता है ॥७९॥ जो भव्य कमसेकम अन्तर्मुहूर्त ही सम्यक्त्व रत्नको धारण कर लेता है, वह अनन्त अपार संसारसे शीघ्र ही तर जाता है ॥८०॥

इस प्रकार त्रिभुवनके बंधु जिनमति नामा मुनिकी निर्दोष तत्त्वोंको प्रकाश करनेवाली, विद्वानोंकर पूजनीय और पवित्र वाणीको वह खेचरपुत्र पवनवेग अपने चित्तमें धारण करके महाहर्षको प्राप्त हुवा ॥८१॥ जिस प्रकार निपुत्री पुत्रकी प्राप्तिसे, स्त्रीवियोगी स्वस्त्रीको प्राप्त होनेसे, अंधा नेत्रोंके प्राप्त होनेसे, रोगी निरोगताको और निर्धन खजानेको पाकर हर्षित होता है, उसी प्रकार पवनवेग भी व्रतको धारण कर अतिशय प्रमोदको प्राप्त हुवा ॥८२॥

तत्पश्चात् वह पवनवेग मुनि महाराजको नमस्कारपूर्वक कहने लगा—हे मुने ! आज मेरे समान कोई भी धन्य नहीं है, जो नरक-रूपी कूपमें पड़ता हुवा आपके वचनरूपी आलम्बनको प्राप्त हुवा

॥८३॥ जो भैर आपके वचनोंको सुनता है, वह भी मनोवांछित फलको प्राप्त होता है, तो जो एकचित्त हो आपके वचनोंके अनुसार चलता है; उसका फल कैसा उत्तम होगा सो कहनेमें कोई भी समर्थ नहीं है ॥८४॥

जो मनुष्य आपके वचनोंको सुनकर कुछ भी नहीं करते, वे निश्चय करके मनुष्य नहीं हैं क्योंकि रत्नभूमिमें प्राप्त होकर पशु ही खाली हाथों आता है, मनुष्य कदापि खाली हाथ नहीं आता ॥८५॥ इस प्रकार वह पवनवेग निर्दोष वचनोंको कहकर व्रतसमितिवाले मुनि समूह सहित केवली भगवानको प्रीतिपूर्वक नमस्कार करके अपने मित्र मनोवेग सहित विजयार्द्ध पर्वत पर अपने घर जाता हुवा ॥८६॥

उस पवनवेगको जैन धर्मावलम्बी देखकर मनोवेग बहुत ही हर्षित हुवा, सो नीति ही है कि अपने किये हुये परिश्रमको सफल होनेपर ऐसा कौन पुरुष है कि जिसके हृदयमें प्रमोद न हो ? ॥८७॥ तत्पश्चात् मनोहर आभूषणोंके धारक वे दोनों मित्र चार प्रकारके पवित्र श्रावक धर्मको हर्षके साथ धारण करके परस्पर महाप्रीतिरूपी बन्धनसे अपने२ चित्तको बांधे हुये सुखसे अपना समय बिताने लगे और—॥८८॥

अनेक आभूषण पहरे हुये स्फुरायमान रत्नोंके समूहकर शोभित अपने विमानमें बैठकर देव मनुष्योंके राजा इन्द्र और चक्रवर्तियोंकर पूजनीय मनुष्य क्षेत्रोंके (अढ़ाई द्वीपमें) कृत्रिमाकृत्रिम समस्त जिन-मंदिरोंमें स्थित जिनप्रतिमाओंकी निरन्तर भक्ति पूजा वंदना करते हुये

तिष्ठे। सो ठीक ही है, शुद्ध ज्ञानके धारक सत्पुरुष अपने हित कार्योंमें कदापि प्रमादी नहीं होते ॥८९॥

जैसे उस विस्तृतकीर्ति पवनवेगने लीला मात्रसे दो दिनमें ही देव मनुष्योंकर पूजनीय अपने सम्यग्दर्शनको चन्द्रमाके समान उज्ज्वल किया उसी तरह विस्तृत कीर्तिवाले अमितगत्याचार्यने अपने इस काव्यकी दो मासमें ही दोषरहित रचना की ॥९०॥

इति श्री अमितगत्याचार्यकृत धर्मपरीक्षा नामक संस्कृत ग्रन्थकी बालावबोधिनी भाषाटीकामें बीसवां परिच्छेद पूर्ण हुआ ॥ २० ॥



ग्रन्थकारकी प्रशस्ति

श्रीमाथुर संघके मुनियोंमें श्रेष्ठ, सिद्धान्त समुद्रके पारगामी, कषायोंको नष्ट करनेके उपायोंमें चतुर और आचार्योंमें गण्यमान ऐसे एक वीरसेन नामके आचार्य हुए ॥१॥ उनके शिष्य, उदयाचलसे सूर्यके समान नष्ट की है समस्त अन्धकार (अज्ञान) की प्रवृत्ति जिन्होंने, लोकमें ज्ञानरूपी प्रकाशको करनेवाले, सत्पुरुषोंके प्यारे, धीरताके कारण नष्ट किये हैं समस्त दोष जिन्होंने ऐसे, देवसेन नामक आचार्य हुए ॥२॥

उनके शिष्य, पदार्थोंके समूहको प्रकाश करनेवाले, दोषरहित, मुनिगणोंके नाथ (संघके नाथ), सूर्यसे दिनके समान भव्यरूपी कमल समूहको प्रफुल्लित करनेवाले, एक अमितगतिनामा आचार्य हुए ॥३॥ उन अमितगति महाराजके शिष्य, पवित्र धर्मके अधिष्ठाता, विभु, पार्वतीनाथके सदृश कामदेवको नष्ट करनेवाले, मन वचन कायको वशमें करनेवाले, और मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकाके संघसे पूजित, ऐसे नेमिषेण नामक आचार्य हुए ॥४॥

उन नेमिषेण आचार्यके शिष्य, कोपनिवारी, शमदमधारी, प्रकर्षतासे नम्रताका है रस जिनमें, मद (गर्व) को दलनेवाले, मुनियोंमें श्रेष्ठ, शमन कर दिया है मन्मथ जिन्होंने, ऐसे माधवसेन नामा आचार्य हुए ॥५॥ उन माधवसेनाचार्यके शिष्योंमें श्रेष्ठ, निर्दोष ज्ञानके धारक अमितगति नामा चतुर शिष्यने धर्मकी परीक्षा करनेके लिये सबको शरणरूप यह श्रेष्ठ धर्मपरीक्षा बनाई है ॥६॥

यह धर्मपरीक्षा मुझ अल्पज्ञने बनायी है, इसमें जो कुछ विरुद्ध

वाक्य हो, उन्हें स्वपरशास्त्रके जाननेवाले शोधकर ग्रहण करो। क्या ऊँची बुद्धिके धारक विद्वज्जन वारावार समझकर तुषको छोड़ सस्य समूहको ही ग्रहण नहीं करते ? ॥७॥

"प्राचीन कविता ही सुखदायक है नवीन कविता सुखदायक नहीं" बुद्धिमानोंको इस प्रकार कदापि नहीं समझना चाहिये। वृक्षोंको प्रतिवर्ष नये नये फल आते हैं तो क्या वे पहिले वर्षोंके फलों सरिखे श्रेष्ठ व मिष्ट नहीं होते ॥८॥ तथा कोई कहै "पुराणोंको छोड़कर पुराणोंसे उत्पन्न हुवा यह ग्रन्थ ग्रहण करनेमें नहीं आ सकता" सो यह कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि सुवर्णमयी पत्थरसे निकाला हुवा सोना, क्या महामूल्यसे नहीं बिकता ? ॥९॥

मैंने इस पुस्तकमें जो अन्य मतके शास्त्रोंका विचार किया है, सो बुद्धिका गर्व प्रकट करके अथवा पक्षपातसे नहीं किया है; किंतु जो धर्म शिवसुखका देनेवाला है, केवल मात्र उस धर्मकी परीक्षा करानेके निमित्त ही यह परिश्रम किया गया है ॥१०॥

विष्णु महादेव आदिने तो मेरा कुछ हरण नहीं कर लिया और जिनेन्द्र भगवानने मुझे कुछ दे नहीं दिया, जो विष्णु आदिका खण्डन करके जिनेन्द्रकी स्तुति करूँ। क्योंकि विद्वज्जन निरर्थक क्रिया नहीं करते ॥११॥ मेरा तो केवलमात्र यही कहना है कि जो सत्पुरुष हैं वे कुगतिकी प्रवृत्ति करानेवाले मार्गको (धर्मको) छोड़कर सुगतिमें ले जानेवाले मार्गका (धर्मका) आश्रय करते हैं जिससे नरकादि गतिमें जानेवालोंको समस्त अंगको आतापकारी महादुःख प्राप्त नहीं हो ॥१२॥

जो भलेप्रकार निवेदन किये हुए हितको ग्रहण नहीं करते, वे

अवश्य ही आगामी कालमें अनेक प्रकारके दुःखोंको प्राप्त होंगे। और जो निवारण करनेपर कुमार्गमें नहीं रहते, वे भविष्यत्में दुःख नहीं पावेंगे ॥१३॥ जैसे कड़वी औषध खाते समय दुःखदायक है परन्तु परिणाममें वांछित सुखको देती है, उसी प्रकार मेरा कहा हुवा यह कठोर वाक्य (शास्त्र) भविष्यत्में निश्चय करके सुखदायक होगा ॥१४॥

हे विद्वज्जनो ! मेरे किये हुये इस ग्रन्थको विचार करके ग्रहण करोगे तो निश्चय करके अपने आप इसके शुभाशुभपनेको जान जावोगे। यद्यपि निवेदन करनेसे सैंकड़ों मनुष्य रसको जान जाते हैं। परन्तु उसके स्पष्ट अनुभव (स्वाद) को कदापि नहीं भोगते ॥१५॥

जिसके हृदयरूपी मंदिरमें मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला जिनेन्द्र मतरूपी दीपक जलता है, वही पुरुष विद्वानोंकर माने हुए वस्तुके निर्दोष स्वरूपको जानता है। तथा वही पुरुष समस्त कलंकोंको नाश करनेवाली उज्ज्वल कीर्त्तिको पाता है ॥१६॥

जो पुरुष अपने और परके मतका तत्त्व दिखानेवाले पवित्र शास्त्रको भक्तिपूर्वक कहता है, अथवा एकचित्त होकर सुनता है, वह पुरुष समस्त तत्त्वोंको जानकर केवल ज्ञान ही है नेत्र जिसके, ऐसे देवोंकर पूजनीय पदको प्राप्त होकर मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१७॥

अन्तमें आचार्य आशीर्वाद देते हैं कि जगतमें निरन्तर सुखका देनेवाला जैनधर्म विघ्नरहित होवो, लोगोंमें शांति रहो, राजा लोग न्यायसे पृथ्वीका पालन करो, और साधुजन हैं, वे यम नियम-

रूपी बाणोंसे, कर्मरूपी शत्रुओंको नष्ट कर सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होवो और समस्त प्राणीजन हैं, वे मिथ्याज्ञानको नष्ट करके अपने हितमें लवलीन होवो ॥१८॥

जितने दिनतक सुपयोधरा (निर्मल जलवाली), मीन ही हैं नेत्र जिनके तथा उच्च शब्द करनेवाली नदीरूपी स्त्रियां अपने लहर-रूपी हाथोंसे समुद्ररूपी भरतारको आलिंगन करेगी, उतने ही दिन-तक धर्माधर्मके ज्ञाता विद्वानोंकर प्रसन्नताके साथ व्याख्यान होता हुवा, यह अनघ निर्दोष शास्त्र इस पृथ्वीपर वर्त्तमान रहो ॥१९॥

अन्य मतके निषेध करनेवाला जिनेन्द्रधर्मकी अपरिमाण युक्त-वाला यह धर्मपरीक्षा नाम ग्रंथ विक्रम राजाके १०७० एक हजार सत्तरकी सालमें पूर्ण हुवा ॥ २० ॥

